प्रकाशकीय

साधुमार्गी परम्परा मे महान् क्रियोद्धारक आचार्यश्री हुक्मीचदजी म सा की पाट–परम्परा मे षष्टम् युगप्रधान आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा विश्व–विभूतियो मे एक उच्चकोटि की विभूति थे। अपने युग के क्रातदर्शी सत्यनिष्ठ तपोपूत सत थे। उनका स्वतन्त्र चिन्तन, वैराग्य से ओत–प्रोत साधुत्व प्रतिभा–सम्पन्न वक्तृत्वशक्ति एव भक्तियोग से समन्वित व्यक्तित्व स्व–पर–कल्याणकर था।

आचार्यश्री का चिन्तन सार्वजनिक, सार्वभौम और मानव मात्र के लिए उपादेय था। उन्होने जो कुछ कहा वह तत्काल के लिए नही, अपितु सर्वकाल के लिए प्रेरणापुज बन गया। उन्होने व्यक्ति समाज, ग्राम, नगर एव राष्ट्र के सुव्यवस्थित विकास के लिए अनेक ऐसे तत्त्वो को उजागर किया जो प्रत्येक मानव के लिए आकाशदीप की भॉति दिशाबोधक बन गये।

आचार्यश्री के अन्तरग मे मानवता का सागर लहरा रहा था। उन्होने मानवोचित जीवनयापन का सम्यक् धरातल प्रस्तुत कर कर्तव्यबुद्धि को जागृत करने का सम्यक प्रयास अपने प्रेरणादायी उद्‌बोधनो के माध्यम से किया।

आगम के अनमोल रहस्यो को सरल भाषा मे आबद्ध कर जन–जन तक जिनेश्वर देवो की वाणी को पहुचाने का भागीरथ प्रयत्न किया। साथ ही प्रेरणादायी दिव्य महापुरुषो एव महासतियो के जीवन वृत्तान्तो को सुबोध भाषा मे प्रस्तुत किया। इस प्रकार व्यक्ति से लेकर विश्व तक को अपने अमूल्य साहित्य के माध्यम से सजाने–सवारने का काम पूज्यश्रीजी ने किया है। अस्तु! आज भी समग्र मानव जाति उनके उद्‌बोधन से लाभान्वित हो रही है। इसी क्रम मे 'राम–वनगमन' किरणावली का यह अक पाठको के लिए प्रस्तुत है। सुज्ञ पाठक इससे सम्यक लाभ प्राप्त करेगे।

आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा का साहित्य जवाहर किरणावली के नाम से 53 भागो मे प्रकाशित हुआ है। इसके प्रकाशन का शुभारम्भ किया सेठ श्री चम्पालालजी वाठिया ने ओर उनके पश्चात श्री वालचन्दजी सेठिया व श्री खेमचन्दजी छल्लाणी ने अथक प्रयास करके 53 किरणावलियो का सैट एक साथ प्रकाशित करके उपलब्ध कराया। आज यह सेट प्राय अनुपलब्ध होने से श्री जवाहर विद्यापीठ ने यह निर्णय लिया कि किरणावलियो को नया रूप दिया जाय। इसके लिए तोलाराम बोथरा ने परिश्रम करके विषय अनुसार किरणावलियो को सम्मिलित कर 32 पुस्तको का सेट बनाया।

प्रस्तुत किरणावली किरण– 14 व 15 को सम्मिलित करते हुए किरण–9 के रूप मे हम प्रस्तुत कर रहे है। पूर्व मे इसके छ सस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, उसके अर्थ सहयोगी–

1 धर्मनिष्ठ सुश्राविका श्रीमती राजकवरबाई मालू, बीकानेर

2 धर्मनिष्ठ सुश्राविका श्रीमती सोनादेवी भूरा धर्मपत्नी सेठ भीकमचन्दजी भूरा, देशनोक

प्रस्तुत किरण–9 के अर्थ सहयोगी श्री सायरचन्दजी छल्लाणी दिल्ली हैं। सस्था उनके अर्थ–सहयोग हेतु अत्यन्त आभारी हे।

निवेदक

चम्पालाल डागा	तोलाराम बोथरा	सुमतिलाल बाठिया
अध्यक्ष	सयोजक	मत्री

आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा.

जीवन तथ्य

जन्म स्थान	थादला मध्यप्रदेश
जन्म तिथि	वि स 1932 कार्तिक शुक्ला चतुर्थी
पिता	श्री जीवराजजी कवाड
माता	श्रीमती नाथीबाई
दीक्षा स्थान	लिमडी (म प्र)
दीक्षा तिथि	वि स 1948 माघ शुक्ला द्वितीया
युवाचार्य पद स्थान	रतलाम (म प्र)
युवाचार्य पद तिथि	वि स 1976 चैत्र कृष्णा नवमी
आचार्य पद स्थान	जैतारण (राजस्थान)
आचार्य पद तिथि	वि स 1976 आषाढ शुक्ला तृतीया
स्वर्गवास स्थान	भीनासर (राज)
स्वर्गवास तिथि	वि स 2000 आषाढ शुक्ला अष्टमी

आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा.

अर्थ–सहयोगी परिचय

उदारमना गुरुभक्त सुश्रावक श्रीयुत सायरचंदजी छल्लाणी

गुरुभक्त सुश्रावक श्रीयुत सायरचदजी छल्लाणी राजस्थान के नागौर जिले के आसावरी ग्राम निवासी धर्मनिष्ठ सरलमना स्वाध्याय के साधक श्रावकवर्य श्री झुमरमलजी छल्लाणी के ज्येष्ठ पुत्र हे।

गुरुभक्ति समर्पणा सेवा के सस्कार आपको विरासत मे मिले हे। ब्यावर (राज) मे रहकर आपने बी कॉम किया। इन्होने अपनी अथक लगन श्रमशीलता व प्रखर प्रतिभा से व्यावसायिक सोपान तय किये, तो सामाजिक धार्मिक, शैक्षणिक जनकल्याणकारी क्षेत्र मे भी अपनी अमिट छाप अकित की है। सन् 1978 मे आपने हस्तशिल्प के निर्यात व्यवसाय मे प्रवश किया और अपनी विश्वसनीयता व पुरुषार्थ से विदेशो मे अतुल ख्याति अर्जित की। 25 वर्षो के अन्तराल मे 60–70 बार विदेश यात्रा कर आपने भारतीय हस्तशिल्प की विदेशो मे प्रतिष्ठा बढाई।

सन् 1985 मे कृत्रिम आभूषणो का व्यवसाय आरम्भ किया। इस क्षेत्र मे भी आपको महती ख्याति मिली। सन् 1993 व सन् 1999 मे दो बार दिल्ली राज्य से पुरस्कृत हुए और अखिल भारतीय स्तर का पुरस्कार प्राप्त करके आप Hand Crafted Jewellery क्षेत्र की अग्रिम पक्ति मे आ गये।

आचार्यप्रवर श्री नानालालजी म सा के सम्पर्क से नवीन दृष्टि का सचार हुआ जो आपके जीवन का विशिष्ट व महत्त्वपूर्ण मोड था। आपने सामायिक ओर स्वाध्याय की धाराओ से स्वय को आप्लावित किया। आप पतिदिन दो सामायिक करते हैं ओर आपने लघुदण्डक जीवधडा गति–अगति गुणस्थान स्वरूप जीव–अजीव पर्याय गम्मा काय स्थिति प्रतिक्रमण भक्तामर पच्चीस बोल 67 बोल एव अनेक थोकडे कठस्थ कर लिये है। अनेक सूत्रो जवाहर किरणावली जेन धर्म के मोलिक इतिहास आदि ग्रथो का स्वाध्याय किया हे।

आपने अपने अर्जित धन से अशदान का नियम धारण किया है। सघ की हर पवृत्ति– छात्रवृत्ति जीवदया समता शिक्षा निकेतन साहित्य प्रकाशन [illegible]पाल पवृत्ति सिरीवाल पवृत्ति तथ भगवान महावीर समता चिकित्सालय

मे आप मुक्तहस्त से दान देते रहते हैं। आचार्य भगवन नानेश के पट्टधर वर्तमान आचार्यश्री रामलालजी म सा के प्रति आप अत्यन्त श्रद्धानिष्ठ हैं। अपनी व्यस्ततम दिनचर्या के उपरान्त भी आप सन्त–सतियाजी म सा के दर्शन व प्रवचन श्रवण का अवसर निकाल लेते हैं। बालक–बालिकाओ युवक–युवतियो का आप आध्यात्मिक सस्कारो की ओर प्रेरित करते रहते हैं। सामायिक की नियमितता के लिये आपने श्रावको को सैकडो सामायिक उपकरण भेट किये है। आपने आचार्य भगवन् से मात्र 44 वर्ष मे सजोडे शीलव्रत ग्रहण किया। जैन स्तोक भाग एक से चार तक की परीक्षा भी उत्तीर्ण की है।

आपके भ्राता द्वय भी कैलाशचन्दजी छल्लाणी और श्री सुमेरचन्दजी छल्लाणी, उनकी धर्मपत्निया, बच्चे सभी धमनिष्ठ हैं। धर्मपत्नी श्रीमती पुष्पाजी प्रतिदिन नियमित सामायिक करती हैं। उदयपुर मे सम्पन्न अखिल भारतीय पदाधिकारी नवतत्त्व (जीवतत्त्व) परीक्षा मे 37 परीक्षार्थियो मे श्रीमती पुष्पाजी ने अपनी लगन और अध्ययनशीलता का परिचय देते हुए द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

छल्लाणी परिवार ने धन को धर्म से जोडा है। पूर्ण विश्वास हे कि भविष्य मे भी प्रवृत्तियों के विकास, सवर्द्धन ओर सातत्य मे श्रीयुत सायरचदजी छल्लाणी का सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

राम–वनगमन

विषय–प्रवेश

बहुत–से लोग अपने जीवन को उन्नत बनाना चाहते हें। जिन्हे अपने जीवन की महत्ता का कुछ–कुछ भान हो गया हे वे पवित्र जीवन व्यतीत करने की अभिलाषा रखते हैं। मगर सामने कुछ अडचने आ जाती हें। उन अडचनो मे एक बडी अडचन है गृहस्थावस्था। अधिकाश लोग यही सोचते हें कि हम पवित्र तो बनना चाहते हैं, मगर गृहस्थी के काम–काज से छुटकारा नही पा सकते और गृहस्थी मे रहते हुए ऊचे किस प्रकार बन सकते हें?

राम–कथा का महत्त्व

यहा जो कथा आरभ की जा रही है वह ऐसा सोचने वालो के बडे काम की है। इस कथा से प्रतीत होगा कि एक गृहस्थ भी किस प्रकार धर्म का ऊचा आदर्श उपस्थित कर सकता है? यह कथा साधुओ के लिए भी उपयोगी है। यह जगत्प्रसिद्ध कथा हे। इसमे आए हुए चरित्र लोकिक धार्मिक राजनीतिक तथा गार्हस्थ्य – किसी भी दृष्टि से देखे जाए लाभप्रद ही है। योग की दृष्टि से देखने पर योगी भी इनसे लाभ उठा सकते हैं।

आज जिस महापुरुष की कथा मे कहना चाहता हू, उस महापुरुष का नाम रामचन्द्र है। राम की कथा विश्वव्यापी है। वह चिरकाल से आर्य जाति को विविध प्रेरणाए देती रही है। न जाने कितने कवियो ने रामचन्द्र सरीखा आदर्श पात्र पाकर अपनी कल्पनाशक्ति और प्रतिभा को अमर बनाया है। वास्तव मे रामचन्द्र का चरित्र अद्भुत हे। भारतीय साहित्य मे अनेको चरित्र ऐसे विद्यमान हैं जो भारतीय आर्य जनता की परमोच्च सस्कृति के स्तम्भ है ओर जिन पर आर्य जाति अभिमान कर सकती है। ये लोकोत्तर चरित्र भारत की अनमोल निधि हें। इन चरित्रो की सम्पत्ति के कारण ही भारत का स्थान ससार मे सदैव ऊचा बना रहेगा। किन्तु इन चरित्रो मे भी राम–चरित्र अनूठा हे। रामचन्द्र के जीवनचरित्र का पूरी तरह परिचय देना सम्भव नही है। अतएव आदि से अन्त की कथा कहने का उत्तरदायित्व न लेकर बीच का ही कुछ भाग कहना चाहता हू। जो उस पर विचार करेगा, अवश्य ही वह कल्याण का भागी बनेगा।

राम का विवाह

रामचन्द्रजी सीता को ब्याह कर दशरथ आदि के साथ घर लौट आए। राम का विवाह होने से अवधवासियो के हर्ष का पार न रहा। पहले वे सोचते थे कि राम जैसे दिव्य और उत्कृष्ट महापुरुष के अनुरूप कन्या कहा मिल सकेगी जो राम की ज्योति को अधिक जाज्वल्यमान कर सके। लेकिन सीता–सरीखी सुयोग्य कन्या मिल जाने से लोगो की यह चिता दूर हो गई।

क्या स्त्री, पुरुष को ऊचा उठाती है? क्या पत्नी, पति की ज्योति चमकाती है? आजकल लोग स्त्री की निदा करते हैं लेकिन नीति मे कहा है –

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।

जहा स्त्रियो की कद्र की जाती है, वहा दिव्य शक्ति से सम्पन्न पुरुषो का जन्म होता है। जिस समाज मे स्त्रिया शक्तिशालिनी होती हैं उसके उत्थान मे देर नहीं लगती। जो काम पुरुषो के बूते से बाहर होता है जिस काम के लिए पुरुष की शक्ति कुठित हो जाती है, उसका मार्ग स्त्रिया सहज ही सरल बना देती हैं। व्यावहारिक ओर आध्यात्मिक – दोनो प्रकार की शक्तिया उनमे मौजूद हैं।

सीता के साथ राम का विवाह होने से अवधवासी बहुत प्रसन्न हुए। वे सोचने लगे – अब तक राम आधे ही थे। उन्हे पूरा बनाने के लिए विवाह होने की आवश्यकता थी। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए राम को जगज्जननी देवी या शक्ति, कुछ भी कहा जाय, कन्या मिली है। यह कन्या ऐसी हे कि राम को पूरा राम भी बना देगी और स्त्रियो के लिए आदर्श भी होगी। अव तक अकेले राम थे, सीता नहीं थी। अब दोनो का सयोग हुआ हे। अतएव अब सब के सभी मनोरथ पूरे होगे।

विवाह तो बहुत लोग करते हें मगर क्या वे सब विवाह का असली उद्देश्य समझ भी पाते हें? क्या उन्हे विवाह के उत्तरदायित्व का पता होता भी हे?

कन्या का कर्तव्य हे कि वह वधू बनकर आने के बाद यह देख कि मेरे आने से पहले ससुर का घर केसा था ओर मेंने आकर उसमे क्या परिवर्तन किया है? मेरे आने से इस घर मे भीतरी ओर बाहरी क्या सुधार हुआ हे? मेर आने से पहले क्या अच्छाई नही थी जो अव उत्पन्न हो गई हे? सीता न किरा खूबी के साथ अपने इस कर्तव्य का पालन किया यह बात उसके चरित्र रा विदित हो जायेगी।

अवधवासी कहने लगे – अयोध्या मे सीता क्या आई जेस लक्ष्मी की

 आई हे। शास्त्र मे वादह राजू कहे हें। पुराणो मे चोदह भुवन वतलाए

गये है और कुरान मे चौदह तवतक का उल्लेख है। नाम कु [illegible]
चौदह की सख्या सभी को मान्य है। यह चौदह राजू लोक मान। [illegible]
यहा पहाड बन गये है और सब शक्तिया बादल बन गई है। पहाड़ का [illegible]
बादलो को खीचकर पानी बरसाना है। माना जनक पहाड़ [illegible]
शक्ति रूपी मेघो का सग्रह करके महान् शक्ति रूपी पानी बरसाने लगे। पहाड़
मेघो को अपनी ओर खीचता है पानी बरसाता है पर अपने ऊपर [illegible] हुए
पानी को नदियो द्वारा बाहर निकाल देता है। जिससे सेकडा कोस की दूरी
पर भी जल की सुविधा हो जाती है। नदियो का पानी अन्तत समुद्र मे जा
मिलता है और फिर मानूसन बन बरसता है। सृष्टि का ऐसा कम है।

अवधवासियो की मान्यता है कि जैसे अयोध्या समुद बन गई और
सीता रूपी नदी इस समुद्र मे मिलने आई है। सीता रूपी नदी पहाड से यहा
आई है। जनक रूपी पहाड पर बहुत–सा सम्पत्ति रूपी जल इकट्ठा हो गया
था। वही जल सीता रूपी नदी के द्वारा अयोध्या–सागर मे मिलने आया है।
अब तक सीता रूपी नदी किसी समुद्र की प्रतीक्षा मे थी। राम रूपी मार्ग मिल
जाने से वह अयोध्या आ पहुची है।

सीता अयोध्या मे क्या आई उसने अयोध्या के निवासियो को जेरो
माणिक–मोती बना दिया। मानो पत्थर कोई नही रह गया। महाराज दशरथ
मदराचल पर्वत की भाति सुशोभित होने लगे।

पुराणो की बहुत–सी बाते आलकारिक भाषा मे लिखी गई है।
उनका ठीक–ठीक मर्म समझने के लिए अलकारो का परदा हटाने की
आवश्यकता होती है। अलकारो का परदा हटा कर सत्य को समझने का
प्रयत्न करने वाले ही उनकी वास्तविकता को समझ पाते हैं। इससे विपरीत
जो ऊपर–ऊपर से ही पुराणो को देखते हैं उनकी दृष्टि सम्यक् नही होती
और उन्हे पुराणो के कथन झूठे मालूम होते हैं। सम्यग्दृष्टि ही पुराणो की
यथार्थता समझ पाते हैं। पुराणो का एक कथन है कि मदराचल पर्वत को
समुद्र मे डाल कर समुद्र मथा गया।

मानो अयोध्या रूपी समुद्र मे दशरथ मदराचल के समान हैं और
समुद्र को मथने मे राम और सीता दशरथ की सहायता कर रहे हैं। सीता और
राम दशरथ रूपी मथानी को किस प्रकार घुमाते हैं और किस प्रकार उस
मथन से रत्न उत्पन्न होते हैं यह बात इस कथा से मालूम होगी।

आज लोगो मे ऐसा आलस्य घुस गया है कि उनके लिए ससार रूपी
समुद्र को मथना कठिन हो रहा है और नासमझी इतनी अधिक फैली है कि
कोई दूसरा उसे मथ कर और अमृत निकालकर लोगो के मुह मे देता है तो
[illegible]

उसे भी गले न उतार कर वे जहर पी रहे हैं। धर्मध्यान अमृत के समान हे ओर बाजारू बाते जहर के समान है। फिर भी लोग अमृत न पीकर जहर पी रहे हैं। जीवन को निकम्मा बनाने वाले काम विना ही उपदेश के, बल्कि मना करने पर भी करते हैं और धर्म की बातो पर उपदेश देने पर भी कान नही देते।

ससार रूपी समुद्र मथने मे दशरथ रूपी मदराचल को कष्ट उठाना होगा। राम और सीता को भी परीक्षा देनी होगी। मथनी हिलाये बिना मक्खन खाने को नही मिलता, मगर लोग तो सीधा बाजार से लेकर खाने मे पाप का टल जाना मान बैठे हैं। लोग समझते हैं कि बाजार से खरीद कर खा लिया तो आरभ–समारभ के पाप से छुटकारा पा लिया। सीधा खाने से पाप टल जाने के भ्रमपूर्ण विचार ने ऐसी–ऐसी बुराइया पैदा कर दी हैं कि कुछ कहा नही जा सकता। इस मिथ्या धारणा ने बहुतो का धर्म बिगाडा है और स्वास्थ्य भी चौपट कर दिया है।

सीधा खाने से पाप टल जाना मानने वाले लोगो के समक्ष एक प्रश्न उपस्थित किया जा सकता है। इस प्रश्न पर उन्हे प्रामाणिकता के साथ विचार करना चाहिए। कल्पना कीजिए, एक आदमी सीधी वस्तु के उपभोग से पाप का टल जाना मानता है। वह कहता है कि सासारिक प्रवृत्ति जितनी कम हो और पाप जितना कम लगे उतना ही अच्छा हे। ऐसी स्थिति मे अगर में अपना विवाह करता हू तो बहुत आरभ–समारभ होगा। ओरत तथा बाल–बच्चो को खिलाने–पिलाने आदि के लिए बहुत–सी प्रवृत्तियॉ करनी पडेगी। इतना ही नही विवाह से जो सतान–परम्परा चालू होगी उसकी भाति–भाति की प्रवृत्तियो का निमित्त भी मै ही बनूगा। इस प्रकार विवाह करने से लम्बी आरम्भ परम्परा चल पडेगी। जिसका अन्त कौन जाने कब होगा या नही भी होगा। ब्रह्मचर्य पालने की मुझ मे शक्ति नही हे। ऐसी स्थिति मे क्या करना चाहिए? बस यही मार्ग धर्म के अनुकूल हो सकता हे कि वेश्या को पेसे देकर अपनी काम–वासना तृप्त कर लू। उसके बाद न कोई आरम्भ न कोई समारभ। वेश्या मरे या जीए मुझे कोई मतलब नही?

क्या सीधी वस्तु के उपभोग से कम पाप मानने वाले इस मनुष्य क उपर्युक्त विचार का समर्थन करेगे? कोई भी समझदार ऐसे निन्दनीय विचार का समर्थन नही कर सकता। जिसमे तनिक भी विवेक हे वह तो यही कहगा कि ऐसा सोचने वाला व्यक्ति धर्म के नाम पर पाप का सेवन करना चाहता ह ओर धर्म की ओट मे आलस्यमय जीवन विताने का इच्छुक हे।

इसी प्रकार जो यह सोचता हे कि दूध तो अवश्य चाहिए। दूध क , काम नही चलता। मगर गाय–भॅस रक्खी जाए ता उस हरा घास भी

खिलाना पडेगा। पानी पिलाना पडेगा। गाय–भैस का गोबर भी होगा और उसमे कीडे भी पडेगे। इस तरह बहुत पाप लगेगा। इसके अतिरिक्त गाय–भैस की सेवा मे बहुत–सा समय लग जाएगा तो धर्मध्यान मे विघ्न होगा। इसलिये पैसे देकर बाजार से सीधा दूध खरीद लेना ही अच्छा है। क्या यह विचार ठीक कहा जा सकता है? पहले आदमी के कथन को आप नि सकोच होकर गलत कह देते है मगर दूसरे पुरुष के विचार को गलत कहने मे क्या कुछ सकोच है? दूसरे पुरुष के विचार को गलत कहने मे क्या कुछ सकोच है? यह मत भूल जाओ कि सीधा दूध खाने वाले आलसियो की बदोलत हजारो–लाखो गाये और भैंसे कसाई के हाथ लगती हें ओर उनके गले पर छुरी चलाई जाती है। अकेले मुम्बई शहर मे ही पतिवर्ष हजारो गायो–भैंसो का कत्ल होता है। पहाड–सी भैसे और गाये जब तक खूब दूध देती हें तब तक घोसी लोग उन्हे रखते है और जब दूध कम देने लगती है तो उन्हे कसाई के हवाले कर देते हे। शहरो मे उन्हे रखने या खिलाने की गुजाइश कहा? अगर लोग सीधा दूध खाने का गलत खयाल छोड़ दे ओर यह निश्चय कर ले कि हम पशु का पालन–पोषण करके ही उसका दूध ग्रहण करेगे तो इतनी पशुहत्या क्यो हो? दूध बेचने वाले लोग पशुओ की परवाह नही करते। उनकी दृष्टि तो पैसो पर रहती है। पशु मरे या जीए इससे उन्हे मतलब नही देश के पशुधन के नष्ट हो जाने से उन्हे सरोकार नही फलस्वरूप देश की प्रजा सत्त्वहीन निर्बल रुग्ण और अल्पायु होगी इसकी उन्हे चिता नही है। उन्हे पैसा चाहिए, देश के बनाव–बिगाड की फिक्र उन्हे नही है। ऐसी हालत मे जो लोग सीधा दूध खाने मे ही भलाई समझते हैं वे परोक्ष रूप मे घोर पाप का समर्थन करते हे।

सच्चा श्रावक पशु की रक्षा करके ही दूध प्राप्त करेगा। अतएव अपनी भ्रमपूर्ण धारणा को हटाओ। सीधा खाने की बात चित्त से निकाल दो। आलस्यमय जीवन मिटाने के लिए श्रीकृष्ण गोपाल बने थे। सीधी चीज खाने से पाप घुस रहा हे। सीता ओर राम के चरित्र को देखो कि उन्होने क्या किया? उन्होने गृहस्थाश्रम का मथन करके जो मक्खन निकाला है आप उसका उपयोग करके आनन्द प्राप्त कर सकते है।

अब प्रकृत विषय पर आइये। राम का विवाह हो गया। राम जैसे महापुरुष और सीता सरीखी सती को विवाह करने की आवश्यकता नही थी। वे इतने सयत ओर समर्थ थे कि ब्रह्मचर्य का आदर्श उपस्थित कर सकते थे। वे विषयभोग के कीडे नही थे। विवाह की उन्हे कामना नही थी। विवाह

करके भी उन्होने कष्ट ही उठाया। लेकिन जान पडता हे राम–सीता ने लग्नविधि और पति–पत्नी के धर्म को समझाने के लिए ही विवाह किया।

कुछ लोगो का कहना है कि लक्ष्मण कुवारे ही रहे पर ऐसी बात नहीं है। जैन रामायण के कथनानुसार तो लक्ष्मण का विवाह हुआ ही था पर तुलसीदासजी की रामायण के अनुसार भी सीता की बहिन उर्मिला के साथ लक्ष्मण का विवाह होना सिद्ध है। भरत ओर शत्रुघ्न का विवाह भी जनक के भाई आदि की कन्याओ के साथ हुआ था।

महाराज दशरथ का गृहस्थसुख

राजा दशरथ के चारो लडके विवाहित हो गए। उस समय दशरथ को कितना हर्ष हुआ होगा? चार दिग्गजो सरीखे या मेरु पर्वत के चार गजदन्जो सरीखे या चार लोकपालो के समान जिसके चार शक्तिशाली पुत्र हो, उस राजा दशरथ के हर्ष का क्या ठिकाना है? चारो पुत्र चार मत्रियो का–सा काम दे रहे हैं। चारो पुत्र ओर उनकी चारो पत्निया इस प्रकार व्यवहार कर रही हैं जैसे पति–पत्नी मे आगे बढने की होड लग रही हो। इस प्रशस्त वायुमण्डल मे राजा दशरथ के यहा आनन्द की सीमा नहीं हे। चारो और महाराज दशरथ का यश फेल रहा हे। सर्वत्र उनकी प्रशसा सुनाई पडती है। एक मुह से सभी कहते हैं – दशरथ–सा भाग्यशाली कोन होगा जिनके चार पुत्र और वे भी रामचन्द्र जेसे।

कोई कहता है – राम का भरत–सा भाई न होता तो राम की ऐसी शोभा न होती। राम बडे तो हें ही, फिर भी भरत मे राम की अपेक्षा कोई कला कम नही हे। भरत जैसे राम का ही दूसरा अवतार या प्रतिबिंब हो।

दूसरा कहता – हम तो लक्ष्मण ओर शत्रुघ्न की जोडी खूब मानत हें। और भरत का तो कहना ही क्या हे। हमारी समझ मे राम तो केवल कलेवर हे। शक्ति तो इन्हीं तीनो भाइयो की हे।

कोई कहता – शत्रुघ्न हे तो सबसे छोटा मगर राम उसका कितना आदर करते हैं। राम उससे सलाह लिये विना कोई काम नही करते। छाटा बनने मे सचमुच बडा आनन्द हे। छोटे को वडो के स्नेह की अतुल सम्पत्ति मिलती है।

लोग बडा बनना चाहते हें। छोटा होना कोई पसद नही करता। पर वे यह नही देखते कि बडे का वडप्पन किस पर टिका हे? बड का वडप्पन छोटे के छुटपन पर टिका हे या वडा आप ही वडा वन गया हे? एक पर एक

लगाने से ग्यारह हो जाते हैं अर्थात ग्यारह गुनी वृद्धि हो जाती है। अब अगर पहला एक अकेला ही रहना चाहे और दूसरे एक को न रहने दे तो वह एक ही रह जाएगा। उसकी दस गुनी वृद्धि नष्ट हो जाएगी। इसी प्रकार जो बडा बन कर छोटे को नष्ट करना चाहता है – छोटे को भुला डालना चाहता है उसका बडप्पन कायम नहीं रह सकता। उसकी शक्ति का ह्रास हुए बिना नही रह सकता। इससे विषमता भी फैलेगी सघर्ष भी होगा अशान्ति की आग भी भडक उठेगी और दु ख का दावानल भी सुलग उठेगा। अगर बडे और छोटे एक दूसरे की सुख–सुविधा का खयाल रखकर चलेगे तो आनन्द होगा और विषमता का विष नही व्यापेगा। एक और एक ग्यारह तभी होते हैं जब दोनो समश्रेणी मे हो। अगर दोनो मे ऊचाई–नीचाई हो तो उनका योग ग्यारह नही होगा। इसी पकार मानव–समाज मे जब ऊच–नीच का भेद मिटेगा, सब समान रूप से मिलकर रहेगे तभी समाज की शक्ति बढेगी। इसी मे सब की शोभा है। बडो को राम का आदर्श अपनाना चाहिए। राम अपने छोटे भाइयो से किस प्रकार हिल–मिल कर रहते थे? दशरथ के घर से प्रजाजनो को एकता का ज्वलत्त और जीवित्त पाठ सीखने को मिलता था। यह पाठ सीखकर लोग छोटे–बडे का भेद भूल–से गये। बडे, छोटो पर अत्यधिक कृपा रखते थे।

बाप बडा और बेटा छोटा होता है। पर बाप स्वय गहने पहनता है या बेटे को पहनाता है? बाप स्वय गहने न पहनकर प्रसन्नता का अनुभव करता है। गहने पहनाकर वह बेटे की गर्दन नहीं कटवाता वरन् उसकी रक्षा का उत्तरदायित्व भी अपने ऊपर लेता है। साराश यह है कि जो बडा बनता है वह छोटो की सुख–सुविधा का पहले विचार करता है और उसकी रक्षा के लिए जिम्मेवार बनता है। असल मे बडा वही है जो छोटो की रक्षा के लिए ही अपने बडप्पन का उपयोग करता है और उनकी रक्षा मे ही अपने बडप्पन की सार्थकता समझता है। जो छोटो की रक्षा के लिए अपने बडप्पन का बिना किसी हिचकिचाहट के त्याग नही कर सकता वह बडा नही कहा जा सकता। बडप्पन छोटो के प्रति एक प्रकार का बडा उत्तरदायित्व है जो स्वेच्छा से स्वीकार किया जाता है। बडप्पन सुख–सुविधा के उपभोग मे नही उसके त्याग मे है। छोटो को गिराने मे नही उठाने मे है।

राम बडे थे पर अपना बडप्पन निभाने के लिए क्या करते थे? और आप बडे होकर छोटो के लिए क्या करते हैं? जरा तुलना करके देखो। बडे छोटो की गर्दन काटने के लिए नही होते। राम के चरित्र का अनुसरण करो। राम और रामायण घर–घर मे यहा तक कि घट–घट मे मौजूद होगी फिर

भी लोग राम–विहीन हो रहे हैं। राम का सच्चा स्वरूप पहचानने के लिए हृदय से छोटो के प्रति दुर्भावना निकालनी होगी।

अवधवासी कोई किसी भाई की और कोई किसी भाई की प्रशसा करते हैं। कोई दशरथ की प्रशसा करता है। मगर तारीफ यह है कि एक की प्रशसा मानो सभी की प्रशसा है। जैसे उनके हृदय अभिन्न हैं वैसे ही उनकी प्रशसा भी अभिन्न है। दशरथ के लिए कवि कहते हैं–

मगलमूल राम सुत जासू, जो कुछ कहिये थोर सब तासू।

जिनके पुत्र मगलमूल राम हैं उनकी महिमा मे जो–कुछ कहा जाए कम ही है। जितनी उपमा दी जाय, कम ही है।

एक पुरुष के पास चिन्तामणि हो और दूसरा पुरुष उसकी प्रशसा करे तो प्रशसा की वाणी चिन्तामणि की समता कैसे कर सकती है? इसी भाति जगत् का कल्याण करने वाले रामचन्द्र जिनके घर मे बसते हैं उन दशरथ की महिमा इन्द्र भी कैसे गाये बिना रह सकता है?

राजा दशरथ के दिन आनन्दपूर्वक व्यतीत हो रहे थे। आप सोचते होगे कि आनन्द के दिन जैसे के तैसे बने रहे तो अच्छा है। आपको इसी मे मगल दिखाई देता है लेकिन ऐसा होता तो रामायण ही न बनती। यह तुच्छ बुद्धि का फल है कि जरा–सी सम्पत्ति मिली और कहने लगे – हे प्रभो ! यह सपत्ति ऐसी ही बनी रहे। लोग नही सोचते कि इस जरा–सी सपत्ति मे क्या विशेषता है? विशेषता तो तब हे जब इस सपत्ति के द्वारा मुझ मे नवीन क्राति जाग उठे। मदराचल पर्वत अगर स्थिर बना रहता तो समुद्र मे से रत्न न निकलते। इसी प्रकार दशरथ अगर इसी सम्पदा को छाती से लगाये बेठे रहते तो ससार को वे रत्न न मिलते जो मिले हैं। मटकी मे दही तभी तक बना रहता हे जब तक उसमे मथनी नही फिरती। कोई स्त्री मटकी मे दही डालकर ओर मथानी बगल मे रखकर कहने लगे कि दही ऐसा ही बना रहे तो फिर मक्खन केसे निकलेगा? इसी प्रकार अगर दशरथ का वह आनन्द ज्यो–का–त्यो वना रहता तो वह अमृत केसे निकलता जिसने उन्हे अमर वना दिया हे। मक्खन निकालने के लिए दही को मथना ही पडता हे।

दही जमा न हो ओर उसे मथ दिया जाय तो भी मक्खन नही निकलता। इसके अनुसार राजा दशरथ की अव तक की समस्त सम्पदा दही जमने के समान हे। अव देखना हे कि उस दही मे से मक्खन केसा निकलता हे?

जहा से यह कथा आरम्भ की जा रही हे। यह जेन रामायण का तो वनवास की तेयारी का प्रकरण समझिए ओर तुलसी–रामायण का अयोध्या काण्ड समझिए।

कथा का प्रारम्भ

मगलाचरण

प्रसन्नता या न गताऽभिषेकत
तथा न मम्लौ वनवासदु खत ।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे
सदाऽस्तु तन्मञ्जुल मङ्गलप्रदम् ।।

यह तुलसीदास का किया हुआ मगलाचरण है। वे कहते है कि रामायण तो फिर समझाएगे पहले यह समझ लो कि उस मथन मे से क्या निकला? उस मथन से समभाव निकला। अर्थात् प्रत्येक दशा मे मनुष्य को समभाव रखना चाहिए – यह शिक्षामृत उस मथन से निकला है।

लोग कहते हैं – 'यो तो समता रखते हैं परन्तु ससार के काम मे जब गडबड हो जाती है तो समता नही रहती। मगर उन्हे सोचना चाहिए कि समता की आवश्यकता तो तभी है जब ससार के काम मे गडबड हो जाए। गडबड न होने की हालत मे तो समता की आवश्यकता ही नही है। समता का उपदेश तो विकट प्रसग के लिए ही है। शस्त्र वही काम का कहलाता है जो वक्त पर काम आये। जो शस्त्र आवश्यकता के समय बेकार साबित होता ह वह शस्त्र शस्त्र ही क्या? इसी प्रकार विषमता का कारण उपस्थित होने पर भी विषमता न पैदा होना समता रहना ही सच्ची समता है। कहावत है–

सब ही बाजे लश्करी सब ही लश्कर जाय।
सेल धमाका जो सहे सो जागीरी खाय।।

हथियार बाधकर स्त्रियो मे घूमना ओर बात है ओर रणभूमि मे जाकर जूझना और बात है। अब आप सोच ले कि आपको कैसा वीर बनना है?

रामायण के दोहन से जो अमृत निकलेगा उसे कवि पहले ही सब के सामने रख देते है। वे कहते हैं कि हमे उस अमृत की पूजा करनी है।

राम को राज्य देने की तैयारिया हो रही हैं। राम को जब मालूम हुआ कि मुझे राज्य मिलने वाला है तब भी उन्हे न प्रसन्नता हुई न उत्सुकता ही। अनुकूल या प्रतिकूल घटना घटने पर हर्ष या विषाद न होना ही समता है। राम को राजा होने की प्रसन्नता नही हुई यह राम जैसे महापुरुषो से ही बन सकता है। इतना ही नही, जिस मुहूर्त मे राजा बनना था उसी मुहूर्त मे राम को वनवासी बनना पडा, फिर भी इसका उन्हे दुख नही हुआ। जब थाली मे अमृत परोसा जाने की आशा हो, तब अमृत के बदले अगर विष परोस दिया जाय तो दुख होना स्वाभाविक है या नहीं? उस समय मुह कुम्हला जाएगा या नही? लेकिन राम साधारण मानव नही थे। साधारण जिसे स्वाभाविक समझते हैं, उस स्वाभाविकता पर विजय प्राप्त कर लेने वाले पुरुष ही ससार मे असाधारण कहलाते हैं। राम को न राज्यप्राप्ति का आनन्द है और न वनवास का दुख ही है। राम वह अथाह सागर हैं जिसे वायु का साधारण झोका क्षुब्ध नही बना सकता। राम की मुखश्री न राज्यप्राप्ति की कल्पना से हर्षित हुई ओर न वनवास की तैयारी से कुम्हलाई। तुलसीदासजी कहते हे – प्रभो! मैं हाथ जोडकर यही मागता हू कि आपकी वह मुखश्री सदा सुन्दर और मगल प्रदान करने वाली हो।

मित्रो! अगर आप भी राम की वह मुखलक्ष्मी मानते हो तो समता धारण करो। समभाव का अभ्यास करने के लिए ही सामायिक है। अतएव शत्रु–मित्र पर समभाव रक्खो। सपद्–विपद् मे हिम्मत रखकर राम को याद रखो। ऐसे अवसर पर यही सोचो कि इससे भी मक्खन ही निकलेगा। इस प्रकार समताभाव सदेव कल्याणकारी होता हे।

राजा दशरथ के यहा सभी सुख मोजूद हैं। स्वर्ग ओर पाताल मे भी राजा दशरथ की प्रशसा होने लगी। जिनके राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न सरीखे चार पुत्र हे उनका यश कोन नही गाएगा?

मेंने पहले कहा था कि अयोध्या का मथन दशरथ रूपी मदराचल रो होगा। श्री मेथलीशरण गुप्त ने बुद्ध के विपय मे जो कविता लिखी हे उसका इस कथन के साथ मिलान किया जाय तो मालूम होता हे जेसे उनकी कविता दशरथ को लक्ष्य करके ही लिखी गई हो। वह कविता अकल दशरथ पर ही नही वरन प्रत्यक आत्मा पर घटित हो सकती हे।

घूम रहा है कैसा चक्र। वह नवनीत कहा जाता है
रह जाता है तक्र। घूम रहा है कैसा चक्र।
पिसे पडे हो इसमे जब तक क्या अन्तर आया है अब तक

सहे अन्ततोगत्वा कब तक, हम इसकी गति वक्र।

घूम रहा है कैसा चक्र।।1।।

कैसे परित्राण हम पावे, किन दैवो को रोवे गावे,

पहले अपनी कुशल मनावे, वे सारे सुर शक्र

घूम रहा है कैसा चक्र।।2।।

बाहर से क्या जोडू जाडू, मै अपना ही पल्ला झाडू,

तब है जब वे पात उखाडू, रह भव–सागर नक्र।

घूम रहा है कैसा चक्र।।3।।

इसमे बुद्ध के भावो का वर्णन है और राम की कथा सुना रहा हू। पर यह कथा राम की ही कथा नही, दूसरे शब्दो मे आत्मा की कथा और तीसरे शब्दो मे आपके घर मे नित्य होने वाली घटनाओ की कथा है। एक बहिन छाछ कर रही है। वह खूब हाथ–पैर हिला रही है। पूरी शक्ति लगा रही है। दही मथा जा रहा है। लेकिन उसका पति जो दही का मथना देख रहा है दु:ख से व्याकुल हो रहा है। वह कहता है, यह चक्र कब तक घूमता रहेगा? इतना समय हो गया है बच्चे भूखे हैं और यह मथानी घुमाने मे ही लगी है। यह कह कर वह मटकी मे देखने लगा और कहने लगा – तुझे दही मथते इतनी देर हो गई फिर भी नवनीत नही निकला? वह कहा चला गया? इस मटकी मे तो छाछ ही छाछ है।

अगर आपके घर यह बनाव बन जाए तो आपको चिन्ता होगी या नही? उस पुरुष ने या आप ने जिस मथानी की गति को देखकर चिन्ता की, उसी प्रकार ज्ञानी–जन सारे ससार की चिन्ता करते हैं। वे सोचते हैं – यह ससारचक्र आखिर कब तक घूमा करेगा?

बुद्धि घूमती है उछल–कूद मचाती हे ओर कुछ–न–कुछ करती ही रहती है लेकिन उससे पूछो कि मक्खन मिलता है या छाछ ही छाछ पल्ले पडती है?

जठर मे जन्म लिया है कष्ट सहे हैं वहा का मलमूत्र सहन किया ह और बडी कठिनाई उठाकर बाहर निकले हैं। फिर भी आत्मतत्त्व रूपी मक्खन हाथ नही आया। बालकपन खेल मे खो दिया। कुछ बडे हुए तो पाठशाला मे गए और बढकर कुछ होशियार हो गए। बुद्धि को खूब दौडाया खूब जोर लगाया परन्तु मक्खन हाथ न आया। केवल छाछ हाथ लगी। जीवन तो छाछ से भी रह सकता है मगर जिन्हे शरीर की पुष्टि चाहिए उन्हे वह छाछ से नही मिल सकती। पुष्टि के लिए तो मक्खन ही चाहिए। इतनी

दौड–धूप करते हो सो जीवित तो हो, पर ज्ञानी कहते हैं कि मक्खन हाथ न आया। छाछ ही हाथ आई है। अतएव देखना चाहिए कि जीवन का तत्त्व कहा जा रहा है? दो पैसे गुम जाने का तो रज होता हे मगर समग्र जीवन बीता जा रहा है, इसकी कोई चिन्ता ही नही है।

कवि ने आगे कहा – जब तक इस चक्र मे पडे हो पिसते रहो। हाथ क्या आया? शरीर दगा दे गया। इन्द्रिया शिथिल होने लगी। अब मक्खन न मिलने का विचार आया है। केवल छाछ पीकर कब तक जीते रहोगे? जेसे पहिले चौरासी लाख योनियो मे भटकते रहे हो, वेसे अब कब तक भटकते रहोगे? जीने को तो कुत्ता–बिल्ली भी जीते हैं, पर इस तरह का जीना क्या मक्खन पाना है?

मक्खन किस प्रकार निकलता है यह बात रामायण से समझो। क्या आप मक्खन लेने की इच्छा करते हैं?

कवि का कथन हे कि वक्र गति वालो ने ससार मे कितनी बार जन्म लिया ओर कितनी बार मोत के शिकार बने फिर भी क्या इसी मे पडा रहना हे?

कवि कहते हे – ससार की गति टेढी है। इसमे जन्म–मरण क अनन्त दुख हें। हम किसकी शरण ग्रहण करे जिससे हमारा जन्म–मरण मिटे ओर मक्खन हाथ लगे? जिस मनुष्य–जन्म के लिये देव भी तरसते हे वह हमारा जन्म निरर्थक जा रहा हे। किस देव की शरण जाकर हम इसकी रक्षा करे? किस देव के आगे जाकर अपना दुखडा रावे? जो देव ओर इन्द्र पहले अपनी ही कुशल चाहते हे वे हमारी क्या रक्षा कर सकेंगे? वे तो स्वय छाछ के पीछे पडे हुए हे। मक्खन तो उनके हाथ भी नही लग रहा हे।

हमे मक्खन पाने के लिए अपने ही सहारे खडा होना चाहिय। जब हम अपने पेरो पर खडे होंगे तो दूसरे भी हमारी सहायता करने क लिए उद्यत हो जाएगे। मगर कठिनाई तो यह हे कि हमे कोई मक्खन दिखलाता ह आर उसे पाने का उपाय बतलाता हे तो हम उसकी मानत नही।

एक स्त्री दही मथ रही थी। उसका मक्खन विगड गया ओर हाथ नही आ रहा था। इतने मे उसकी एक पडासिन आई ओर कहन लगी – लाओ मैं अभी मक्खन निकाल देती हू। इस दही म थाडा गर्म पानी डालन दो। पर दही वाली कहन लगी – 'नही मेर दही क हाथ मत लगाओ। जेसा वह ह वेसा ही रहने दा। एसी दशा मे क्या उरा मक्खन हाथ लगेगा? इसी प्रकार आप परमात्मा स प्रार्थना करत ह कि ह प्रभा! हमारा कल्याण कर।

लेकिन जब परमात्मा कहता है कि कल्याण चाहिए तो ससार के जाल से बाहर निकलो। तब आप कहते है – नही, हमारा जो–कुछ जैसा है वैसा ही रहने दो। ऐसी स्थित मे आपने क्या परमात्मा पर विश्वास किया है? क्या आप सचमुच कल्याण के भाजन बन सकते है?

कवि कहता है बाहर का सब जोडना छाछ बिलोना है। धन और जन की वृद्धि हो गई तो इससे क्या हुआ? अब मै सब–कुछ छोडकर उन मगरमच्छो के दात उखाडूगा जो मेरा मक्खन खा जाते है अर्थात् काम क्रोध आदि को नष्ट कर दूगा। जब मैं उनके दात ही उखाड दूगा तो वे मेरा मक्खन कैसे खाएगे?

अयोध्याकाण्ड के मगलाचरण पर साधारण दृष्टिपात किया गया है, परन्तु समयाभाव से वह पूरा नही हो सका। अब इतना ही कहना काफी होगा कि कवि ने राम की उस मुखश्री को जो राज्य से प्रसन्न और वनवास से खिन्न नही हुई उसे ही मगलप्रदा होने के लिये कहा है। बहुत–से लोग कहते हैं कि राम का राज्य चला गया और राम को बहुत कष्ट उठाने पडे। हे भगवान। मुझ पर तेरी कृपा बनी रहे मुझे ऐसे कष्ट न झेलने पडे और न मेरी सपदा जाए। लेकिन ऐसा कहने वाले लोग छाछ ही मागते हैं मक्खन नही मागते। उन्होने राम को नही पहचाना। जो राम को पाएगा वह ऐसी प्रार्थना कदापि नही करेगा। उसके अन्त करण से एक ही आवाज गूजेगी और वह यही कि – प्रभो। काम–क्रोध आदि बलवान् लुटेरे मेरा मक्खन खा जाते हैं। उनसे मेरे मक्खन की रक्षा कर। वे मेरा मक्खन न खाने पावे।

लोगो का मुह जरा–सी हानि होने पर ही उतर जाता है। दो पैसे की हडिया फूटी कि मुख कुम्हला गया और रोने लगे। पर राम को पहिचानने वाला विशाल राज्य जाने पर भी विषाद नही करता। यह प्रार्थना करता है – पभो। भले ही मेरा सर्वस्व लुट जाय पर मेरा अन्त करण मलीन न होने पावे। राम का भक्त सोचता है कि ससार केसा भी हो पर में राम को जानता हू, इसलिये सुख–दु ख को समान भाव से ग्रहण करूगा।

दशरथ का वैराग्य

जेन शास्त्रो मे राजा की अतिम दशा का दो प्रकार से वर्णन किया गया हे। राजा या तो रण मे लडता हुआ मरता है या ससार से उपरत होकर सयम धारण करता है। पहले के राजा खाट पर पडे–पडे मरना पसन्द नही करते थे।

आर्य सस्कृति समाज के साथ–साथ व्यक्ति (आत्मा) को भी महत्त्व देती है। जैसे समाज के प्रति मनुष्य का पवित्र दायित्व हे उसी प्रकार आत्मा के प्रति भी। आत्मा की उपेक्षा करके समाज की स्थायी और सच्ची भलाई नही की जा सकती। इसी प्रकार समाज की उपेक्षा करने से आत्मा की भलाई नही हो सकती। समाज व्यक्तियो का समूह हे और व्यक्ति समाज का एक अग है। दोनो मे इतना घनिष्ठ सम्बन्ध हे कि एक की उपेक्षा करना दूसरे की भी उपेक्षा करना है और दूसरे को भुलाये बिना एक को भुलाया नही जा सकता। आज इस तथ्य की उपेक्षा की जा रही है। आजकल के कथित समाजवादी लोग व्यक्ति अर्थात् आत्मा की उपेक्षा करते हैं। नतीजा यह है कि ससार मे कहि शान्ति नजर नहीं आती और ऐसी अवस्था मे शान्ति की सभावना भी नही कही जा सकती। आत्मा को भुलाकर शान्ति की खोज करना आकाश मे फूलो की खोज करना है। सच्ची शान्ति तभी नसीब हो सकती हे जब लोग समाज की तरह आत्मा को भी प्रधानता देगे। आत्मा की उपेक्षा करने से समाज मे घोर अव्यवस्था फेले बिना नही रह सकती। इस गये–बीते जमाने मे भी अगर शान्ति का किचित् आभास होता हे तो उसका श्रेय आत्मवाद को ही मिलना चाहिए। साधारण जनता मे आत्मा के अस्तित्व के प्रति जो निष्ठा हे ओर जिसकी जड चिरकालीन सस्कारो के कारण काफी गहरी घुसी हुई हे वही मनुष्य को मनुष्य बनाये हुए हे।

तात्पर्य यह हे कि पुरातन आर्य सस्कृति मे समाज ओर व्यक्ति – दोनो तत्त्वो को महत्व दिया जाता था। यही कारण हे कि राजा लोग जो समाज के मुखिया माने जाते थे अपना सामाजिक कर्तव्य अदा करने क बाद आत्मा के प्रति उन्मुख होते थे वे राज– सिहासन तजकर आत्मा क उत्थान मे तन्मय हो जाते थे। उस समय उनका सारा उद्योग अपनी आत्मसाधना के लिए होता था फिर भी समाज की उनसे कम भलाई नही होती थी। व अपने सयममय जीवन से समाज को आदर्श का नूतन पाठ सिखात थ। उनका व्यवहार जनता के आध्यात्मिक जीवन का रक्षक था। इस प्रकार आर्य सस्कृति मे समाज ओर व्यक्ति – दोनो की प्रधानता थी।

राजा दशरथ के घर सब प्रकार का आनन्द था। एक दिन दशरथ ने विचार किया – मने किसी जन्म मे अच्छा पुण्य कमाया था आर इरा पुण्य के फलस्वरूप मुझे सव प्रकार की सुख–सामग्री मिली ह। राम लक्ष्मण भरत आर शत्रुघ्न सरीखे पुत्र सीता जेसी पुत्रवधू, कोशल्या जेसी महारानी आर अवध जसा विशाल राज्य मिला ह। लकिन क्या मुझ अपना सुकृत भाग कर

यही समाप्त कर देना चाहिये? दिवालियेपन की यह स्थिति मुझे शोभा नही देती। मेरे आत्मा का अन्त यही नही है। आगे मुसाफिरी करनी है। जो—कुछ कमाया है उसे समाप्त कर देना और आगे की चिन्ता न करना उचित नही हे। मुझे अगले सफर की तैयारी करनी चाहिये। सफर करना ही होगा। वह रुक नहीं सकता। मौजूदा जीवन तो उस अनन्त यात्रा का एक पडाव है जो यात्रा अनादिकाल से जारी है और जिसका अन्त न मालूम कहा और कब होगा?

वर्तमान सीमित है और भविष्य असीम है। ऐसी दशा मे वर्तमान के लिए लम्बे भविष्य को भूल जाना मूर्खता होगी। बुद्धिमत्ता इस बात मे है कि असीम और अनन्त भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए ही वर्तमान का उपयोग किया जाय। अर्थात् इस समय हमे जो सामर्थ्य प्राप्त हे, उसे भविष्य के हित के लिए उत्सर्ग कर दिया जाय। हमारा मनोबल भविष्य को मगलमय बनाने मे ही लग जाय। हमारी वाणी हमारा पुरुषार्थ हमारा विवेक, हमारी बुद्धि और हमारी समस्त शक्तिया हमारे मगलमय भविष्य का निर्माण करने मे ही लगे। इस प्रकार सुन्दर भविष्य का निर्माण करने मे ही वर्तमान की सार्थकता है।

राजा दशरथ सोचने लगे कि मुझे पुण्य के प्रबल योग से जो सामग्री मिली है उससे आगे के लिए कुछ कर लेना उचित है।

जैन रामायण के अनुसार महाराजा दशरथ को एक वृद्ध से शिक्षा मिली थी और पुराण के अनुसार स्वय बुढापे से ही उन्हे शिक्षा प्राप्त हो गयी थी। मगर दोनो कथाओ का आशय एक ही है। बूढे और बुढापे मे कोई अधिक अन्तर नही है। बूढा बुढापे का प्रतिबिम्ब है बुढापे की जीवित मूर्ति है प्रतिनिधि है। बूढे को देखने का अर्थ बुढापे को देखना हे ओर बुढापे को देखने का मतलब बूढे को देखना हे। बुढापे के बिना बूढा नही दीखता और बूढे के बिना बुढापा नही दीखता। अस्तु तुलसीदासजी रामायण मे कहते हैं —

राउ स्वभाव मुकुर कर लीना वदन विलोकि मुकुट सम कीना।
श्रवण समीप देखि सित केशा मनहु चौथपन अस उपदेशा ।।

एक दिन दशरथ ने सहज भाव से दर्पण हाथ मे उठा लिया। वे दर्पण मे चेहरा देखकर मुकुट ठीक करने लगे। मगर दर्पण केवल मनचाही अच्छी बात ही नही बतलाता। सामने की भली—बुरी सभी बाते बतला देना उसका स्वभाव है। राजा को चेहरा देखते समय कान के पास कुछ सफेद केश दिखाई दिये। यह देखकर वे चौक पडे। सोचने लगे — ये सफेद केश मुझे क्या सदेश सुनाने आये हे? ये मानो कह रहे हैं — सावधान होजा राजा हम जरा के दूत आ पहुचे हे। हम जरा के आगमन के निशान हे।

जेन रामायण मे बतलाया गया हे कि दशरथ ने एक दिन किसी वृद्ध पुरुष को कोई काम कर लाने के लिए कहा ओर साथ ही एक युवती दासी को भी किसी काम के लिए कहा। दासी चटपट काम कर आई और वृद्ध को विलम्ब हो गया। दशरथ ने वृद्ध से पूछा – तुमने इतनी देर क्यो लगाई? तब वह बोला – महाराज! मेरा शरीर जीर्ण हो गया है। काम होता तो है नही विवश होकर करना पडता हे।

बुढापे के कष्टो का वर्णन करते हुए एक कवि ने कहा –

मुख से टपके लार, कान दोउ बहिरा पडिया
नही साता को तार, हाड सब ही खडखडिया।
घटी आख की जोत छोत सब घर का करता
देखत आवे सूग, डोकरा क्यो नही मरता?
जीव्या करे फजीत रीत लोका मे खोवे,
कह जैनी जिनदास जरा मे ये दुख होवे।।

तपस्वी मुनि श्री मोतीलालजी महाराज बुढापे के विषय मे एक भजन गाया करते थे–

बूढा ने बालपने की हर आवे, लाडू पेडा जलेबी मगावे।
घर से करडी रोटी आवे दाता से चाबी नही जावे।।
बेटो अवलो सवलो बोले, बोलिया मुडे नही बोले।
बऊअर बडा रे घरा री तू जाई दे नी खाट गूदडो बिछाई।।
सुसरा थारा रे छादे चालू, रेट्या मे पूणी कद घालू।
म्हारा बालक बिलबिल रोवे झोली मे सुलाया नही सोवे।।
ससुरा खो–खो करतो थूके बहू उठ नित आगन लीपे।
सुसर बड पीपल पण झडिया सुसरोजी हजी नही मरिया।।

यहा वुढाप की दशा का चित्र खीच गया हे। यह काई कल्पनाचित्र नही हे। प्रतिदिन आखा के आग आने वाला यह चित्र हे। यह मनुष्य मात्र क जीवन का चित्र हे जिससे कोई बडभागी ही वचता हे।

उस वृद्ध ने दशरथ से कहा – मेरा शरीर शिथिल हा गया हे। नरा मे खून की वह तेजी नही रही जोड ढीले पड गय हे। अव मुझरा काम नहीं होता। लेकिन घर–द्वार लिए वठा हू। विना कुछ किये काम नही चलता। काम न करू ता क्या खाऊ आर क्या खिलाऊ? इस पर भी आप उपालम्भ `त हें महाराज!

साधारणत वृद्ध की बात सुनकर महाराज क्रुद्ध हो सकते थे। कह सकते थे, काम नही होता तो जा मौज कर। क्या मुफत मे काम करता है जो हमे धौस बतलाता है? पैसे लेगा तो काम भी करना पडेगा। लेकिन नही राजा ने यह नही कहा, न ऐसा सोचा ही। वृद्ध की बात सुनकर राजा ने उपदेश ही ग्रहण किया।

बुढापेना दुख तो राजाजी जाणे हो।
विषय थकी मन वाय ने वैराग आणे हो।

वृद्ध की बात सुनकर राजा दशरथ विचारने लगे – यह क्या उपदेश दे रहा है? इसके कथन का सार क्या है? मानो साक्षात् जरा की मूर्ति मेरे सामने आ उपस्थित हुईहै।

जैन रामायण मे यह घटना आई है। वैदिक पुराण मे अपने सफेद केश देखने का उल्लेख मिलता है। मगर दोनो का मूल आशय एक ही है। दशरथ ने बुढापे के विषय मे विचार किया। वे कहने लगे –

देखी मैने आज जरा
हो जाएगी क्या ऐसी ही, मेरी यह अधरा।देखी ।
हाथ मिलेगा मिट्टी मे वह वर्ण सुवर्ण खरा,
सूख जाएगा मेरा उपवन जो है आज हरा।
सौ–सौ रोग खडे हो सन्मुख पशु ज्यो बांध परा,
धिक् जो मेरे रहते मेरा चेतन जाय चरा।
रिक्त मात्र है क्या सब भीतर, बाहर हरा–भरा,
कुछ न किया यह सूना भव भी यदि मैंने न तरा।

यह कविता भावमयी हे। वृद्ध पुरुष की बात सुनकर या अपने सफेद केश देखकर राजा दशरथ कहते हैं – आज ही मुझे जरा का रूप नजर आया है। हे वृद्ध! तूने आज जरा का रूप दिखला कर मेरी मोह–निद्रा भग कर दी हे मुझे सोते से जगा दिया है। क्या एक दिन मेरी भी यही अवस्था नही होगी?

लोग बूढा आदमी तो देखते ही हैं पर क्या सबको ऐसा विचार आता है? जवानी की मस्ती ऐसा विचार नही आने देती। यौवन की कोमल और मधुर पतीत होने वाली कल्पनाओ मे यह कठोर ओर नीरस सत्य स्थान नही पाता। असत् के बाजार मे सत की कोई पूछ ही नहीं है। लेकिन अन्त मे तो सत ही सामने आता हे।

एक जवान जवानी के नशे मे अकडता जा रहा था। सामने की ओर से एक बूढा लकडी के सहारे से आ रहा था। जवान आदमी की टक्कर से

वह बूढा गिर पडा। यद्यपि बूढे को गिराने का अपराध जवान का ही था फिर भी वह बूढे पर नाराज होकर कहने लगा – 'क्या जानते नही हो कि यह सडक जवानो के चलने के लिए है। तुमने मेरे चलने मे बाधा पहुचाई है। क्या मुझे जानते नहीं, आइन्दा ऐसी हरकत की तो हड्डिया चूर–चूर कर दी जाएगी।'

बूढा दबने वाला नहीं था। उसने कहा – अकडते क्यो हो? मैं तुम्हे ही नही तुम्हारी बुनियाद को भी जानता हू।

जवान – मेरी बुनियाद को क्या जानते हो?

बूढा – तुम्हारी बुनियाद दो बूद पेशाब ही तो है। दो बूद पेशाब से मास का लोथ बना, वह बढा और तब तुम बाहर आये। यह तो तुम्हारी बुनियाद है और उस पर इतना घमड करते हो?

कहने का आशय यह है कि कोई तो इस जवान की तरह अकडबाज है ओर कोई दशरथ जैसे गुणग्राही भी होते हैं। महाराज दशरथ सोचते हैं– यह बूढा मेरा दर्पण है जो मेरा भविष्य भी मुझे दिखला रहा है। क्या यही अवस्था मेरी नही हो जाएगी? सुवर्ण की तरह चमकने वाली मेरी यह देह जिस पर एक भी दाग नहीं हे क्या मिट्टी मे नहीं मिल जाएगी? मेरा यह शरीर रूपी उपवन जिसे मैंने खूब सींचा नहलाया–धुलाया और खिलाया–पिलाया हे, जो अभी हरा–भरा हे क्या एक दिन सूख नही जाएगा? लेकिन नही में अपनी कचन–सी काया को व्यर्थ मिट्टी मे नही मिल जाने दूगा। में इसका ऐसा उपयोग करूगा जिससे सारे ससार को लाभ पहुचे। अब में ससार के भोगो मे नहीं लुभाऊगा। में विषय–वासना के पाश से अपने को मुक्त कर डालूगा।

इस प्रकार राजा दशरथ ने तो जरा को देखकर राज्य तज देने ओर सयम ग्रहण करने की तेयारी शुरू कर दी मगर आपसे गाजा तमाखू आदि हानिकारक वस्तुए भी नही छूटती। आप अपना योवन इन्ही विपेली वस्तुओं के सुपुर्द कर रहे हें।

महाराज दशरथ कहते हे – यह जरा अपने साथ सेकडा रोग रूपी पशु लाती हे। ये रोग–पशु मेरे जीवन के उपवन को चर जाएग। लेकिन में इन्हे ऐसा नही करने दूगा। शरीर जाय तो जाय अपने चेतन खत को म नही चरने दूगा। अब में त्यागमार्ग का ऐसा पथिक बनूगा कि देखकर ससार चकित रह जाएगा। में अब पाच इन्द्रियो पर मन पर ओर क्रोध मान माया तथा लोभ रूप आतरिक विकारो पर राज्य करूगा। इस राज्य की अपेक्षा वह ७ अधिक स्थायी सतोपकर ओर सुखप्रद हागा।

राजा दशरथ सोचने लगे – मै अभी तक बाहर से दिखाई देने वाले इस ढाचे के पीछे लगा रहा हू। मगर इस ढाचे के भीतर अनत शक्तियो का पुज छिपा है। उसी की यह सब करामात हे। मे उसी शक्तिपुज चेतना की शुद्धि के लिए उद्योग करूगा। उसी के कल्याण मे लग जाऊगा ओर इस पकार यह ढाचा भी सार्थक हो जाएगा। अगर सभी पकार की सामग्री पाकर के भी मैने आत्मा का कल्याण न किया तो यह मानव–देह और यह सब राज्य–सिहासन आदि किस काम आएगा?

महाराज दशरथ के चार पुत्र है। विशाल राज्य हे अक्षय कोष हे। उनकी ऋद्धि इन्द्र को भी शर्मिन्दा करने वाली है। स्वय दशरथ समर्थ हैं। पजा के प्रेम ओर श्रद्धा के पात्र हैं। शक्तिशाली सेना उनके इशारे पर नाचती है। लेकिन हाय जरा तुझ पर किसी का वश नही चलता। तेरे सामने ससार की समस्त भौतिक शक्तिया बेकार साबित हो जाती हैं। तू इतनी अनवार्य है ध्रुव है कि तेरा कोई प्रतिकार नही। इसी कारण तुझे देखकर महाराज दशरथ भयभीत हो गये। उन्होंने कहा – हे जरा। तू मुझे सूचना दे रही है कि मैं जिस भाडे की कोठरी मे रहता हू, वह अब तुझे चाहिए? यह कोठरी मैं तेरे लिए खाली कर दू? जब तेरी ओर से यह नोटिस मुझे मिल गया है तो अब जिद्द करना व्यर्थ है। कोई और मकान होता तो राजकीय कानून का सहारा लिया जा सकता था और उसे हाथ से न जाने देने का प्रयत्न किया जा सकता था पर हे जरा। तेरे आगे कोई बहाना नही चल सकता। तू वह सर्वोच्च सत्ता है जिसकी कही सुनवाई नही। मुझे किसी के सामने पराजित नही होना पडा मगर तेरे आगे मैं हार गया। मेरी इच्छा के विरुद्ध तूने मेरे केश सफेद कर दिये हैं। इस पर मेरा कोई वश नहीं चला। मैं विशाल राज्य का स्वामी हू, पर अपने शरीर का नही। बडे–बडे वीर योद्धा मेरी भृकुटि चढते ही काप उठते हैं मगर अपने ही केशो पर मेरी आज्ञा नही चलती। यह केसी विवशता है? सामर्थ्यशाली पुरुष की यह पामरता कितनी दयनीय हे।

मरने को जग जीता है।
रीता है जो रध्रपूर्ण घट भरा हुआ भी रीता है।
यह भी पता नही कब किसका समय कहा पर बीता है।
विष का ही परिणाम निकलता कोई रस क्या पीता है।
कहाँ चला जाता है चेतन जो मेरा मन चीता है।
खोजूगा मै उसको जिसके बिना यहा सब रीता है।
हे भुवन भावने। आ पहुचा मै अब तू क्यो भय–भीता है?
अपने से पहले अपनो की सुमति गौतमी गीता है।

क्या कभी मन मे सोचते हो कि हम मरने के लिये ही जी रहे हैं। कमाना–खाना सोना–जागना आदि सब–कुछ मरने के लिए ही हे यह कभी सोचा है? इस धरती की पीठ पर कोई ऐसा हे जिसे नही मरने का परवाना मिला हो? नहीं, तो फिर क्यो न माना जाय कि जीव–मात्र मरने के लिए ही जी रहा है? आप कह सकते हैं कि मरने की बात कहना सुनना ओर सोचना अमगल है मगर यह तो वैसी ही बात हुई कि दही मगल है अतएव उसे मथकर उसमे से मक्खन निकालना अमगल हे। ऐसा सोचकर क्या कोई दही को यो ही पडा सडने देता है?

मरने से डर कर दुनिया मगल के नाम पर अमगल अपने मे घुसेडती है, मगर ज्ञानी जन कहते हैं –

मरने से जग डरत है, मो मन परमानन्द।
कब मरिहौं, कब भेटिहौ, पूरण परमानन्द।।

ज्ञानी कहते हैं कि जगत् के जीव मरने से डरते हैं मरने की बात सुनकर नाराज होते हैं ओर करोड युग जीवित रहने के लिए कहे तो प्रसन्न होते हैं यानी झूठी बात सुनकर प्रसन्न होते हैं। लेकिन हम मरण का स्वागत करते हैं।

दशरथ कहते हैं – हे जरा! तूने मुझे भला समझाया कि मरने से डरने की आवश्यकता नहीं।

दशरथ जाग्रत हो गये। आप भी जाग्रत हो जाइये। तप से मत घबराइये। खाली चूल्हे मे फूक मारने से मुह पर राख पडेगी। हा कुछ आग हुई तो फूकने से वह सुलग उठेगी। ऐसी अन्तरात्मा मे ज्योति जगी हो ओर उसे तप से सुलगाओ तो वह ओर तेज होगी। तप न करने के कारण ही खाते–पीते भी मुह सूखता हे।

मरने से डरने पर भी मरना तो पडता ही हे। फिर डरन स क्या लाभ? बल्कि मरने से तो प्रसन्न होना चाहिए। स्कूल मे पढने वाले लडक का उद्देश्य परीक्षा मे उत्तीर्ण होकर प्रमाण–पत्र प्राप्त करना होता हे। लकिन काई लडका परीक्षा के समय रोने लगे तो उसे क्या कहा जायगा? ज्ञानीजन कहत हें – मरने से डरना क्या? मोत की कल्पना से रोना क्यो? मरना ता परीक्षा हे। मरकर 'सर्टिफिकेट' लेना हे। मुनष्य को मरना सीखना चाहिए। जा मरना जानेगा वह पाप से डरेगा। वह मरने से क्या डरगा? मरन रा डरन की ही क्या हे? मृत्यु क विना क्या यह जीवन पाना शक्य था?

किसी मनुष्य ने राजा की महत्त्वपूर्ण सेवा की। राजा ने पसन्न होकर उसे लाने के लिए पालकी भेजी। उस समय वह हसेगा या रोएगा? यदि वह रोता है तो उसे क्या कहा जायगा?

'पागल।

मगर देखना कही आप भी तो यह पागलपन नही करते हे? आपको समझना चाहिए कि मरना मरना नही जीवन–भर किये हुए पुण्य–धर्म का फल भोगने का अवसर मिलना हे और यह सुअवसर मृत्यु रूपी मित्र की सहायता से मिलता है। तब मृत्यु के आगमन पर रोना क्यो? 'मरने को जग जीता है' यह जानकर भी जो मरने के समय रोता है, वह मानो राजा के यहा से आई हुई पालकी को ठुकराता है।

मैने एक कथा पढी थी। वह कथा जैसे जैन शास्त्र की इस गाथा के आधार पर रची गई है। गाथा इस प्रकार है–

कणकुडग चइत्ताण विट्ठ भुजइ सूयरो।
एव सील चइत्ताण दुस्सीले रमइ मिये।

अर्थात अज्ञानी और मूर्ख जीव का स्वभाव ग्रामीण शूकर के स्वभाव के समान होता हे। ग्राम्य शूकर के सामने एक ओर उत्तमोत्तम पकवानो के थाल हो और दूसरी ओर विष्टा हो तो वह पकवान छोडकर विष्टा की ओर ही झुकेगा। सूअर को ऐसा करते देखकर आप उसकी निन्दा करेगे। मगर जब सूअर की निन्दा करने पर उद्यत होओ तो जरा अपनी ओर नजर डाल लेना। दया क्षमा परोपकार आदि उत्तम भोजन के समान है और चुगली, निन्दा, व्यभिचार आदि विष्टा के समान हें। फिर भी आप दया, क्षमा आदि को छोडकर चुगली निन्दा आदि की ओर झुकते हे या नहीं? अगर झुकते हैं तो सूअर की निन्दा करने का आपको क्या अधिकार है?

शास्त्र की यही बात विशाल भारत' पत्रिका मे आई महाभारत की एक कथा मे देखी। सक्षेप मे कथानक इस प्रकार हे–

एक ऋषि थे। उनसे कोई चूक हो गई। चूक के प्रताप से वे मर कर शूकरी हुए। कर्म की गति बडी विचित्र हे। जैन शास्त्र के अनुसार भी मुनि को चण्डकौशिक साप होना पडा था।

तो वह ऋषि मर कर शूकरी हुए। उनके तप का कुछ पुण्य तो था ही मगर चूक के कारण उन्हे इस निकृष्ट योनि मे जन्म लेना पडा। शूकरी बडी हुई। इधर–उधर कूडा–कचरा खाने लगी और उसी मे प्रसन्न रहने लगी। इस अवस्था म वह ऐसा आनन्द मानने लगी कि मानो इन्द्राणी हो। थोडे दिनो

वाद उसे मस्ती चढी। सूअर के साथ कीडा करने लगी। गर्भवती हुई। वच्चे हुए। वह उन वच्चो पर वहुत प्रेम करने लगी।

इतने मे उसका चूक के कर्म का भोग पूरा हो गया। धर्मराज के घर से विमान आया। धर्मराज के दूतो ने उससे कहा – चल अब स्वर्ग मे चल तेरा यह कर्मभोग पूरा हो गया है।

शूकरी यह सुन कर रोने लगी। रोती–रोती वोली – अभी मुझे मत ले चलो। मेरे वच्चे अभी छोटे हें। देखो वह मेला पडा हे मुझे वह खाना हे। थोडे दिन और दया करो। मुझे छोड दो।

शूकरी की वात पर देवदूत हसने लगे। उन्होने सोचा इसकी दृष्टि मे स्वर्ग के सुख इन सुखो से भी तुच्छ हैं।

फिर देवदूतो ने कहा – नही, तुझे अभी चलना पडेगा। साथ लिये बिना हम मानने वाले नहीं।

अन्तत शूकरी रोती रही ओर देवदूत उसे ले चले। स्वर्ग पहुचने पर उसका हृदय पलट गया। उन यमदूतो ने उससे कहा – चल तुझे वापिस लोटा आते हें। अपने अधूरे काम पूरे कर ले। मगर अब वह लौटने को तैयार नहीं थी। स्वर्ग मे पहुचने के वाद कोन अभागा ऐसा होगा जो सूअर का काम करने के लिए स्वर्ग छोडकर आएगा।

इस कथा के आधार पर प्रत्येक मनुष्य को अपनी स्थिति पर विचार करना चाहिए कि हमारी स्थिति भी कही इस कथन की 'नायिका' जेसी ही तो नही हे?

दो छोरा दो छोकरी सो करती ममता माया
लाख–लाख बेटा हुआ एक काम नही आया।
परखत देखलो दुख पडे सारा बिललावे जावे चेतन एकलो।
गाफिल मत रह रे, मुश्किल यह अवसर फिर पावणो।

देवदूत की पालकी सामने खडी हे। जिसको उसमे सवार हाना हा हो सकता ह। लेकिन सवार होने की इच्छा रखन वाले का आसुरी प्रकृति की वाते छोडकर दैवी प्रकृति की वाते आचरण मे लानी पडगी। अगर काई यह कहता हे कि आसुरी प्रकृति के विना काम नही चलता तो यह शूकरी की जेसी वात हुई या नही? आसुरी प्रकृति के काम करना गन्दगी खाना ह या नही? इस गन्दे जीवन के लिये उच्च जीवन का क्या भूलत हा? ससार वडा विषम हे। यहा वडी–वडी स्थिति वाले भी नही रह ता तुम्हारी हसियत ही क्या हे? इस वात को भूलकर अगर एसी ही स्थिति म पडे रहे ता समय वीत पर पछताने से भी क्या लाभ होगा?

रावण को सोचना चाहिए था कि जब मैं हनुमान को ही न जीत सका तो राम को कैसे जीत सकूगा? अतएव सीता को लौटा कर सधि कर लेना ही मेरे लिए श्रेयस्कर है। पर उसने ऐसा नही सोचा। आखिर उसका नतीजा क्या निकला? आप रावण को जाने दीजिये। अपने विषय मे ही सोचिये कि जब हम जरा को भी नही जीत सकते तो मरण को कैसे जीत सकेगे?

जरा के उपदेश से दशरथ सयम की तैयारी करने लगे। तुलसी रामायण के अनुसार दशरथ राम को राज्य देने की तैयारी करने लगे और जैन रामायण के अनुसार सयम ग्रहण करने की तैयारी करने लगे।

बुढापा बहुतो को आया है और जिन्हे नही आया, वे बूढो को देख कर बुढापा आने की अनिवार्यता समझ सकते हैं। लेकिन क्या सभी लोग आत्मकल्याण का विचार करते हैं? उन्हे यह क्यो नही सूझता कि जग मरने को ही जीता है। रोते–रोते मरने से लाभ क्या है?

यं यं वापि स्मरन् भाव त्यजन्त्यन्ते कलेवरम्।
त तमेवैति कौन्तेय! सदा तद्भावभावत ।।

रोते–रोते मरने से रोती योनि मे उपजना पडेगा और हसते हुए मरने से वैसी ही योनि मे जन्म मिलेगा। अतएव मृत्यु को सुधार लेने मे ही कल्याण है।

दशरथ का चिन्तन

दशरथ की सम्पदा की तुलना इन्द्र की सम्पदा से की जाय तो इन्द्र भी लज्जित होकर कहेगा कि दशरथ ने जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त की है, वैसी प्रतिष्ठा एकछत्र स्वर्गीय साम्राज्य पाकर भी मुझे प्राप्त नहीं है। इन्द्र के राज्य मे रत्नो के महल और कल्पवृक्ष आदि हैं जो दशरथ के राज्य मे नहीं थे। फिर भी जैसी महिमा दशरथ की थी वैसी इन्द्र की नही। कारण यह कि जो स्वावलम्बी हे जिसे मानव–भव मिला है और जो सादगी से रहता है उसकी समता इन्द्र कदापि नही कर सकता। महाभारत मे कहा है कि व्यास की झोपडी और युधिष्ठिर के महल की तुलना मे व्यास की झोपडी ही बडी ठहरी। व्यास ने युधिष्ठिर से कहा था – अगर तुम्हारा महल बडा था तो महल छोडकर तत्त्व ग्रहण करने के लिए मेरी झोपडी पर क्यो आए? इसी प्रकार इन्द्र कहते थे – देवलोक अयोध्या पर ठहरा है अयोध्या देवलोक पर नही टिकी हैं।

आप जिन हवेलियो मे रहते हैं, वे हवेलिया झोंपडियों से बनी हे या झोपडिया हवेलियो से बनी हैं? पत्थर इकट्ठे करके महल बनाने का काम झोपडे वालो ने किया हे ओर आप हवेली पर गरूर करते हैं। मनुष्यलोक की सादगी से ही स्वर्ग निकलता हे।

दशरथ सोचते हैं – मैंने राज्य की प्रजा आदि सभी को सुखी बनाने के लिए उद्योग किया, लेकिन अपनी आत्मा की शान्ति के लिए कुछ भी न किया तो सब करना बेकार हुआ। मैंने जरा का रूप देखा हे। यह वृद्ध पुरुष मेरे राज्य मे रहता हे। में इसका रक्षक कहलाता हू पर यह जरा से नही बच सका। ऐसी दशा मे मेरा शासन किस काम आया? अतएव में प्रयत्न करूगा कि जरा मुझ पर विजय प्राप्त न कर सके? में जरा को जीतने के लिए जरा भी कसर नहीं रहने दूगा? उसे जीतूगा ओर तभी जन्म–मरण पर भी विजय प्राप्त हो सकेगी। में अजर–अमर–अजन्मा बनने का प्रयत्न करूगा जो मेरा सच्चा स्वरूप और साम्राज्य है। में इस मृगमरीचिका के चक्कर से अपने को अलग कर लूगा।

'मरने को जग जीता हे', ठीक हे। फौज मे जो भर्ती होता है सो अपना सिर कटाने को ही। कोई कायरता दिखलाकर लडाई के मेदान से तो भाग भी सकता हे लेकिन ससार मे जन्म लेकर मरने से कोई नही बच सकता।

मगर मरना एक बात हे ओर मरने के लिए जीना दूसरी बात हे। दुनिया मरने के लिए जीती हो तो जीए। में मरने के लिए नही जीऊगा बल्कि जीने के लिए मरूगा। मे शाश्वत जीवन, अक्षय अस्तित्व ओर ध्रुव स्थिति प्राप्त करने के लिए देह का उत्सर्ग कर दूगा। वही जीने के लिए मरना हे। इस प्रकार में सर्वसाधरण से उलट कदम उठाऊगा। मैं अब तक मरने क लिय जीता था अब जीने के लिये कायोत्सर्ग करूगा। में अपनी मृत्यु को अमृत बनाऊगा।

उपनिषद् मे कहा है –

असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृत गमय।

ज्ञानी पुरुष मृत्यु स छूटकर अमृत बनन की भावना करत हें आर इसी मे अपने जीवन की सफलता मानते हैं।

दशरथ कहते हें – मैं भी अमृत बनूगा। अब मुझे सावधान हो जाना चाहिये। मुझे पता नही कि मेरा आयु रूपी पानी कब सूखने वाला ह? ससार मे सभी–कुछ मिल सकता ह मगर आयु नही मिल सकती। में किसी का

जागीर दे सकता हू, मगर पल–भर की आयु नही दे सकता। ऐसा यह आयुष्य कहा जा रहा है? आयु का हिसाब भी तो नही लगाया कि मेरा बहुत–सा आयुष्य कहा चला गया है?

मैं जो रस ग्रहण करता हू, वह चाहे अमृत–सा ही क्यो न हो विष रूप मे ही परिणत होता है। घी दूध आदि अमृत माने जाने वाले पदार्थो से भी विष का ही परिणाम निकलता है। कैसा ही अच्छा क्यो न खाया जाय निकलेगी गन्दगी ही। गाय के गोबर का सभी स्वागत करते है, मगर अरे मनुष्य तेरा शरीर कितना अपावन है। इसे शारीरिक विष समझ।

मीठा भोजन करने पर भी वचन से विष निकलता है। गरीब को गाली देना क्या अमृत है? अमृत खाने पर भी मुख से जहर निकलता है। यह जहर वाचनिक विष है।

अन्त करण की ओर दृष्टिपात किया जाय। अमृत–सा भोजन करने के पश्चात् भी क्या हृदय मे विषैली वासनाए उत्पन्न नही होती? अमुक का गला काटू, अमुक को धोखा दू, इत्यादि भावनाए क्या अन्त करण का विष नही है? इस पकार कितना ही मधुर भोजन क्यो न किया जाय, अन्त करण मे अगर विष भरा है तो सब का परिणाम प्राय विषमय होता है।

दशरथ कहते है – इस देह मे प्रकट होकर चेतन ने इतना प्रकाश पाया है मगर चिन्ता का विषय यह है कि अब यह चेतन कहा जाएगा? इसे केसा देह मिलेगा? अगर मैं अपनी चेतना को अपने अभीष्ट स्थान पर न ले जा सका तो मै दशरथ ही काहे का? अब मैं यह नही होने दूगा कि कर्म की प्रकृति जहा चाहे वही मुझे घसीट ले जाय और वही मुझे जन्मना–मरना पडे। मै सर्वज्ञ भाव लाकर स्वाधीन बनूगा। मेरे चेतन पर मेरा ही अधिकार होगा और किसी का नही। मे उस ज्ञान की खोज करूगा जिसके सद्भाव मे ससार कडुआ है। मै कर्म पर विजय प्राप्त करके मरूगा यो नही मरूगा। अब यही मेरी दृढ भावना होगी।

आत्मा के लिए भावना बहुत बडी चीज है। गीत मे कहा हे–

श्रद्धामयोऽय पुरुष यो यच्छ्रद्ध स एव स ।

जिसकी जेसी भावना अर्थात श्रद्धा होती है वह वैसा ही बन जाता है। ईश्वर की भावना करके ईश्वर बनना और पशु की भावना करके पशु बनना आत्मा के ही हाथ की बात है।

दशरथ कहते हे – ऐ मेरी अवधपुरी। मैं तेरा नाथ होकर भी क्या खाली ही चला जाऊगा?

अवधमूमि भावी! क्या तेरा यही परम पुरुषार्थ हाय!
खाये पिये बस जिये मरे तू, यो ही फिर फिर आए–जाय।
अरे योग के अधिकारी को, यही तुझे क्या योग्य हाय
भोग–भोग कर मरे रोग मे, बस वियोग ही हाथ आय।
सोच हिमालय के अधिवासी, यह लज्जा की बात हाय
अपने आप तपे तापो से, तू न तनिक भी शान्ति पाय।
बोल युवक! क्या इसीलिए है यह यौवन अनमोल हाय!
आकर इसके दात तोड दे, जरा भग कर अग काय
बता जीव! क्या इसीलिए है, यह जीवन का फूल हाय!
पक्का और कच्चा फल इसका, तोड–तोड कर काल खाय।
एक बार तो किसी जन्म के साथ मरण अनिवार्य हाय
बार–बार धिक्कार किन्तु यदि, रहे प्रेत का शेष हाय।
अमृतपुत्र! उठ कुछ उपाय कर चल चुप हार न बैठ हाय
खोज रहा है क्या सहाय तू, मेट आप ही अन्तराय।

दशरथ अवध के राजा हैं। लोग उन्हे अवधेष अथवा अवध के नाथ कहते हैं लेकिन उन्हे इसका अभिमान नही। वे कहते हैं – हे अवधवासी! तूने क्या पुण्य किया होगा जिसके प्रताप से तुझे अवध मे जन्म मिला है?

आप लोग यहा जन्म पाना अच्छा मानते हैं या स्वर्ग मे जन्म पाना अच्छा समझते हैं? अगर स्वर्ग मे जन्म होना अच्छा समझते हैं तो मैं आपसे पूछना चाहता हू कि क्या स्वर्ग मे तीर्थंकर या महात्मा पुरुष जन्मते हैं? आप कह सकते है वहा किसी प्रकार का झगडा–झझट नही है। केवल भोग है। लेकिन क्या भोग का कीडा बनने से आत्मा का कल्याण हो सकता है? भोग के कीडे भले ही स्वर्ग मे जन्मना चाहे अन्यथा स्वर्ग क देव भी मनुष्यलाक मे जन्म पाने के लिये लालायित रहते है।

अमेरिका मे डाक्टर थोर नामक एक आध्यात्मिक विद्वान हुआ सुना है। एक दिन वह अपने शिष्य के साथ हवा खाने गया। वहा शिष्य न डाक्टर स पूछा – कोनसी भूमि अच्छी ह – यहा की या स्वर्ग की? डाक्टर थार न उत्तर दिया – जिस भूमि पर तू दोना पर टक कर खडा ह उस अगर स्वर्ग–भूमि से बढकर न मान ता तर समान कोई कृतघ्न नही ओर तू इस भूमि पर खडा रहन का अधिकारी नही।

यही बात सब पर लागू हाती ह। आपका स्वर्ग भी इसी भव म याद आता ह। कुत्ता बिल्ली होत ता स्वर्ग याद ही न आता। ऐसा हाा पर भी अगर

आप स्वर्ग भव को ही श्रेष्ठ माने तो ऐसा मानना इस भव के प्रति कृतघ्नता होगी। इस भूमि को तुच्छ समझकर स्वर्गभूमि को श्रेष्ठ समझना पतिव्रता को छोटी और वेश्या को बडी समझने के समान है। कोई स्त्री गरीब घर की है। उसके पति का घर भी गरीब है और पिता का घर भी गरीब है। इस कारण वह फटे-पुराने कपडे पहनती है। वह पतिव्रता और सती है। क्या ऐसी स्त्री वेश्या से खराब है? कहावत है -

पतिव्रता फटा लत्ता, नही गले मे पोत ।
भरी सभा मे ऐसी दीपे हीरो की-सी जोत।

ऐसी पतिव्रता को छोडकर उसका पति अगर वेश्या के पास जाए और उसके सुन्दर बहुमूल्य वस्त्र देखकर कहने लगे - मेरी पत्नी तो कुछ भी नही है जो है सो तू ही है। तो क्या ऐसे मूर्ख ने पतिव्रत्य का माहात्म्य जाना है? वह नही समझता कि वेश्या के नखरो और कपडो ने मेरे हृदय मे आग लगा दी है इसी कारण मेरा धर्मभाव भस्म हो गया है। और मैं पातिव्रत्य धर्म की महिमा भूल गया हू।

साराश यह है कि पतिव्रता के सामने विलासिनी वेश्या किसी गिनती मे नही। मगर भोग के कीडे उसी नाचीज और वेश्या को बडी चीज समझते है। यही कथन उन पर चरितार्थ होता है जो आर्यभूमि का अन्न-जल-वायु सेवन करते है और पेरिस की प्रशसा करते नही थकते। स्वर्ग के सम्बन्ध मे यही बात है। मनुष्य जन्म आत्मिक उत्थान का मार्ग है जबकि स्वर्ग भोगो की क्रीडाभूमि है। इसी मनुष्यभव की साधना से आत्मा अक्षय कल्याण प्राप्त कर सकती है। ऐसी स्थिति मे मनुष्य होकर भी जो मनुष्यभव की निन्दा और स्वर्ग की प्रशसा करता है वह नादान हे। इस भूमि की महिमा न समझकर भोगो मे लुभाकर स्वय को बडा बतलाने वाले अज्ञानी को क्या कहा जाय? ज्ञानी पुरुष स्वप्न मे भी स्वर्ग की कामना नही करते। आप जिस भूमि पर रहते है और आपको जिस धर्म की प्राप्ति हो सकी है उसके लिए देव यह कहते है-

सुद्दिए सावए चेडो नाणदसण लक्खणो।
धम्मे रयस्स कुलस्स मा होऊ चक्कवट्टिया।।

स्वर्ग के देव कहते हैं धर्मात्मा श्रावक की दासता अच्छी, लेकिन धर्मविहीन चक्रवर्ती का पद अच्छा नही।

दशरथ कहते हें - मुझे अवध मे जन्म मिला है लेकिन क्या मेरा पुरुषार्थ फिर-फिर जन्म-मरण करने मे ही हे? खाना-पीना और 'पुनरपि

जनन पुनरपि मरण अर्थात वारम्वार जन्मना–मरना ही मेरा पुरुषार्थ हे? इसलिये अव उठ! हे योग के अधिकारी! क्या तू भोग म ही फसा रहेगा? तू योग के लिए जन्मा हे या भोग के लिए?

मित्रो! आप किसलिए जन्मे हैं? आपको भी इस प्रश्न पर विचार करना चाहिये। योग के अनेक अर्थ होते हैं मगर म आपको वहुत गहराई मे नही ले जाना चाहता। आपको योग का सीधा–सीदा अर्थ ही वतलाता हू। सरल भाषा मे यह कहा जा सकता हे कि एकाग्र चित्त से किसी काम मे लग जाना योग है। मगर वह कार्य श्रेयस्कर होना चाहिए। इस दृष्टि से सयम भक्ति ओर सत्य के योग मे लगना उचितहे।

कोई कह सकता है कि हम क्या योग के लिए जन्मे हैं? ऐसा कहने वाला अगर अपने जन्म का उद्देश्य भोग भोगना मानता है तो उसे यह भी सोचना होगा कि उसके ओर पशु–पक्षी के जीवन मे क्या अन्तर है? भोग तो पशु–पक्षी भी भोगते हैं। आप जो पकवान खाते हैं, वह सूअर भी खा सकता है। आप जो कपडे पहनते हैं वे ही कपडे क्या पशु नहीं पहन सकते? क्या उन कपडो से पशु की ठड नही जाएगी? यह बात दूसरी हे कि पशुओ को ऐसी चीजे प्राप्त नही हैं लेकिन यदि मिले तो क्या पशु उनका उपभोग नही कर सकते? ओर क्या सभी मनुष्यो को असाधारण भोजन वस्त्र' प्राप्त हो जाता है ?

वास्तव मे मानव–जीवन भोग के लिए नही योग के लिए हे। आप योग के हेतु ही जन्मे हैं। योग को चाहे परमात्मा की सवा कहो चाहे मुनिवृत्ति कहो चाहे धर्म कहो कुछ भी कहो आपका जन्म हुआ इसी निमित्त हे। भाग के लिए आप जन्मे नहीहैं।

दशरथ कहते ह – 'मै भोग के लिए नही याग क लिए जन्मा हू अतएव मेरा कर्तव्य तप करना अर्थात योग का अपनाना ह। अव सयम लकर में जगत पर प्रकट कर दूगा कि राज्य–भोग भी मनुष्य जीवन का चरम कर्तव्य नही हे।

दशरथ विचार करते हैं – 'हे मन! अवसर वीत रहा ह। अगर सावधान न वना तो फिर पछताना पडेगा। जरा न नाटिस द दिया ह आर उसे तू समझ गया ह। यह कुछ कम पुण्य की वात नही हे।

प्लेग के समय चूहे मरने लगत हे। पहल मनुष्य नही मरत चूह ही मरते हे। प्लेग से वचने के लिए लाग चूहा का मारन लगत हैं। मगर चूह कह सकते हैं हमे क्या मारत हा? हम ता नाटिस द रह ह कि इस घर की हवा

खराब हो गई है। यह घर खाली कर दो। इतने पर भी मनुष्य अगर घर नही छोडते तो उन्हे मारना पडता है। दशरथ कहते है – 'हे मन! फिर पछताना पडेगा। यह दुर्लभ देह राजपाट की रखवाली के लिए ही नही है, इससे भगवान का भजन करले।'

क्या दशरथ घर मे रहकर भगवद्–भजन नही कर सकते थे? फिर सयम लेने के लिए वे क्यो तत्पर हुए? आज कई लोग कहते हे – घर मे ही भजन कर लेना साधुपन क्यो लेना? ऐसा कहने वालो को समझना चाहिए कि गृहस्थी के अठारह ही पापो मे रचा–पचा, जजालो मे फसा हुआ आदमी विक्षेपरहित होकर भगवान् का भजन नही कर सकता। बडे–बडे राजा लोग राज्य करते हुए ज्ञान शील तप और भावना रूप धर्म का सेवन कर सकते थे क्यो सयम लेने को दौडते थे?

महाजनो येन गत स पन्था ।

अपने को तो महापुरुष के मार्ग पर चलना है। आप कहते होगे कि बडे–बडे राजाओ ने राज्य क्यो छोडा? पर आप उन्हे बुद्धि देते हैं या उनके आदर्श व्यवहार से बुद्धि लेते हैं? वे बडे राजा ससार मे रहकर राज्य का सुधार करते थे और फिर सयम लेकर बडे तत्त्व की खोज करके अपना मरण सुधारते थे। इस पकार वे जीवन की कला मे भी निष्णात थे और मृत्यु की कला मे भी कुशल थे। दशरथ सोचते थे कि मेरे चाहे जितने बेटे हो, उनसे मेरा कल्याण न होगा। अन्त मे या तो मैं उनको छोड जाऊगा या वे मुझे छोड जाएगे। फिर उन पर ममता स्थापित करने से क्या लाभ है? जो वास्तव मे मेरा नही हे उस पर ममता केसी? अतएव पहले ही उन्हे क्यो न छोडदू?

एक जाट था। उसकी जाटनी हमेशा उस को छोड जाने की धमकी दिया करती थी। जब चाहे तभी कहती – मुझे यह ला दो नही तो मैं छोड जाऊगी। मुझे वह लाकर दो – वरना मैं तुम्हारा घर त्याग दूगी। जाट यह सुनते–सुनते उकता गया। एक दिन उसने सोचा कि रात–दिन की यह मुसीबत ठीक नही। जाटनी को अब न रखना ही उचित है। एक दिन धमकी सुनकर जाट ने कहा – तुझे जाना है तो चली जा मेरे जेवर उतार कर रख जा। जाटनी जाने को तेयार थी। उसने जेवर उतार कर जाट को सौंप दिये। तब जाट बोला – अब तू सदा के लिए जा रही हे तो एक खेप पानी की भर कर जा। घर मे पानी नही है। मे अभी–अभी कहा पानी लेने दौडूगा?

जाटनी ने यह स्वीकार कर लिया। वह पानी लेने चली गई। पीछे से एक डण्डा लेकर जाट चोराहे पर आ बेठा। उधर से जाटनी पानी भर कर

लौटी। जाट ने पीछे से एक डण्डा मारकर घडा फोड दिया ओर जाटनी से कहा चल राड कही की मेरे घर से निकल जा।

जाटनी कहने लगी – तेरे घर मे रहता ही कौन है?

जाट ने जवाब दिया – तू मेरे घर मे रहने लायक है ही नही।

जाटनी चली गई। लोगो मे हल्ला हो गया कि जाट ने जाटनी को निकाल दिया। लोग कहने लगे – उसमे कोई ऐब होगा तभी तो उसे घर से निकाल दिया है। जाट को दूसरी लडकी देने वाले भी मिल गये ओर विवाह हो गया। दूसरी जाटनी पहली का हाल सुनकर जाट से डरती रहती और जाट की मर्जी के खिलाफ कोई काम नही करती।

साराश यह है कि जाट ने स्वय जाटनी का परित्याग कर दिया। अगर जाटनी जाट को छोड जाती तो जाट की इज्जत जाती और उसका दूसरा विवाह भी न होता।

अब इस दृष्टान्त को अपने ऊपर घटाइए। ससार की माया जाटनी है। आप चाहे उसके पावो मे गिरे फिर भी वह जाती हुई नही रुकेगी। जब वह जाने को ही है तो फिर उसे स्वेच्छापूर्वक ही क्यो न तज दिया जाय? जाट ने अपनी बात रख ली। आप भी जाट की बुद्धि से काम ले अन्यथा पछतावा ही पल्ले पडेगा।

ससार त्याग कर निकलने वाले मुनियो को आप क्यो नमस्कार करते हैं? यो तो हजारो पुरुषो को उनकी पत्निया छोड जाती हैं और हजारो आदमी भूकम्प आदि के कारण गृहविहीन तथा अकिचन हो जाते है उन्हे नमस्कार क्यो नही किया जाता? इसका कारण यही हे कि उन्होने स्वेच्छा से घर ओर सपत्ति नही त्यागी हे जबकि मुनि स्वेच्छा से त्याग कर अनगार ओर अकिचन बनते हें।

आग ओर भूकम्प आदि के कारण या अन्तत मृत्यु आने पर सर्वस्व त्यागना ही पडता हे तो फिर स्वेच्छा से क्यो नही त्याग देते? इच्छापूर्वक त्याग करोगे तो देवता भी आपको नमस्कार करने म अपना अहाभाग्य समझेगे।

उस समय भी शायद कुछ लोग कहत हागे कि जिसके राम जेसा बेटा है उसे घर छोडने की क्या जरूरत हे? पर एसा कहना नासमझी का लक्षण हे। चक्रवर्ती का कल्याण भी त्याग से ही हा सकता हे? अतएव सोभाग्य से प्राप्त मनुष्य–जीवन को वृथा बरबाद न करक त्याग का अपनाओ और परमात्मा का भजन करो। पाप का छाडा धर्मपरायण बना। जगत क

जीवो के प्रति प्रेमभाव बढ़ाए जाओ स्नेह का दायरा विस्तृत बनाते चलो। इसी मे आत्मा का सच्चा कल्याण है।

महाराजा दशरथ कहते हैं – कल्पना कीजिए, एक आदमी हिमालय पर बैठा है। हिमालय सदा ठडा रहता है। वहा गरमी मे भी सर्दी रहती है। ऐसी स्थिति मे अगर कोई आदमी वहा बैठा हुआ कहता है कि मै गरमी मे मर रहा हू, तो उससे क्या कहा जायेगा? इसी प्रकार इस आर्य देश मे और उसमे भी अयोध्या मे जन्म लेना बहुत कठिन था फिर भी तुझे वहा जन्म मिला है तो किसलिए?

शास्त्रकारो ने इस आर्य देश की बहुत महिमा गाई है। इस देश मे जन्म मिलना बडे सौभाग्य का फल है। मान लीजिए, एक जगह एक लाख आदमियो के बैठने के योग्य मण्डप बनाया गया और उसमे खास–खास आदमियो के बैठने के लिये एक 'स्टेज' बनाया गया। भारत के करोडो आदमियो मे से एक लाख आदमी ही एक मडप मे बैठ सकेगे। ये लाख आदमी भाग्यशाली माने जाएगे या नही? और खास तौर पर जिन्हे 'स्टेज' पर बैठने का गौरव मिला है उन्हे इस बात का ध्यान रखना होगा कि कही हमारे ऊपर मक्खी न बैठ जाए। इसी प्रकार सारे ससार मे यह आर्य देश और उसमे भी उस अवधपुरी मे जहा भगवान् ऋषभदेव अजितनाथ, अभिनन्दनप्रभु, सुमतिनाथ स्वामी अनतनाथ भगवान आदि तीर्थकर हुए है, भरत सगरादि चक्रवर्ती हुए हैं और जहा से अनेक पुरुषो ने मुक्ति प्राप्त की है वहा जन्म पाना कितने सौभाग्य की बात है?

दशरथ मन ही मन सोचते है – ऐसी अवधपुरी मे तेरा जन्म हुआ है तो क्या यह जन्म यो ही गवा देगा? तू जिसे भोग कहता है वह भोग नही, रोग हे वियोग हे। इस अयोध्या मे सहज शाति देने वाले पुरुष हुए है, और तू ससार सम्बन्धी अशाति से तप रहा है?

शास्त्रश्रवण और सतो का समागम क्या शाति के हिमालय नही है? इस हिमालय पर बैठ कर भी भोगो की लालसा का न छूटना और भोगलालसा से तपते रहना क्या हिमालय पर बैठ कर गर्मी से तपने के समान नहीं हे? सत बनना भी इस हिमालय पर बेठना हे लेकिन इस हिमालय पर बैठ करके भी जो रूपयो की लालसा नही छोडता वह हिमालय पर बैठा हुआ भी मानो तीव्र ताप से सतप्त हो रहा हे।

लोग ठण्ड से बचने के लिये आग की शरण लेते हे। अगर कही आग ही सर्दी देने लगे तो क्या उपाय किया जाय? इसी प्रकार आप

काम–क्रोध आदि के सताये हुए सतो के पास आवे ओर सत आप से भी अधिक सताये हुए हो तव कहा जाएगे? लोग घी–शक्कर से अपनी भूख मिटाते हे। अगर घी–शक्कर उलटे भूख बढाने लगे तो भूख का क्या इलाज किया जाय? इसी प्रकार जो सत हजारो को तारने वाले हे वे ही अगर दर–दर भटकते फिरे जादू–टोना करते फिरे तो फिर शाति कहा मिलेगी? अगर हम कहे कि अमावस्या के दिन आना ऐसा मत्र देगे कि सकल मनोरथ पूरे हो जाएगे तो समझदार मनुष्य यह कहेगा कि पहले अपने हृदय को मत्र दे लो, फिर हमे देना। जिसे त्यागी बनकर भी ससार की कामना रही उसे क्या कहा जाय? आप माला फिराते हैं सतो का समागम करते हैं, सामयिक करते हैं फिर भी अगर दुनिया की छोटी–सी कामना भी नही त्याग सकते तो आपको क्या कहा जाय? आप तीर्थ हें? तीर्थ वह कहलाता है जो आप भी तिरे ओर साथ ही दूसरो को भी तारे? आप ही अगर ससार के सताप से नही बच सकते तो कोन बच सकेगा?

दशरथ कहते हैं, अब मैं ससार के ताप मे नही झुलसूगा वरन् शाति प्राप्त करूगा ओर ससार मे शाति का प्रसार करूगा। मैं अपने जीवन को व्यर्थ नही जाने दूगा।

नवयुवक ससार के भावी स्तम्भ हे। उन पर मनुष्य समाज का वोझा हे। वे देश ओर जाति के आधार हे। जिनके नाक–कान आदि का तेज अच्छा हे, विकासशील हे, जिनके पास अभी जरा नही आई हे जिनके हाथ–पेरो मे ताकत हे हृदय मे उत्साह हे, जिनमे सत्कार्य करने की स्फूर्ति हे वे नवयुवक कहलाते हे। भगवान ने गोतम स्वामी से कहा था।

परिजूरइ ते सरीरय केसा पडुरया हवति ते।
ते सव्व बले य हायइ समय गोयम! मा पमायए।।अ 10 21

अर्थात जव तक तेरी कान नाक आख आदि इद्रिया की शक्ति बनी हुई हे तव तक अपना कल्याण कर ले। समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

भगवान ने युवको को यह उपदश दिया हे। भगवान के उपदश का लक्ष्य मे रखते हुए यह देखना चाहिए कि आज क युवक क्या कर रह हें? आज के युवक ऐसे–ऐसे काम करते हे कि जरा जल्दी आकर उन्ह थप्पड मारती ह? आर उनके दात गिरा दती ह? वह लात मारकर उन्ह झुका दती हे? क्या यावन इसलिय ह? क्या मानव जीवन का श्रेष्ठतर अश योवन इसीलिए प्राप्त हुआ ह कि उस जरा की खुराक वना दिया जाय? भगवान का उपदश ता यह ह कि तनिक भी प्रमाद मत करा आर यावन का सदुपयाग करा।

कमर मरोड ने मारग चाले रे
मूछो मरोडी बाया बल घाले रे
भाई काल से जोर न चाले रे। मानव डर रे।
मानव डर रे– चौरासी मे घर है। रे मानव डर रे

आप जवानी के मद मे मतवाले होकर लटकीली–चटकीली चाल चलना तो सीख गए हैं मगर यह सोचो कि आपकी जवानी आत्मा का कल्याण करने मे जाती है या भोग मे जाती है? स्मरण रखना चाहिये कि अधिक कामभोग भोगने वालो का स्वागत बुढापा जल्दी करता है।

दशरथ सोचते हैं – 'क्या यह जवानी इसलिये है कि जरा की थप्पड खाकर दात गिरवा लू? क्या मानव–जीवन का यह हरा–भरा मनोहर बाग इसीलिये है कि इसका कच्चा–पक्का फल मौत खा जाये? बाग सीचकर हम तैयार करे और फल दूसरा हडप जावे? मौत तो सभी को आती है और एक बार जो जन्म ले चुका है उसे मरना ही पडेगा। मगर बारम्बार जन्मने–मरने को धिक्कार है। मैं बार–बार जन्म–मरण नही करूगा। आप गरमी मे से आये हो ओर फिर आपको कोई गरमी मे भेजना चाहे तो क्या आप जाना पसन्द करेगे? थोडी देर सिर नीचा और पैर ऊचे करके गरमी का कष्ट सहकर तो देखो क्या अनुभव होता है? ऐसा भयकर दु ख कब तक सहन करते रहोगे?

दशरथ कहते हें – हे अमृतपुत्र! उठ! कुछ उद्योग कर। यह मत देख कि तेरा कौन साथी है? यह मत सोच कि मे राजा हू, बडा आदमी कहलाता हू तो अकेला कैसे जाऊ? साथी खोजने जावोगे तो अमृत नही बन सकेगा। अतएव अकेला ही चल दे।

अमृतपुत्र तो सभी हैं। आप भी हैं। मगर लोग अमृतपुत्र होकर भी विष बन रहे हे। आप अपने को पहचानो। आप ईश्वर के पुत्र हैं। भगवान् ऋषभदेव की सन्तान हें। इसलिये आप भी दशरथ की भाति जागो। साथी की खोज मे मत रहो। यह भावना रक्खो–

असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय।

साथी की खोज करने वाला कुछ नही कर सकता। मेरे साथ दीक्षा ग्रहण करने के उम्मीदवार पॉच थे। मेरे सासारिक ताऊजी कहते थे कि इन सबको आज्ञा मिल जाएगी। में भी तुझे दीक्षा लेने की आज्ञा दे दूगा? तब मै कहता – इनका ओर मेरा क्या साथ? मैं इनसे उम्र मे छोटा होने पर भी इन्हे शिक्षा दे सकता हू। ऐसी स्थिति मे इनके लिये क्यो ठहरु?

अन्त तक वे साथी ससार–त्याग नहीं कर सके। ससार मे फसे हुए ही बुरी तरह मरे। मैंने दीक्षा धारण करली। मैंने अपने जीवन का सदुपयोग कर लिया। आप भी जीवन–सुधार की ओर बढो। अपने को अमृत बनाने का प्रयास करो, विष मत बनाओ। इसी मे आपका कल्याण है।

क्षेमंकर मुनि का आगमन

सासारिक गडबड मिटाने के लिये और साथ ही आत्मिक शक्ति का विकास करने के लिये महापुरुषो की शरण ग्रहण करनी चाहिये। राम का चरित्र तो प्रसिद्ध है ही, दशरथ का चरित्र भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नही है। जिस वृक्ष मे राम जैसा फल लग सकता है वह वृक्ष क्या साधारण कहा जा सकता हे?

महाराज दशरथ एक बूढे का बुढापा देख कर सयम ग्रहण करने की तैयारी मे ही थे कि इतने मे बागवान ने आकर उन्हे बधाई दी। उसने आकर दशरथ से कहा– 'महाराज की जय हो! विजय हो! देवो के वल्लभ! आप बहुत दिनो से जिनकी प्रतीक्षा मे थे जिनके दर्शन के लिये लालायित थे ओर जिनका नाम सुनकर प्रसन्न होते थे वे ही क्षेमकर मुनि बाग मे पधारे हैं।

बागवान के मुख से यह प्रिय सवाद पाकर महाराज दशरथ की प्रसन्नता का पार न रहा। सोचने लगे – इधर मेरी यह भावना हुई ओर उधर मुनि का आगमन हुआ। अब मेरी भावना का रहस्य वे ही बतायेगे। ज्ञानी जन ही भावना का असली मर्म समझते हैं। ज्ञानियो के सिवाय वास्तविक बात ओर कोई नही बता सकता।

बेल वृक्ष पर चढती हे – बिना चढे नही रहती होना चाहिए सामीप्य। इसी तरह दशरथरूपी बेल भी मुनि रूपी वृक्ष पर न चढे उनका सहारा न ले यह कैसे हो सकता हे?

सत्सग की बडी महिमा हे। सब ने सत्सग की महिमा गाई हे। कोई भी शास्त्र उठा कर देखो सत्सग की महिमा मिलेगी ही। सत्सग के बिना किसी भी पुरुष का कल्याण नही हुआ हे। राम अवतार पुरुष माने जाते हैं। जैनो ने वेष्णवो ने यहा तक कि मुसलमानो ने भी उनके चरित्र का वर्णन किया हे। ऐसे महापुरुष को भी क्या सत्सग की आवश्यकता थी? पर राम स्वय क्या कहते हैं? सुनिये –

तुलसीदासजी कहते हैं – राम सत्ताईस वर्ष के थे ओर सीता अठारह वर्ष की थी। अर्थात दोनो भर–जवानी मे थ। उस समय राम सीता का उपदेश

दे रहे थे और सीता नम्रतापूर्वक उपदेश सुन रही थी। इतने मे ही एक तेजस्वी पुरुष आता दिखाई दिया। राम ने कहा – यह और कोई नही नारदजी है। राम उठकर नारद के सामने गए और उनका सत्कार करके उन्हे ऊचे आसन पर बिठाया। तत्पश्चात राम उनसे कहने लगे–

सुन मुनि विषय निरत जे प्राणी हम सारिखे देह–अभिमानी।
तिनके सत्सगति तब होई, करहि कृपा जा पर प्रभु सोई।।
ता कह मुनि नाहिन भव आगे जेहि विन हेतु सत प्रिय लागे।
ताते नारद! मै बड भागी, यद्यपि गृह–कुटुम्ब अनुरागी।।

राम ने किन शब्दो मे नारद का सम्मान किया है? इसी से सत पुरुषो के माहात्म्य का खयाल आ सकता है। रामचन्द्र जैसे सत–शिरोमणि महापुरुष भी सत की बडाई करते हैं और सत–समागम होने के कारण अपने–आप को सौभाग्यशाली समझते है।

राम नारद से कहते हैं – हे ऋषि! हम सरीखे विषयानुरक्त देहाभिमानी के भाग्य जब अच्छे होते हैं जब प्रभु की कृपा होती है जब पुण्यकर्म का उदय होता है तभी सत्सग का अवसर मिलता है। अच्छे भाग्य के बिना सन्त–समागम नही होता। बिना किसी स्वार्थ के सन्तो पर प्रेम हो तो समझना चाहिए कि जन्म–मरण का चक्र समाप्त होने वाला है।

राम अपने को 'विषयरत' कहकर ससार मे फसे हुए विषयलोलुप लोगो को शिक्षा दे रहे हैं। वे अपने–आप को देहाभिमानी भी कहते हैं। देहाभिमानी का अर्थ हे– देह पर अहकार होना। दुबला होने पर दु ख मानना और तगडा होने पर अभिमान करना भी देहाभिमान है। जैसे–एम ए परीक्षा उत्तीर्ण शिक्षक छोटे बालक को पढाते समय ए–बी–सी–डी रटाता है उसी पकार राम भी सब बाते अपने ऊपर घटित करके ही कह रहे हैं।

राम कहते है – बिना हेतु सत्सग पर अनुराग होना बडे भाग्य की बात हे। मतलब मनुहार तो सभी करते है पर बिना स्वार्थ कौन किसे पूछता ह? यो तो दुकानदार को दो पेसे का नमक लेने के लिये आया हुआ ग्राहक भी प्रिय लगता हे लेकिन जिनसे कोई भी प्रयोजन नही है जादू–टोना या धन–दोलत का स्वार्थ नही है उन सतो पर प्रेम होने पर समझना चाहिए कि अच्छे भाग्य हे। सिद्धात मे कहा है –

दुल्लहाओ मुहादाई मुहाजीवी वि दुल्लहा।
मुहादाई मुहाजीवी दो वि गच्छन्ति सुग्गइ।।

– दशवेकालिक

निष्काम भाव से सतो की सेवा करने वाले उन्हे आहार पानी औषध आदि देने वाले और निष्काम जीवन जीने वाले (सत) विरले ही होते हैं। बहुत–से सत कहलाने वाले भी यह सोचते हैं कि भक्त की मुराद पूरी नही करेगे तो वे हमारे भक्त कैसे रहेगे? इसलिये उन्हे कुछ यत्र–मत्र देना चाहिए। ऐसा करने वालो मे साधुता – सतपन नही है।

कई जगह यह भी होता है कि कोई लब्धप्रतिष्ठ ख्यातनाम साधु आता है तो उस पर अधिक प्रेम होता है और छोटे साधु के आने पर कम। ऐसे दातार कम होगे जो बिना मतलब अर्थात् निष्काम भाव से दे और ऐसे भी दातार हैं, जिन्होने सत्सग के लिये अपना तन, मन धन अर्पण कर दिया है।

सुना है – कई लोग अपने को श्रीनाथजी के लिये अर्पित कर देते हैं। ऐसे लोग अपने ही हाथ से बनाते–खाते हैं, किसी के सहारे नही रहते। क्या आप भी स्वय को महात्मा को समर्पण करोगे? अर्थात इस प्रकार अतिथि सविभाग व्रत धारण करोगे कि सत पुरुष जिस वस्तु का सेवन नही करते हम भी वह वस्तु काम मे नही लेगे? आप मुनि को अचित्त पानी देना चाहे परतु घर मे अगर वह होगा ही नहीं तो आप कहा से देगे? इस व्रत का पालन करने के लिये श्रावक सचित्त खान–पान का भी त्याग करता है। जो श्रावक सचित्त खान–पान का त्यागी होगा उसके घर से शायद ही कोई साधु खाली लोटेगा।

भोजन–पानी के विषय मे विवेक की बहुत आवश्यकता हे। जिन वस्तुओ मे कीडे निकलते हैं? उन वस्तुओ को कोई केसे खा जात हाग? और भोजन में लटे निकालना क्या विवेक हे? अधिक दिनो के पिसे आटे ओर मिर्च आदि मसालो मे अण्डे हो जाते हें। लेकिन (तेयार) चीज खरीद कर खान वाल गृहस्थ समझते हें कि हम तो सीधी खरीदकर चीज खाते हे सा पाप स वच रहे हें। आटा पीस–पीस कर पुराने आटे मे मिलात जाना ओर उस सग्रह का समाप्त न होने देना क्या ठीक ह? क्या पुरान आटे म जीव–जन्तु नही पड जाते होगे? गृहस्थो को इस सम्वन्ध म खूब विवक से काम लना चाहिये। अविवेकी पुरुष धर्म का भली–भाति पालन नही कर सकता आर न कल्याण का भागी ही हो सकता ह।

तात्पर्य यह ह कि विना प्रयोजन सत से प्रेम हाना साभाग्य की वात हे। मैं अगर व्याख्यान सुनाने के वदल श्राताआ स एक–एक पेसा लने लगू तो मेरा अनमाल व्याख्यान मोल का हा जाएगा। लकिन अगर आप मेरे पास

धन–दोलत के लालच से आए तो यह क्या ठीक होगा? बिना गरज के सत्सग की भावना बढ़ाओ तो बस बेडा पार हे।

राम नारद से कहते है – हे ऋषि! आपके आने से मै बडभागी हो गया। यद्यपि मै घर–कुटुम्ब वाला हू, फिर भी आपके आने से भाग्यवान हू।

नारद वीणा बजाने वाले थे। आकाश मे उडने वाले थे। कई तरह के कौतुक किया करते थे। उन्हे कलह कराने मे मजा आता था और बडे चाव से तमाशा देखते थे। जैन साधु अठारह पकार के पापो के त्यागी होते है। दशरथ अगर ऐसे साधु की भक्ति करते हैं तो यह बात किसे पसन्द न आएगी?

राजा दशरथ क्षेमकर मुनि के दर्शन करने गये। अब दशरथ किस पकार क्षेमकर मुनि की गोद मे बैठते हैं यह देख कर आप अपनी भावना दौडाइये?

उस ग्रथ रचने वाले को धन्य है जिसने हमारे लिए इस आदर्श और मगलमय वस्तु का सग्रह किया है। उसका हमारे ऊपर अपरिमित उपकार है। उसकी कृपा न होती तो हम दशरथ या क्षेमकर मुनि को कैसे जानते?

दशरथ की कथा से साधारण पाठक यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि दशरथ जैसे राजा भी सत्सग को आनन्ददायक मानते थे तो हम भी सत्सग का लाभ क्यो न उठावे? राम ने अपने को छोटा बतलाया है और सत्सग की महिमा बडी बतलाई है। राम की तरह लघुता धारण करने से ही सच्ची महत्ता मिलती है।

एक रोगी जो मोहताज है और जिसका रोग भी बढा हुआ है उसको किसी डाक्टर ने निरोग कर दिया। अब विचारणीय यह है कि किसने किस पर उपकार किया है? समझदार डाक्टर तो यही कहेगा कि रोगी ने हम पर उपकार किया है। यदि हम स्वर्ग मे होते तो वहा कोई रोगी ही न मिलता और न हमे सेवा करने का अवसर ही प्राप्त होता। में मर्त्यलोक मे हू। अतएव मेरा कर्तव्य यही हे कि मे रोगियो की सेवा करू। मै रोगी का उपकार ही मानूगा। मे बदला नही चाहूगा।

दर्दे दिल के वास्ते पैदा किया इन्सान को।
वर्ना तायत के लिये कुछ कम न थे कुर्रो बया।।

आप भी यह भावना धारण कीजिये। पर कठिनाई तो यह है –

कहनी मिश्री खाड है रहनी विष की लोय।
कहनी–सी रहनी रहे ऐसा बिरला कोय।।

क्षेमकर मुनि का आगमन सुनकर दशरथ की कली–कली खिल गई। उन्होने बडे उत्साह और चाव के साथ मुनि के दर्शन करने की तेयारी की। उन्हे ऐसा भान होने लगा, मानो चिर अभिलिषित वस्तु हस्तगत होने वाली है। महाराज दशरथ मुनिवर क्षेमकर की सेवा मे उपस्थित हुए। उनका वेभव देखकर चकित हो गये। मुनि की प्रशान्त मुख–मुद्रा आन्तरिक तेज से देदीप्यमान थी। उनके उन्नत ललाट पर स्पष्ट खिची हुई तीन रेखाए निर्मल रत्नत्रय के अस्तित्व को सूचित कर रही थी या तीन गुप्तियो का परिचय दे रही थी या मुनि की त्रिलोक वत्सलता को व्यक्त कर रही थी यह निर्णय करना कठिन हे। नेत्रो मे विराग की लाली होने पर भी अलौकिक सौम्यता दीप्ति और सयम की धवलता थी। मुनि की दृष्टि नाक के अग्रभाग पर ठहरी थी जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि ससार की ओर से उन्होने अपनी दृष्टि हटाली है और अन्तरात्मा की ओर ही वे देख रहे हैं। कृशकाय गौरवर्ण और प्रशस्त लक्षणो से सम्पन्न मुनि की शरीर–सपत्ति दर्शनीय थी।

राजा दशरथ की आखे मुनिवर का यह भव्य रूप देखकर निहाल हो गई। उन्हे जान पडा जेसे तीन लोक समग्र सात्विकता ओर पवित्रता यही आकर इकट्ठी हो गई। दशरथ यह सब देखकर मुनि के चरणो मे झुक पडे। विधि–पूर्वक वन्दना–नमस्कार करने के पश्चात् विनयपूर्वक मुनि के सामने बेठ गये – न बहुत दूर न बहुत पास।

मुनिराज ओर महाराज दशरथ की जो बात हुई वह वडी ही महत्त्वपूर्ण हे। एक ओर राजर्षि दशरथ हैं ओर दूसरी ओर महर्षि क्षेमकर। दोना महानुभावो के वार्तालाप का वर्णन करना बडा ही कठिन काम हे। फिर भी ज्ञानियो की दी हुई वस्तु आपके सामने रखता हू। मेरा काम तो एक पोस्टमन का–सा हे जो दूसरो को भेजी हुई चिट्ठियो को तकसीम कर दता हे। मे ज्ञानियो की दी हुई वस्तु आपके पास पहुचाताहू।

कहा जा चुका हे कि मुनि को देख कर दशरथ को अपार हर्ष हुआ। राजा के हृदय मे मुनि के प्रति अनन्य प्रेम था। जिनक हृदय म मुनि क प्रति अनन्य प्रेम हो ओर जो यह समझते हो कि मुनि क समान ससार म ओर काइ हितकर नहीं ह समझना चाहिए कि ऐस लाग अपना भव मिटा रह हैं। दशरथ भी मुनि को वडी श्रद्धा आर भक्ति की दृष्टि स दख रह हैं। मुनि भी विचार करते हैं कि यह वडा राजा हे। राजा क ऊपर बड वड कार्यो का वझ रहता हे। फिर भी यह मेरे पास आया हे तो इस क्या दना चाहिय?

किसी पर कम और किसी पर ज्यादा बोझा होता है। पहले उसी को हल्का किया जाता है जिस पर ज्यादा बोझ हो। इन राजा–महाराजाओ ने जगत् का बोझ अपने ऊपर उठा रखा है। अतएव इन्हे धर्म सुनाकर इनका उत्थान करना है। इनका पतन जगत का पतन है और इनका उत्थान जगत का उत्थान है। अतएव राजा को पहले धर्मोपदेश देना चाहिये।

राजा लोग पूर्वोपार्जित पुण्य लेकर आते है। प्रजा उनका अनुकरण करती है। कहावत है– 'यथा राजा तथा पजा। अतएव धर्म सुनाकर पहले उन्हे सुधारना मुनि का कर्तव्य है।

उपदेश–श्रवण

क्षेमकर मुनि राजा दशरथ से कहने लगे – कौशलेश! नेरेन्द्रकुल–कमल–दिवाकर! तुम परम्परा की उस गादी पर हो, जो भगवान् ऋषभदेव के समय से चली आई है। भगवान् ऋषभदेव ने ससार को साक्षी रखकर जो काम किया है वह एक ही अश मे न रह जाए तुम्हारे द्वारा उसके दोनो अशो की पूर्त्ति होनी चाहिये। यह सत्य है कि तुमने राज्य को खूब उन्नत बनाया है और पुत्र को राज्य करने योग्य कर दिया है लेकिन भूलना मत यह तुम्हारे कार्य का एक ही अश पूरा हुआ है। तुम्हारे पुत्र राज्य की धुरा उठाने योग्य हो गए हैं फिर भी इससे भगवान् के दोनो काम पूर्ण नहीं हो जाते। दूसरा अश अभी तक अपूर्ण है। उसे पूर्ण करना चाहिये। अब तुम्हे अनन्त भव–राज्य को सुधारने की तैयारी आरम्भ कर देनी चाहिए।

बुद्ध ने विचार किया था कि जब तक राजा–महाराजा धर्म को धारण न करेगे ओर केवल तलवार के बल पर शाति स्थापित करने की चेष्टा करते रहेगे तब तक वास्तविक और स्थायी शाति नही हो सकती। यह विचार कर उन्होंने यह नियम बनाया था कि राजा के दो पुत्रो मे से एक सयम–दीक्षा धारण करे और एक राज्य का भार वहन करे। अर्थात शाति रखने के लिए एक धर्म के बल का उपयोग करे ओर दूसरा नीति से राज्य करे। इस प्रकार राजबल और धर्मबल से ससार की गाडी अच्छी तरह चल सकती है।

मुनि कहते है – हे राजन्! जो बात भगवान ऋषभदेव ने अपने पुत्रो से कही थी वही मैं तुमसे कहता हू। उसे ध्यानपूर्वक सुनो और फिर अपना कर्तव्य स्थिर करो।

भ ऋषभदेव के पुत्रो का उदाहरण

भगवान् ऋषभदेव ने अपने पुत्रो से जो बात कही थी वह सूयगडाग सूत्र के दूसरे अध्याय मे लिखी है। भागवत के पाचवे स्कध मे भी है। सूयगडाग सूत्र मे कहा है–

सबुज्झह कि न बुज्झह, संबोही खलु पेच्च दुल्लहा।
णो हूवणमंति राइओ णो सुलह पुणरावि जीविय।।

भगवान् ऋषभदेव के एक सो पुत्र थे। दीक्षा लेने से पहले भगवान ने अपने सव पुत्रो को राज्य का बटवारा करके अलग कर दिया था। लेकिन भरत ने चक्रवर्ती होने की इच्छा की। भरत ने सोचा – मैं चक्रवर्ती तभी हो सकता हू, जब भरत क्षेत्र के छह खडो मे से एक अगुल भूमि भी दूसरे के अधिकार मे न रहे। सम्पूर्ण क्षेत्र पर मेरा आधिपत्य हो। यह सोच कर भरत ने अपने भाइयो के साथ भाई–भाई का सम्बन्ध न रख कर स्वामी–सेवक का सबध स्थापित करना चाहा। बाहुवली को छोडकर शेष 98 भाइयो ने विचार किया कि यह भरत की अनीति है। हम पिता का दिया हुआ राज्य करेगे भरत का दिया हुआ राज्य नहीं करेगे। भरत कहते हैं – मेरा दिया हुआ राज्य भोगो पर यह न होगा। भरत वलिष्ठ हे सही, पर हम भी कायर नही हैं। हम भी भगवान् ऋषभदेव के पुत्र हैं। भले ही इस शरीर के टुकडे हो जाए हम भरत का आधिपत्य नही मानेगे। अतएव भरत का सामना करने के लिये सेना सजानी चाहिए।

भ ऋषभदेव के अट्ठानवे पुत्रो ने यह विचार किया। लेकिन फिर सोचा कि हमे पिताजी ने राज्य दिया ओर सोभाग्य से अभी तक वे मोजूद हैं। इस कारण उनसे सलाह लिये विना लडाई लडना उचित नहीं हे। उनस सलाह लेकर ही लडाई करना ठीक होगा। अगर उनका आदेश होगा कि भरत के सामने झुक जाओ तो हमे झुक जाना होगा। उस दशा म हमारी काई तोहीन नहीं होगी, क्योकि हम भरत के झुकाये नहीं झुकगे पिताजी के झुकाग झुकेंगे। अगर पिताजी ने हमे पहले ही भरत के अधीन कर दिया हाता ता आखिर उनकी आधीनता मे रहना ही पडता। हा अगर पिताजी अड रहन का आदेश देगे तो हरगिज नहीं झुकेंगे। फिर ससार की कोई भी शक्ति हम नही झुका सकेगी। पिताजी की सलाह लेने के बाद इन्द्र क रूठन की भी हम परवाह नहीं।

आखिर यही विचार पक्का हुआ। सव भाई मिलकर भगवान ऋषभदव के समीप पहुचे। भगवान न उन्ह दखत ही कहा – पुत्रो! आज तुम भरत क

सताये हुए मेरे पास आये हो। भरत तुम्हारे राज्य पर अपनी मुहर लगाना चाहता है। जिसे मैने तुम्हे प्रदान किया। वह अब भाई–भाई के बदले स्वामी–सेवक का सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। लेकिन मैंने तुम्हारे भीतर जो स्वाधीनता की भावना भरी है। उसे कहा निकाल फैकोगे? क्या तुम सब भरत के गुलाम होकर रहोगे?

भरत के अधीन होकर रहना तुम्हे बुरा लगे यह स्वाभाविक हे। लेकिन राज्य का अधिकारी होकर भी क्या कोई स्वाधीन रह सकता है? राज्य का अधिपति भी अगर स्वाधीन होता तो मै ही क्यो राज्य त्यागता? जिस चीज के लिये लोग अपनी मनुष्यता को भूल कर कुत्ते की तरह लडते है और जिसे मैंने तुच्छ समझकर तज दिया है क्या उसी चीज के लिए तुम लोग, मेरे पुत्र होकर भी आपस मे लडोगे? बच्चो! तुम अपना राज्य भोगते हुए भी सचमुच की स्वाधीनता नही पा सकते। अगर सच्ची स्वाधीनता प्राप्त करनी है तो मेरे पथ का अनुसरण करो। राज्य को लात मार दो। मैं सच्चा शाश्वत और सुन्दर राज्य पाने का उपाय बतलाता हू। अब मै वह पिता नही रहा कि जमीन का कुछ टुकडा देकर तुम्हे क्षणिक शाति पहुचाऊ और एक प्रकार से तुम्हे भुलावे मे डालू। अब मैं तुम्हारे लिये त्रिलोक का राज्य लाया हू। इसलिये बोध प्राप्त करो। यह समय लडाई का नही है। यह जागृति का अनमोल अवसर है। भरत की दशा देख कर तुम्हे बोध पाना चाहिये। उसकी दशा दयनीय है। उसकी लोभवृत्ति देखकर तुम्हे समझना चाहिये कि राज्य पा लेने पर भी सच्ची शाति प्राप्त नही होती। राज्य के लोभ ने उसे ठग लिया है। तुम जानबूझकर क्यो ठगाई मे आना चाहते हो? अक्षय साम्राज्य का अधिकार तुम्हारा स्वागत करने को उद्यत है। उस ओर पैर क्यो नही बढाते?

यह सूयगडाग सूत्र की गाथा का भाव है। वेदव्यासजी भागवत मे क्या कहते है? यह भी सुन लीजिये –

नाय देहो देहभाजा नृलोके कष्टान् कामान् नाहते विड्भुजा ये।
तपो दिव्य पुत्रकायेन सत्त्व सिद्धयेद् यस्माद् ब्रह्म सौख्य त्वनन्तम्।।

अरे पुत्रो! देहधारियो की यह देह उन भोगो को भोगने के लिये नही है। जिन्हे प्राप्त करने मे भी घोर कष्ट सहन करना पडता है भोगने मे भी कष्ट सहना पडता हे। और भोगने के बाद भी कष्ट सहना पडता हे। ऐसे कष्टमय काम भोग भोगने के लिये यह काया नही मिली हे। अतएव इन भोगो पर गर्व मत करो। ये भोग विष्टा खाने वाले पशु भी भोगते हे। तुम कह सकते हो कि हम राजपुत्रो का शरीर अगर भोग भोगने के लिये नही तो किसलिये हे?

हे पुत्रो। यह शरीर वह दिव्य तप करने के लिये हे जिस तप से अन्त करण शुद्ध होता हे ओर शुद्ध अन्त करण से अनन्त–ब्रह्मसुख की प्राप्ति होती हे।

क्षेमकर मुनि कहते है – हे राजन्। भगवान् ऋषभदेव की एक ही बात से उनके अट्ठानवे पुत्र जाग गये। उनका मोह नष्ट हो गया। वे भगवान् से कहने लगे – प्रभो। हम तो पहले ही यह निश्चय करके आये हैं कि आपका आदेश हमे मान्य होगा। आप जो कहेगे वही हम करेगे। आपकी सलाह सही है। राज्य के जिस टुकडे का भरत को लोभ हुआ है वह अगर हमने भरत को जीत कर बचा भी लिया तो उससे क्या होगा? और यह भी क्या असभव है कि हम उसकी तलवार से मारे जाए? अतएव हम आपके आदेश को शिरोधार्य करके अक्षय राज्य ही प्राप्त करना चाहते हैं।

हे राजन्। अपने पूर्वजो के इस वृत्तात से तुम भी अपने लिये मार्ग खोज सकते हो। भगवान् ओर उनके पुत्रो की इस कथा को मथकर मक्खन निकालो ओर उससे लाभ उठाओ।

मुनिवर क्षेमकर द्वारा यह वृत्तात सुनकर दशरथ कहने लगे – हम उस महिमा– मडित वश मे उत्पन्न हुए हैं जिसमे कि महापुरुष शक्ति और सत्य का पक्ष होते हुए भी राज्य को तज गये। भगवान् के तनिक से उपदेश से अट्ठानवे भाई मुनि बन गये। उसी बडभागी वश मे मेरा जन्म हुआ हे।

राजा दशरथ मुनिराज से पूछने लगे 'मुनिवर। पूर्वजो की गोरव–गाथा सुनते– सुनते सन्तोष नही होता। इससे साहस उत्साह ओर ढाढस मिलता हे। कृपया यह ओर बतलाए कि अट्ठानवे भाइयो के एक साथ मुनि बन जाने के पश्चात् क्या हुआ?'

चक्रवर्ती भरत का पश्चात्ताप

मुनि ने कहा – भरत को चक्रवर्ती पद का गर्व हो गया था। वह अपने भाइयो पर भी शासन–सत्ता स्थापित करना चाहता था। उसको समझाने का दूसरा कोई उपाय नही था। पर जब अट्ठानवे भाइयो ने राज्य त्याग दिया तब भरत की बुद्धि ठिकाने आई। भरत को मालूम हुआ कि मेरा दूत पहुचने के बाद मेरे भाई पिताजी के पास गए और पिताजी के उपदेश से राजपाट छोडकर मुनि बन गए हैं। यह सुनते ही भरत मूर्च्छित होकर सिहासन से नीचे ढल पडा। जब होश मे आया तो अपने आपको धिक्कारने लगा। कहने लगा – मुझे धिक्कार हे। मेरे राजपाट को मेरे पद को और मेरे वैभव को धिक्कार है। अविवेक के चक्कर मे पडकर मैंने घोर अनर्थ कर डाला

है। मै बन्धुद्रोही हू। पिता के प्रति मैंने विश्वासघात किया, भाइयो को सताया और जगत् मे निन्दनीय कहलाया! हा तृष्णा! तू मुझे ले डूबी! मै क्या करने चला था और क्या हो गया? मैं महान् बनने की मृगतृष्णा मे फसकर और हीन हो गया! सच्चा पद तो उन भाइयो को ही मिला।

मुनि कहते है – राजन्! भरत इतना पश्चात्ताप करके ही नहीं रह गये। वे दौडे–दौडे भगवान् के पास पहुचे। उस समय भगवान अयोध्या मे ही विराजमान थे। अट्ठानवे भाइयो ने अयोध्या मे ही दीक्षा धारण की थी। भरत बिना किसी साथी के अकबकाये हुए– से उसी प्रकार भगवान् के पास पहुचे, जैसे घर मे आग लगने पर लोग बाहर भागते है! भगवान् के पास पहुच कर उन्होने भगवान को नमस्कार किया। अपने भाइयो को साधु वेश मे देखकर स्नेह की तीव्रता के कारण भरत की आखो मे आसू बहने लगे! कठ गद्गद हो गया। वे बोले–

वीर सुनो मम वीनती, व्हाला छोडी मत जाओ।
नयणा थी झरणा झरे, बोले अति विललावे।।
चक्र चक्र मुझने दियो, भाई प्रेम भुलाणो।
राजानपति राजा बन्यो आज नही है ठिकाणो।।

चक्रवर्ती भरत एक साधारण दीन पुरुष की भाति रोते हुए – विलाप करते हुए अपने भाइयो से कहने लगे – भाइयो! यद्यपि ससार–त्याग कर दीक्षा लेना उत्तम है और वह दिन धन्य होगा जब मैं भी सब–कुछ त्याग कर सयम–दीक्षा अगीकार करूगा लेकिन आपका ऐसे दीक्षा लेना मुझे बदनाम करना है। आप मुझे लोभी और तुच्छ बनाकर मत छोड जाओ। आपने–कदम उठाया है उससे मुझे समझ आ गई है। पहले मेरे शस्त्रागार मे छह खण्ड का अधिपत्य दिलाने वाला चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। देवसेवित उस चक्ररत्न ने मेरा मस्तक फेर दिया।

घूमते हुए कुम्हार के चाक पर जो आदमी बैठता है उसे ऐसा चक्कर आता है कि उसकी दृष्टि मे सारा ससार घूमता है। पानी बरसते समय बच्चे चक्कर लगाते है और गिर जाते है तो उन्हे भी ऐसा जान पडता है कि सारा ससार घूम रहा है। इस तरह आया हुआ चक्कर तो चक्कर ही मालूम होता है किन्तु जब धन विद्या और शस्त्रबल आदि का चक्कर आता है तब घूमता तो है मनुष्य आप ही मगर समझता वह यह है कि ससार घूम रहा है।

भरत कहते है – 'मे भी इसी तरह चक्र मे घूम गया। चक्र ने मुझे चक्कर मे डाल दिया। उसी चक्कर ने भ्रातृप्रेम भुलाकर स्वामी–सेवक

सम्बन्ध स्थापित करने की भावना उत्पन्न कर दी। आपने मेरा दिमाग ठिकाने ला दिया है। अब आप मुझे कलक से बचाइए।

क्षेमकर मुनि राजा दशरथ से कहते हे – तुम अपने पूर्वजो के चरित्र पर ध्यान दो। तुम्हारे पूर्वज राज्य के जाल मे फसे–फसे ही नही मरे वरन् उन्होने धर्म की धुरा धारण करके जगत के समक्ष लोकोत्तर आदर्श भी उपस्थित किया था। आप ही उन्ही के वशज हे। आप भी वीर हे। अतएव धर्म को धारण करके ससार के सामने धर्म की महिमा प्रकट करो। आप जैसे वीरो के बिना धर्म की उन्नति नहीं होगी। आपके पूर्वज के नाम पर प्रसिद्ध इस भारत मे धर्म को फैलाओ और स्व–पर कल्याण करो।

भगवान् ऋषभदेव के पुत्र चक्रवर्ती भरत के नाम पर इस देश की 'भारत' के नाम से प्रसिद्धि हुई है। भरत ने इसके सम्पूर्ण छह खडो पर एकछत्र राज्य किया था इसी कारण यह भारत भरतखण्ड कहलाया है। उन भरत की भी शाति का मार्ग दिखलाने वाले उनके 98 भाई थे। और साथ ही भरत ने उन्हे शाति का मार्ग दिखलाया था। यद्यपि भरत का उद्देश्य उन्हे शाति–मार्ग दिखलाने का नही था फिर भी परोक्ष रूप मे वे निमित्त तो बने ही। ज्ञानीजन शुक्ल पक्ष ही ग्रहण करते है अर्थात दूसरे के दोष न देखकर गुण ही ग्रहण करते हैं। ज्ञानियो का कथन है कि हमे राग–द्वेष मे पडने की आवश्यकता नही हे। जिससे आत्मा का उत्थान हो वह सब वस्तु हितकारक हे ओर जो अहितकारक हे वही बुरी हे। भरत ने तृष्णा के वश होकर अपने 98 भाइयो को अशात करना चाहा था परन्तु धन्य हें भगवान् ऋषभदेव जिनके उपदेश से उन्होने स्वय शाति प्राप्त की ओर साथ ही ससार को भी शाति का मार्ग सुझाया तथा भरत का भी मानमर्दन कर डाला।

आज भी दो भाइयो मे से अगर एक भाई इस प्रकार के झगड के कारण मुनि बन जाए तो क्या दूसरे भाई का हृदय नही काप उठेगा? जरा–सी जिद छोड देने पर शाति हो जाती हे तो ससार छोड देने पर शाति क्या नही होगी? भरत अपने भाइयो से कहते हे –

वीर सुणो मम विनती व्हाला छोडी मत जाओ।
नयणा थी झरण झरे भरत खडो विलवावे।।

भरत चक्रवर्त्ती राजा था। सेना ओर रत्ना क बल से प्रबल था कहता था – मेरी आन न मानने वाला कोन हे? भरत की आन ओर भरत क प्राण बराबर हैं। मेरी आन न मानने वाला मेरे प्राण–हरण का प्रयत्न करता हे। इस पृथ्वी पर कोन ऐसा वीर ह जो मेरी आज्ञा का उल्लघन कर सकता है? इस

प्रकार बलिष्ठ और गर्विष्ठ भरत ने अपने भाइयो पर हुकूमत चलानी चाही थी लेकिन अब वही भरत हुकूमत के बदले मिन्नत कर रहा है। अब उनकी आन मिन्नत मे परिणत हो गई और वह अपने पाप की आलोचना कर रहा है।

भरत की तरह आप को भी आलोचना करनी चाहिए। आप कह सकते है कि हमने भरत की तरह अपने भाइयो पर हुकूमत नही जमाई है और न भाइयो पर जुल्म ही किया है। लेकिन सभी मनुष्य आपके भाई ही तो हैं। जिनसे सहायता मिलती है वे सब भाई है। मनुष्य को मनुष्य से सहायता मिलती ही है। बल्कि पृथ्वी पर जितने भी पदार्थ हैं उन सब की सहायता मिलने पर ही जीवन निभता है। जल, पवन आग, वनस्पति, पशु–पक्षी और मनुष्य की सहायता बिना कौन जी सकता है? जिनकी सहायता पर आपका जीवन टिका हुआ है, देखना चाहिए कि उनके साथ हमारा व्यवहार कैसा है?

भरत कहते है – भाइयो! चक्र ने मुझे चक्कर मे डाल दिया। शस्त्रागार मे उस चक्र के साथ एक छत्र भी उत्पन्न हुआ था। वह छत्र कहता था कि मेरे सामने छह खण्ड मे दूसरा छत्र नही रह सकता। इसलिए तुम सम्पूर्ण भरत क्षेत्र के स्वामी हो।

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र मे उस छत्र की बहुत महिमा बतलाई है। वहा कहा हे कि उस छत्र मे 98 हजार सोने की तडिया हैं और ऊपर रत्नो का छत्ता है।

धूप या वर्षा के समय साधारण से साधारण आदमी को मामूली छत्ता मिल जाता है तो उसके गर्व का पार नही रहता। फिर जिस छत्र से सम्पूर्ण भरत क्षेत्र का राज्य मिलता हो वह छत्र पाकर भरत को अगर गर्व हुआ तो इसमे आश्चर्य ही क्या हे? भरत कहते हैं –

छत्र ताप हरता कह्यो भाई ताप बढायो।
दडे दडित हू हुओ जग अपयश छायो।।

आप यह विनती किस बीर (भाई) को सुनाओगे? आप मेरे चेले तो फिर बनाना पहले भाई बनो। क्या आप मेरे भाई नही हैं? मै आपका अन्न–जल खाता–पीता हू। आपके दिये हुए मकान मे रहता हू। इस प्रकार मुझे आपकी सहायता मिल रही हे। फिर आप मेरे भाई क्यो नहीं हैं? और क्या मै आपका भाई नही हू। दुर्बल हू, फिर भी आपको उपदेष सुनाता हू। फिर मै आपका भाई क्यो नही? आप भी भरत की तरह विचार करो कि भाई का प्रेम न छूटे।

भरत कहते हें – भाइयो! मेरे यहा छत्र आया। मैंने सोचा – मेरे घर यह छत्र आया हे मुझे छह खण्डो की साहबी मिलेगी। फिर मेरे घर किस बात

की कमी रह सकती है? यह छत्र मेरा ताप हरेगा। मे सब लोगा को इस की छाया मे लाऊगा। लेकिन इस छत्र ने क्या किया यह भेद मैंने आज पाया। अगर मैंने एकछत्र राजा बनने का विचार न किया होता तो आपको क्यो कष्ट होता? और आप जिस मस्तक पर मुकुट धारण करके शोभित होते थे उसके बाल भी क्यो उखाड फेकते? यह सब इसी छत्र की बदौलत हुआ। जिस छत्र ने मेरे भाइयो को इस स्थिति मे पहुचा दिया, वह छत्र मेरे किस काम का?

छतरी तो आप भी लगाते हैं। आपकी छतरी मे भरत के छत्र की तरह कोई करामात तो नहीं है। फिर भी उस छतरी के पीछे अपने भाइयो को सताने का इरादा तो नहीं करते हैं? कोट और बूट के साथ छतरी मिल जाने पर घमड तो नही करते? बहुतेरे तो उस समय कीडो—मकोडो की कौन कहे मुनियो तक को नहीं देखते। आप की छतरी इस तरह दूसरो को सताने के लिये तो नही है?

भरत कहते हैं — धिक्कार हे ऐसे छत्र को जिसके कारण मैंने अपने प्यारे भाइयो को सताया।

भरत फिर कहने लगे — मेरे यहा एक दण्डरत्न भी उत्पन्न हुआ हे। वह मेरे शरीर से आधा हाथ ऊचा अर्थात् चार हाथ का हे। देव उसकी सेवा करते हें। उसके प्रताप से जहा में जाता हू, मेरे आगे सो कोस तक सडक बन जाती हे। मेरी आज्ञा होने पर उसके द्वारा मजबूत से मजबूत किवाड भी फडाक से खुल जाते हें।

दण्डनीति प्रजा मे अमन—चेन कायम रखने के लिए हे। लेकिन में अपने भाइयो को ही दण्ड देने के लिए तेयार हो गया — अपने सामन झुकाने को तेयार हो गया। माफी मागना भी दण्ड हे और झुक जाना भी दण्ड हे। में उस दण्डरत्न के कारण आपको झुकाना चाहता था लकिन आप की मुखमुद्रा देखकर में समझ गया हू कि उस दण्डरत्न न मुझ का ही झुका दिगा हे। आपने मुझ को भली भाति समझा दिया हे कि उस दण्डरत्न स स्वयमव दण्डित हुआ हू।

मित्रो। कई दण्ड धरे रह गये और दड का अभिमान करन वाल दडी चले गये। अतएव अगर आपके हाथ म दड हे सत्ता हे ता आप उसका अभिमान न करे आर न दुरुपयोग कर। सत्ताधीश का सत्ता का दुरुपयाग न होने देने की सावधानी रखनी चाहिए। एसा न करन वाला दूसरा का दड [illegible]

के पहले स्वय ही दड का पात्र बन जाता है। उचित रूप से दड का पयोग न करने वाला दण्डित होता है। उसका अपमान होता हे।

मणि मुझ गेह प्रकाशियो मन मे हरषायो।

तुम देखत अहो बान्धवा! ज्ञान हिरदा मे आयो।

राजा भरत के भडार मे मणिरत्न उत्पन्न हुआ था। शास्त्र मे उसकी बडी महिमा बतलाई गई है। चक्रवर्ती के हाथी के कुभ पर उसे रख दिया जाय तो चक्रवर्ती के अनेक रूप दिखाई देने लगते है। उसे मस्तक पर रखने से रोग विष और शस्त्र का प्रभाव नही पडता। मणिरत्न के इस चमत्कार मे असभव प्रतीत होने वाली कोई बात नही है। आज के कुछ लोग इस चमत्कार को भले न माने पर मणि के तेज–प्रताप की कीमत तो आज भी है। हीरा इतना मूल्यवान क्यो माना जाता है? कोहिनूर हीरा, जो भारत मे कृष्ण नदी के किनारे एक किसान को मिला था और जो आजकल इग्लैड के बादशाह के पास है क्यो इतना कीमती समझा जाता है? क्या भूख लगने पर उससे पेट भर जाता है? हीरा और कोयला एक ही प्रकार के परमाणुओ के होते है। अधिक काल तक पृथ्वी मे रह जाने वाला कोयला हीरा बन जाता है। कहा जा सकता है कि धीरज का नाम ही हीरा है। जो जल्दबाजी करता है वह कोयला है। किसी काम मे जल्दी करना – धैर्य खो देना एक प्रकार से कोयलापन है।

आज का जमाना जल्दी का हे। गमनागमन मे जल्दी, खाने–पीने मे जल्दी विवाह–शादी मे जल्दी। जहा देखो जल्दी ही जल्दी नजर आती है। यद्यपि जल्दी मरना कोई नही चाहता फिर भी इस जल्दबाजी के फलस्वरूप मोत भी जल्दी ही आती हे।

भरत कहते हे–यह मणि पाकर मैंने बडा गर्व अनुभव किया। सोचा मे एक रूप होकर भी अनेक रूप हो जाता हू। मुझ पर विष और शस्त्र आदि का भी कोई असर नही हो सकता। मेरे भाई चाहे जितने बलवान् हो इस मणि के प्रभाव से मै उन पर अवश्य ही विजय पाऊगा लेकिन अब मुझे विचार आता है कि मणि के कारण उत्पन्न हुए गर्व ओर अनीतिभाव की बदौलत ही भाइयो को साधु बनना पडा। इस तरह जिस मणि के कारण में आसमान पर चढा था उसी मणि ने मुझे गडढे मे गिरा दिया।

आपके पास वेसा मणिरत्न नही हे लेकिन आप तो अपने मामूली काच पर ही अभिमान करने लगते हे। अगर आप भरत के अभिमान को बुरा समझते है तो अपने अभिमान की ओर क्यो नही देखते?

मुखडा क्या देखे दर्पण मे,तेरे दयाधर्म नही मन मे।
जब लग फूल रहे फुलवारी बास रहे फूलन मे।
इक दिन ऐसा होय जायगा, घस उगेगी तन मे।।मुखडा।।
पगिया बाधे पैच समारे फूले गोरे तन मे।
धन जोवन डूगर का पानी, ढलक जाय एक क्षन मे।।मुखडा।।

भरत को देवाधिष्ठित मणि पर अभिमान हुआ था पर आपके पास कोहिनूर हीरा आ जाय तो कैसा अभिमान होगा? अगर आप साधारण सी चीज का अभिमान नही रोक सकते तो भरत को दिव्य मणिरत्न पर अगर अभिमान हुआ तो आश्चर्य ही क्या है? मणि की बात जाने दीजिए आप मुह देखने काच पर ही क्या अभिमान नही करने लगते? किसान को अपने काम से फुर्सत नही मिलती होगी लेकिन बडे कहलाने वाले आप लोग काच देखकर पोशाक सजाने मे ही घन्टो लगा देते हे। अपने को बडे समझने वाले सोचते हैं—हम धनी हैं पुण्य लेकर आये हे अतएव हमारा काम मोज उडाना ही है। गरीब मरने खपने के लिए हैं। तुम्हारा यह हाल देखकर साधु सोचते हैं कि तुम साधुओ को देखकर पश्चाताप क्यो नही करते हैं? तुम्हारा हाल देखकर ही हम साधु हुए हे। हम भी तुम्हारे भाई हे। हमे देखकर तुम भरत की भाति पश्चाताप क्यो नही करते?

आप काच मे मुह क्यो देखते हैं? आपने कोनसा ऐसा अच्छा काम किया हे कि गर्व से मुह देखते हे? केवल इसीलिए कि मुह साफ किया हे? इतनी—सी बात पर ही गर्व करना शोभा नही देता। अगर काच मे मुह देखना ही हे तो हम मना नही करते पर यह भी विचार करो कि हमे यह मुह ओर आखे किसलिये मिली हे! ओर इन्हे पाकर हमने क्या किया हे? डाक्टर आख बना तो नही सकते सिर्फ आख का पर्दा खोल कर ही अभिमान करते हैं। एसी वस्तु पाकर आपको सोचना चाहिए कि यह उत्तम शरीर पाकर भी म अब तक दया क्षमा सतोप आदि उत्तम गुण नही सीख पाया हू। अगर आपन उत्तम शरीर पाकर उसे उत्तम गुणो से विभूपित कर लिया ता आपका बडा पार हो जाएगा। आपका अभिमान गल जाएगा।

भरत कहते हैं—भाइयो! मुझे मणि ने भुलाव म डाल दिया।

दुनिया की निगाह म तो भरत की मणि सच्ची थी मगर उन त्यागमूर्ति मुनियो के सामन जाच करन पर वह कच्ची निकली। भरत कहते थे—इस चिन्तामणि जाति की मणि ने मरी चिन्ता मिटाकर मुझ सुख पहुचाने के बदले मेरी चिन्ता सा गुनी बढा दी! मेर सुख का साख लिया! मर सिर पर दु ख का पहाड पटक दिया।

भरत अपनी मणि को कच्ची मानते हे आप अपने धन को सच्चा तो नही मानते? अगर सच्चा मानते हो तो उसे सभालना छोड दो। उसकी रक्षा की चिन्ता मत करो। जो सच्चा है वह तुम्हे छोडकर कही जाएगा नही। क्या ऐसा कर सकते हो? नही कर सकते तो फिर उसे कच्चा समझो। उसके भरोसे मत रहो। इसी मे तुम्हारी भलाईहै।

क्षेमकर मुनि कहते हैं—हे दशरथ! अपने उन भाइयो को साधु के वेष मे देखकर भरत ने अपनी सम्पदा की निन्दा की। उसका गर्व जाता रहा। भरत ने अपने भाइयो से कहा—

बैरी माथा काटिया खडगे मै हरषायो।
भाई—प्रेम—छेदक हुए अब मै मर्म जो पायो।।

हे महात्माओ! मैं क्या निवेदन करू? मेरे शस्त्रागार मे एक खडग उत्पन्न हुआ। वह खड्गरत्न किस पुण्य सामग्री से प्रकट हुआ था यह कथा बहुत लम्बी हे। पर उसका तेज बहुत हे। वह पचास अगुल लम्बा सोलह अगुल चौडा अर्द्ध अगुल मोटा है चार अगुल की मूठ है। उसकी चमक इतनी तेज है कि आख नही ठहर सकती। उस खडग के रहते पराजय तो कभी हो ही नही सकती। अगर वह किसी साधारण सिपाही के पास हो तो वह भी अजेय हो सकता है। ऐसा खड्ग मेरे शस्त्रागार मे प्रकट हुआ। फिर मुझे गर्व क्यो न होता? उस खडग की सहायता से मैने ससार को अपने सामने झुकाने का विचार किया। जो मेरे सामने झुक गया वह बच गया। जिसने सामना किया उसे प्राणो से हाथ धोने पडे। उसी खड्ग का बल पाकर मैंने अपने भाइयो को भी झुकाने का विचार किया। मैं उनका भी स्वामी बनना चाहता था। इस प्रकार खडग ने मुझे जिस भुलावे मे डाल दिया था वह अब आपको देखकर मालूम हुआ। अब मेरी समझ मे आया कि इस खडग ने भाई के प्रेम को काट डाला है।

आज भी लोग तलवार की पूजा करते है ओर मानते है कि इससे हमारी और हमारे राज्य की रक्षा होगी। इस प्रकार सादी तलवार पर भी जिसमे भरत के खडग रत्न जैसा कोई चमत्कार नही है गर्व हो जाता है। मगर ये गर्व करने वाले लोग कभी यह भी सोचते हैं कि चक्रवर्ती भरत को भी उस खडगरत्न के लिए पश्चात्ताप करना पडा था तो हमारी क्या बिसात है?

क्या तलवार का बल सच्चा बल हे? क्या यह गर्व करने लायक बल है? यह पशुबल तो नही?

तलवार का बल वास्तव मे पशुबल है। वह सच्चा बल नही है। शिकारी कहता हे – मैंने शेर मारा। मगर उससे पूछो उसने कैसे मारा हे? वह कहेगा – तलवार से या बन्दूक से। तो इसमे वीरता क्या हुई? वह बेचारा सोता था दबे पाव, धीरे–धीरे जाकर चोरी से उसे तलवार मार दी। या वह जा रहा था और दूर से उसे गोली मार दी। इसमे शिकारी की बहादुरी क्या है? उसने अपना कौनसा बल लगाया हे? शेर नि शस्त्र है। उसके पास न तलवार है न बन्दूक है। उसे सिर्फ अपने पजो का भरोसा है। शरीर ही उसकी सम्पत्ति है। अगर शिकारी अपने को वीर मानता है तो क्यो नही शस्त्र फेक कर शरीर से शेर के साथ लडता? शेर मारने का गर्व अगर कोई कर सकता हे तो तलवार या बन्दूक भले ही करे, मगर शिकारी किस बात का गर्व करता है? तलवार कह सकती है, जो काम जीवित मनुष्य नही कर सकता था वह काम मैंने निर्जीव होते हुए भी सजीव को निमित्त बनाकर कर दिखाया है। बन्दूक कह सकती हे – यह मोटा–ताजा और मनचाही आवाज करने वाला मनुष्य जो–कुछ करना असभव–सा मानता था। वही काम मैंने कर डाला है हालाकि मनुष्य से दुबली–पतली और निर्जीव हू। मगर शिकारी क्या समझकर अभिमान करता है?

पशु के पजे मे जब तक बल है तब तक वह अक्सर दया नहीं करता। वह मार डालता हे। मगर मारता हे वह सिर्फ पेट पालने के लिए। और मनुष्य बहादुरी जताने के लिए अपना गर्व दिखाने के लिए ही लाखो और करोडो मनुष्यो की हत्या कर डालता हे। कहते हें मुगलो के पूर्वज चगेजखा ने एक करोड चालीस लाख या कुछ कम–ज्यादा आदमी केवल इसलिए मार डाले थे कि मैं जितने मनुष्य मारूगा उतना ही बडा वीर कहलाऊगा। यह पशुता नही तो क्या हे? बल्कि पशुता भी इस मूर्खता से मात खा जाती हे।

भरत फिर कहते हें –

सेना–पोषक चर्म रत्न ने भाई तोष हटायो।
प्रेम थी वचित मैं हुओ अभिमान मे आयो।
कागणी कर म्हारे चढयो तोल माप बढायो।
म्हैं निज तोल घटावियो भेद अब म्है पायो।।

भरत कहते हें– 'मेरे यहा चर्मरत्न प्रकट हुआ। उसमे एसी शक्ति हे कि हाथ से छोडते ही 48 अडतालीस कास का चबूतरा बन जाता हे ओर उस छाया हो जाती हे। बहुत दिनो मे उपजने वाला अन्न थाड ही दिना म उपज हे। पानी मे तेरने के लिए वह नाका का काम दता हे। उम रत्न स

सम्पूर्ण सेना का पोषण होता है ओर सारी सेना जलाशय के पार उतारी जा सकती है। उस रत्न को पाकर मुझे अभिमान हुआ पर मने समझा यह कि दूसरो को अभिमान है। मै सोचता था – अमुक राजा ऐसा अभिमानी हे कि लोकोत्तर रत्नो का स्वामी होने पर भी मेरे सामने सिर नही झुकाता। आप लोगो के विषय मे भी मै यही सोचता था। आप सोचते थे कि भगवान ने जो बटवारा कर दिया है वह उचित है – उसमे परिवर्तन नही होना चाहिए ओर में सोचता था कि भगवान् के समय की बात निराली थी। उस समय मेरे पास रत्न नही थे। अब मै रत्नो का स्वामी हो गया हू, अतएव मुझे एकछत्र साम्राज्य भोगने का अधिकार मिल गया है। आप अपने विचार पर दृढ थे ओर में अपने विचार मे पक्का था। इन रत्नो ने मेरे सतोष का नाश कर दिया। ये रत्न रत्न नही शैतान साबित हुए।

जो वस्तु अन्त करण मे अहकार का अकुर रोपती है, वह अहितकर है। यह मानते हुए भी आप अपनी तिजोरी की चाबी नही फेक सकते। मगर कम से कम इतना ध्यान तो अवश्य रहना चाहिए कि गर्व से मद मे चूर होकर बडे–बडे भी भूल कर बैठते है, कही हम भी भूल न कर बैठे। कई आदमी साप को पकडकर उसके साथ खेल खेलते है, मगर आप साप से क्यो डरते हैं? आप यही उत्तर देगे कि उनमे वैसी शक्ति है और हम मे नही है। चाहे उनमे शक्ति हो या निडरता हो लेकिन साप भी वश मे हो जाता है और साहस रखने पर उसका जहर असर नहीं करता। सुना हे लन्दन मे एक पादरी ने भरी सभा मे कहा था कि जिसमे आत्मविश्वास ओर साहस होगा, उसे विष नहीं चढेगा। यह कहकर उसने एक भयकर विषधर साप को छेडा। साप काटने से कब चूकने वाला था? पादरी ने बिना तनिक भी घबराए कह दिया – आप मेरी चिन्ता मत कीजिए। ओषध की भी आवश्यकता नही है। यह विष मेरा कुछ भी नही बिगाड सकता। सचमुच थोडी ही देर मे बिना किसी मत्र या औषध के ही विष उतर गया। पादरी स्वस्थ हो गया।

मतलब यह हे कि जेसे साहसी और मत्र जानने वाला पुरुष साप के विष से प्रभावित नही होता वरन् साप से खेल करता है, उसी तरह धन–दौलत आदि सम्पत्ति रूपी साप को अनित्य समझने वाला भी उससे खेल करता हे। वह सम्पति पाकर गर्व नही करता। अगर आप भरत की बात पर ध्यान देगे तो धन के लिए या धन न होने पर किसी के साथ दगा या अन्याय नही करेगे।

भरत का कथन सुनकर उनके भाई कहने लगे – इसमे आपका कोई अपराध नही है। जिनके पास ऐसे शेतान आ जाए उसे गर्व हो जाना आश्चर्य

की बात नही। कदाचित् हमारे पास ये रत्न आये होते तो कौन कह सकता है कि हम भी ऐसे ही गर्विष्ठ न हो गए होते?

भरत ने अपना कथन चालू रखा। वे कहने लगे – मेरे पास एक रत्न और आया जिसका नाम कॉकनी रत्न है। उसका नाप–तोल इतना सही हे कि मेरे राज्य मे उसी के हिसाब से नाप–तोल का काम होता है। यही नही उसमे एक ओर चमत्कार हे। तमस गुफा और खडप्रभा नाम की गुफाए घोर अधकार से व्याप्त होती हैं, लेकिन वह रत्न रगड देने से अधकार एकदम विलीन हो जाता हे ओर सूर्य का–सा प्रकाश फेल जाता है। इसी कॉकनी रत्न की चकाचौंध मे मेरी दृष्टि चोधिया गई। प्रकाश भी मेरे लिए अन्धकार बन गया। मैं वास्तविकता को नही देख सका और अपने भाइयो का विरोधी बन गया।

भरत ने अपने भाइयो के प्रति जो दुर्भावना की थी उसके लिए वे अपना अन्त करण खोलकर, खुले हृदय से पश्चात्ताप प्रकट कर रहे हैं। आप भरत के पश्चात्ताप को देखने के साथ ही अपने अन्त करण को भी टटोल लीजिए। आपके अन्त करण मे अपने भाई के प्रति तो दुर्भाव नही हे? आप तुच्छ वस्तुओ के लिए भाई से तो नही झगडते? किसी प्रकार का बेर–विरोध ता नहीं रखते? काकनी रत्न भी भरत के हृदय मे उजेला नही कर सका तो रुपय से क्या यह आशा की जा सकती हे कि वह आपके हृदय को प्रकाशित कर देगा? नही, तो फिर रुपयो के लिए भाई पर मुकदमा तो दायर नही करेंगे?

दो मित्र थे। दोनो शामिल रहते थे। एक दिन दोनो ने परस्पर प्रतिज्ञा की कि किसी भी अवस्था मे हम एक–दूसरे को नही भूलेगे। कोई केसा भी ऋद्धिशाली हो जाए अथवा केसा भी गरीब रहे एक–दूसरे को बराबर याद रखेगा ओर सहायता करेगा। उस समय दोनो की स्थिति समान थी अतएव यह प्रतिज्ञा करने मे किसी को कोई कठिनाई नही थी।

कुछ समय बाद एक मित्र को कोई बडा आहदा मिल गया। अधिकार भी मिल गया ओर धन भी प्राप्त हो गया। दूसरा मित्र ज्या–का–त्या गरीब ही रहा।

गरीब मित्र ने सोचा – मरा मित्र सब प्रकार स सम्पन्न हा गया ह लेकिन मुझे कभी स्मरण नही करता। सचमुच गरीब का गरीबी क सिवाय कोई नही पूछता। कहावतहे–

माया मे माया मिले कर–कर लम्बे हाथ।
तुलसीदास गरीब की कोई न पूछे बात।

गरीब मित्र ने सोचा – मेरा मित्र मुझे नही पूछता तो न सही म अपनी पतिज्ञा के अनुसार उसे नही भूल सकता। मे स्वय उसके पास जाकर मिलूगा।

यह सोचकर गरीब अपने धनी मित्र के पास गया। उसने पूर्ववत स्नेह के साथ अपने मित्र का अभिवादन किया। मगर धनी मित्र उसकी ओर चकित दृष्टि से देखने लगा और बोला – मेने पहचाना नही कौन हो तुम?

गरीब ने सोचा – आगे की बात तो दूर रही यह तो मुझे पहचानता भी नही। पकट मे उसने कहा – मेने सुना था कि मेरा मित्र अन्धा हो गया है। सोचा जाकर देख आऊँ, क्या हाल हे? बिलकुल अन्धा हो गया हे या थोडा–बहुत सूझता भी है। यहा आकर देखा कि मित्र तो एकदम ही अन्धा हो गया है।

धनी मित्र ने कहा – यह कैसे कह रहे हो?

गरीब ने उत्तर दिया – आप मुझे बिल्कुल भूल गए। अब आपकी वे ऑखे नही रही जो प्रतिज्ञा करते समय थी। अब मैं भी यहा से भागता हू, वरना मै भी अन्धा हो जाऊगा।

माया के प्रभाव से प्रभावित होकर लोग अन्धे हो जाते हैं। गरीब घर का लडका किसी धनवान् के घर गोद चला जाता है तो अपने जन्म देने वाले माता–पिता से भी कह देता है कि आप जाइए मैं शर्माता हूॅ। यहा मेरे सगे–सम्बन्धी आते है।

भरत कहते हैं – 'मैं भी इन रत्नो के कारण अन्धा हो गया। सोचता था – या तो भाइयो का सिर काटूगा या उन्हे अपने सामने झुकाऊगा।'

भरत का यह पश्चात्ताप यह रोदन ससार को मिटाने के लिए था। अपने भाइयो की दशा देखकर अपनी तृष्णा का रोना था। कभी आपको भी अपना लोभ अपनी हवस देख कर रोना आता है? साधारण आदमी ऐसे अवसर पर उलटा घमड करते है कि मेरे डर के मारे अमुक को ऐसा करना पडा। उनके हृदय मे पश्चात्ताप नही होता वे अपने किये के लिये विषाद नही करते। मगर भक्तजन जब अपनी कोई भूल देखते है तो उनका हृदय रोने लगता है। वे अपने अन्त करण को धोने के लिए रोते हें। तदनुसार साधु बने हुए अपने भाइयो के सामने भरत रोकर कहते हें–

शूर हुओ सेनापति जीत्या देश घणेरा
तिन अभिमाने मुझ भणि कुमति घाल्या घेरा।

दुनिया मे दो प्रकार की सम्पत्ति मानी जाती हे–स्थावर और जगम। जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुॅचाई जा सकती हे वह जगम सम्पत्ति

हे ओर जो एक ही स्थान पर स्थित रहती हे वह स्थावर कहलाती हे। मगर चक्रवर्ती के पास जो चोदह रत्न होते हें उनका विभाग दूसरे प्रकार से किया जाता हे। उसके सात रत्न एकेन्द्रिय ओर सात पचेन्द्रिय होते हें। यहा तक जिन रत्नो का वर्णन किया गया हे वे सब एकेन्द्रिय रत्न थे और अव पचेन्द्रिय रत्नो का वर्णन किया जाता है।

आजकल मनुष्य का मूल्य प्राय धन के पेमाने से नापा जाता हे। बडा आदमी वह गिना जाता हे जिसके पास वडी सम्पत्ति होती हे। अमुक मनुष्य लखपति हे या हजार रुपया मासिक वेतन पाता हे इसलिए वह बडा आदमी हे। इस व्यवस्था मे वास्तव मे मनुष्य की अपेक्षा सम्पत्ति का ही मूल्य आका जाता है। रुपया बडा हे, आदमी नही। जब से सिक्के का जन्म हुआ है, तभी से मनुष्य की कीमत घट गई हे। लोग समझते हैं कि सिक्के के कारण विनिमय मे सुविधा हो गई हे मगर सिक्के की बदौलत कितना अत्याचार हुआ ओर हो रहा हे सिक्के ने मनुष्य–समाज मे कितनी विषमता ओर कितना श्रेणीभेद उत्पन्न कर दिया हे इसका वर्णन करना साधारण बात नही हे। सिक्के ने मानव–समाज को आज घोर मुसीबत मे डाल दिया हे। इस मुसीवत का सामना करने के लिए नाना प्रकार के उपाय निकाले जा रहे हे। समाजवाद/साम्यवाद आदि कितने ही वाद प्रचलित किये जा रहे हें मगर ये सब 'वाद' वाद–विवाद के लिए ही हे। इनसे स्थिति सुलझती नही उलझती जा रही हे। असली कारण की ओर लोगो का ध्यान नही हे। अगर ससार को सिक्के के अभिशाप से मुक्त किया जा सक तो बहुत–सी मुसीवत आप ही आप कम हो सकती हैं। आज यह सलाह शायद अप्रासगिक असामयिक ओर अनुचित प्रतीत होगी। मगर यही एक उपाय हे जिससे सॅसार मे शाति का साम्राज्य फेलाया जा सकता हे।

चक्रवर्ती भरत ने अपने विशालतम साम्राज्य म सिक्के का प्रचलन नही किया था। फिर भी उस समय विनिमय म कोई असुविधा नही थी। उस समय एक वस्तु का विनिमय दूसरी वस्तु से हाता था। जेस एक क पास अनाज ओर दूसरे के पास कपडा ह ता दोना अपनी–अपनी आवश्यकतानुसार वस्तु का लेनदेन कर लेते थे। यही क्रम सव के लिए था। ऐसा करन पर भी किसी का काई काम रुकता नही था। पसे क कारण हाने वाली शतानी स लोग वचे रहते थे।

भरत कहते हें – एकेन्द्रिय रत्ना क कारण मुझ वडा गव हा गया था। मगर मरे पास इन रत्नो क अतिरिक्त चलत–फिरत वालन–चालन

पचेन्द्रिय रत्न भी आ गये हैं। मैं जिसकी शक्ति पर भरोसा रखता हू, वह सुपुस नामक सेनापति भी मेरे पास है।

जर्मनी का बादशाह केसर अपने सेनापति हिडेनवर्ग पर बडा भरोसा रखता था। वह कहता था – ईश्वर की अपार दया से मुझे इस सेनापति की पाप्ति हुई है। केसर हिडेनवर्ग की सलाह मानता था, फिर भी केसर की ही हार हुई। उसका ईश्वरप्रदत्त सेनापति उसे हार से नही बचा सका।

इसी प्रकार भरत कहते हैं – 'मेरे यहा सेनापति रत्न है। वह शस्त्रास्त्र तथा युद्ध आदि राजनीति के कामो मे बडा निपुण है। बलवान् इतना है कि तीन लोक मे कोई उसके बल की क्षमता नही कर सकता। उसकी स्वामिभक्ति ऐसी है कि इशारा पाते ही काम कर डालता है और मुझे सब पकार से प्रसन्न रखता है। ऐसा सबल सेनापति पाकर मुझे गर्व हुआ। सब पर विजय प्राप्त करने की अभिलाषा जागी। सेनापति ने मुझसे कहा – मैं आपकी इच्छा पूर्ण करूगा। अगर कही पराजित हो जाऊँ तो मेरा सिर काट लेना। उसने मेरे गर्व को प्रोत्साहन दिया। मेरी विजय–लालसा की आग मे उसने घी डाल दिया। मैंने उसकी सहायता से बडे–बडे देश जीते। अनेक शूरवीरो का गर्व खर्व कर दिया। मैं अपने भाग्य की सराहना करने लगा। मैंने सेनापति से – पूछा अब मेरा राज्य एकछत्र हो गया है न? सेनापति ने कहा – नही, अभी आपको बहुत विजय करनी बाकी है। अभी तक आपने भेड–बकरियों पर विजय पाई है शेर बाकी है।

भरत कहते हैं – 'सेनापति ने मुझे बतलाया कि जो आपके समान हैं जो आपके साथ खेले हैं और जो आपके भाई हैं, जो भगवान् ऋषभदेव के पुत्र हैं ओर जो आपके समान ही वीर हें उन्हे जीतना तो अभी तक शेष ही हे। अभी तक जिनसे अधीनता स्वीकार कराई है वे गरीब भेड के समान है मगर इन भाइयो को अधीन करने का प्रयत्न करना साप के पिटारे मे हाथ डालने के समान हे। आपके निन्यानवे भाई जब तक आपकी अधीनता स्वीकार न करे तब तक एकछत्र सम्राट् की पदवी आप को प्राप्त नही है।

'सेनापति की इन बातो ने मेरे हृदय का कल्पवृक्ष सरीखा भ्रातृप्रेम नष्ट कर दिया। अमृत विष मे परिणत हो गया। मैंने कहा – सेनापति! तुम ठीक कहते हो। पहले तुमने इस ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया होता तो पहला धावा इसी तरफ होता। सेनापति बोला – नही महाराज ठीक न होता। ऐसा करना नीति के विरुद्ध होता। धीरे–धीरे दूसरो को जीतने से जो उत्साह साहस ओर बल बढा हे उसकी सहायता से उन्हे जीतना ठीक होगा।

यो समझना चाहिये कि अभी तक जो विजय हुई हे वह तो सेना की शिक्षा मात्र हे। युद्ध तो अब करना है।

'सेनापति के इस कथन ने मेरे हृदय मे और आग धधका दी। उसने यह भी समझाया कि पहले बाहुबली को न छेड कर शेष 98 भाइयो को अधीन करना चाहिए। इससे मेरे हृदय मे मनुष्यता के स्थान पर पशुता ने राज्य जमा लिया। मैंने आपको सताया।

लोग शस्त्रो से लडकर शाँति प्राप्त करना चाहते हैं किन्तु यह शाति का मार्ग नही है शस्त्र अशाति के अग्रदूत हैं। उनसे शाति भग होती है शाति स्थापित नही हो सकती। यह बात इतनी साफ होती जा रही है कि इसे सिद्ध करने के लिए तर्क या अन्य प्रमाण पेश करने की आवश्यकता ही नही रही। ससार मे बेशुमार शस्त्र बढे भयकर से भयकर शस्त्रो का आविष्कार हुआ पर क्या शाति की परछाई भी कहीं नजर आती है? शस्त्रो की वृद्धि के अनुरूप अशाति ही अशाति की वृद्धि हो रही है। 70 मील की दूरी तक गोला फेकने वाली तोप का आविष्कार करने वालो से पूछो कि तुमने जगत् की क्या भलाई की हे? क्या इससे शाति की सम्भावना पैदा हुई है? पारस्परिक अविश्वास ओर घोर सहार ही इन भयानक शस्त्रो की भयानक भेट हे। यह सत्य इतना स्पष्ट होने पर भी पशुबल के पुजारी आला दिमाग कहलाने वाले ये वैज्ञानिक शस्त्रो की ही सृष्टि करने मे लगे हें। नि शस्त्रीकरण की आवाज पर कोई ध्यान नही देना चाहता। मालूम नही मनुष्य क्यो इतना पागल बन गया हे कि वह मनुष्य जाति के सहार मे ही सारा पुरुषार्थ खर्चने मे लगा हे ओर अपने सहज विवेक का अपमान कर रहा हे? क्यो वह आख मीच कर भविष्य के विचार से विमुख होकर मृत्यु की ओर दोडा जा रहा है? इस दोड का अन्त सहार के सिवाय ओर कहा है?

भरत कहते हें – सेनापति की सलाह पाकर मेंने आप का अपने अधीन करने का सकल्प किया। इस प्रकार मेरा सेनापति रत्न ही मेरे विषाद का कारण बन गया–

गाथापति सब गृहस्थ की निधि मुझे बतलाई।
मन माया मे उलझियो तिण ही सुधि नहि पाई।।
नवा नवा महल बनाया के वढई मुझे ललचायौ।
आग लगाई भाई घरे मुझ मन पछतायो।।

'बन्धुओ! मेरे घर की सामग्री न मुझ वेभान वना दिया। इसी कारण आपको सताया ह। मुझे गृहपति नामक एक और रत्न मिला है। उसा

कहा – महाराज। आप सबसे बडे चक्रवर्ती है। मै इस रत्न को पाकर फूला नही समाया। उसने मुझे गृहस्थधर्म बतलाया पर मेरा मन तो माया मे उलझा हुआ था। मैने सोचा – मेरा गृहपति रत्न बहुत दिनो मे पकने वाले धान्य को पहरो मे ही पका देता है। अब मुझे दुष्काल आदि का भी भय नही रहा। मेरा घर स्वर्ग से भी ऊँचा है। अतएव मुझे अपने भाइयो को अपने अधीन करना ही चाहिए।

ऋद्धि पाकर गर्व नही किन्तु नमता धारण करना चाहिए। जिनमे कुलीनता और धार्मिकता होती है वे अक्सर ऋद्धि–सम्पदा पाकर नम्र हो जाते हैं। यह बात एक कहानी द्वारा समझाई जाती है–

एक अन्धा था। उसने सोचा – राजा भोज राजाधिराज है। वे गरीब के पति कितने नम्र है इस बात की परीक्षा करनी चाहिए। उसने साहस करके किसी सम्बन्धी से कहा – कृपा करके मुझे ऐसी जगह खडा कर दो जिधर से राजा भोज अपनी सेना के साथ निकलने वाले हो। सम्बन्धी ने अन्धे की बात सुनकर कहा – क्यो? क्या मौत नजदीक आ गई है? कही कुचल गये तो मेरा मुँह भी काला हो जाएगा। अन्धा बोला – इसकी चिन्ता मत करो। मै अपने जीवन–मरण के लिए आप ही उत्तरदायी हू। मै स्वेच्छा से वहाँ खडा होना चाहता हूँ तो तुम्हारा मुँह काला कैसे होगा? मै अन्धा हूँ, मगर बालक तो नही हूँ।

आखिर अन्धे का आग्रह देखकर उस सम्बन्धी ने उसे ऐसी जगह खडा कर दिया जहाँ से भोज अपनी सेना के साथ निकलने वाले थे। सेना आई। सिपाही उससे कहने लगे – अन्धे तू बीच मे आकर कहाँ खडा हो गया है? जल्दी हट यहा से।

अन्धा दीनता दिखलाता हुआ कभी थोडा पीछे हट जाता और कभी मौका देखकर कुछ आगे बढ जाता। थोडी ही देर बाद राजा भोज उसके सामने से होकर गुजरे। राजा भोज ने आते ही अन्धे से कहा – हे अन्धराज। महाराज।

अन्धे ने समझ लिया नम्रतापूर्ण वाणी बोलने वाले ही राजा भोज है। उसने उत्तर दिया–

हे भोज महाराजाधिराज। आपकी मुलाकात के काज।।

भोज विचारने लगा 'दृष्टि न होने पर भी इसने मुझे कैसे पहचान लिया? फिर सदेह निवारण करने के लिए राजा ने पूछा थोडा–बहुत कुछ दिखाई तो देता हे न?

अन्धा – जी हाँ ओर तो कुछ दिखता नही एक मात्र अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता हे।

भोज – तो तुमने मुझे केसे पहचान लिया?

अन्धा – महाराज आखे अन्धी हे हृदय अन्धा नहीं हे। अन्धे का सुसस्कृत नाम प्रज्ञाचक्षु हे। चर्मचक्षु न होने पर भी प्रज्ञाचक्षु से आपको पहचान लेना कठिन नही हे। मैं आपसे मुलाकात करना चाहता था। अन्यत्र आपसे मुलाकात होना कठिन था इसलिए में यहा आकर खडा हो गया यहाँ आपके सिपाहियो की लात–बात सहता ओर डाट–फटकार झेलता हुआ खडा रहा। सब मुझे अन्धा–अन्धा कहते रहे। आपने आकर मुझे अन्धराज कहा। मैं इसी से पहचान गया कि ये बोल महाराज भोजराज के होने चाहिए।

भोज सोचने लगा – मैने कुलीनता ओर शिष्टता के खातिर ही इसे अन्धराज कहा। अगर मैं अन्धराज' न कहता ओर अन्धा कह देता तो मेरी गणना भी इन सिपाहियो की तरह हल्के आदमियो मे ही होती।

राजा भोज ने उस अन्धे का दु ख तो मिटाया ही होगा मगर आप इस पर यह विचार करे कि परमात्मा नरमी से मिलता हे या गरमी से? भगवान के अनेक विशेषणो मे से एक विशेषण धर्मसारथी भी है। धर्मसारथी अर्थात धर्म का रथ चलाने वाले। अर्जुन का रथ श्रीकृष्ण चलाते थे। रथ चलाना नम्रता का काम है या उद्दण्डता का? रथ मे बेठने वाला बडा हे या रथ चलाने वाला? वास्तव मे रथ चलाने वाला बडा हे रथ मे बेठने वाला नही। दूसरे को सकट मे देखकर उसकी सहायता करना बडप्पन हे – आगे बढने का मार्ग हे।

कृष्ण युधिष्ठिर के दूत बनकर दुर्योधन को समझाने गये थे। दुर्योधन ने उनके लिए उत्तमोत्तम भोजन की व्यवस्था की ओर सुन्दर महल रहने के लिये नियत किया। दुर्योधन सोचता था इस तरह कृष्ण को वश मे कर लेने से मेरा काम सुगम हो जायेगा। फिर पाडवो का सहायक कोई नहीं रहेगा। मगर कृष्ण ऐसे–वेसे नही थे। उन्होने दुर्योधन का आशय समझ लिया। उन्होने कहा – मै स्वागत सत्कार स्वीकार करने नही आया हू। मै पहले काम की बात करूँगा। काम हो जाने पर भोजन करूँगा अन्यथा भोजन नही करूँगा।

आप पहले काम को देखते है या भोजन? को 'शत विहाय भोक्तव्यम' अर्थात सो काम छोडकर पहले भोजन कर लेना चाहिये यही कहावत आज सर्वत्र प्रचलित हो रही हे। मगर जो लोग कृष्ण की नीति का अनुसरण करते हैं उनका जीवन दूसरे ही प्रकार का होता हे।

दुर्योधन सोचता था कि कृष्ण एक बार मेरा अन्न खालेगे तो मेरे वश मे हो जाएगे। मगर कृष्ण जैसे असाधारण चतुर पुरुष उसकी चाल मे आने वाले नही थे।

दुर्योधन ने कहा – आप अभी आये हैं। रास्ते की थकावट है। भोजन और विश्राम कर लीजिए। उसके बाद आप जिस प्रयोजन से आये है उस पर विचार कर लेगे।

कृष्ण टस से मस नही हुए। बोले – यह नही होगा।

विवश होकर दुर्योधन ने पूछा – आप क्या कार्य लेकर पधारे है?

कृष्ण ने कहा–मैंने पाण्डवो को समझा दिया है। तुम उन्हे सिर्फ पॉच गॉव दे दो जिससे वे स्वतन्त्रतापूर्वक रह सके।

कृष्ण की मॉग कितनी छोटी थी! मगर गर्वीले दुर्योधन ने कहा – आप जैसे ऊपर से काले है वैसे ही हृदय से भी काले है। आप पाण्डवो को स्वतन्त्र करना चाहते है मगर मै जानता हू कि वे स्वतन्त्र हुए नही कि गजब ढाया नही। आज पाच गॉव उन्हे दे दिये तो कल वे पॉच सौ गॉवो पर कब्जा जमा लेगे। ऐसी स्थिति मे मैं आपकी बात नही मान सकता। पाण्डव युद्ध मे विजय प्राप्त करके चाहे सारा राज्य ले ले, बिना युद्ध किये तो उन्हे सुई की नोक के बराबर जमीन भी मै नही दूगा।

सूच्यग्र नैव दास्यामि, विना युद्धेन केशव!

दुर्योधन का उत्तर सुनकर कृष्णजी ने कहा –

उद्धवा चल जाऊ विदुरा घरी
ऊच ऊच माडया नाही कामाच्या, सत झौपडी बरी।
दुयोधनानी पकवान केले दुष्ट भाव अन्तरी।।

कृष्णजी कहते है – उद्धव! चल रथ हॉक। दुर्योधन के महल मे नही रहना है विदुर के घर चल।

उद्धव ने कहा – विदुर के यहॉ चले तो मगर कहॉ आप महाराज और कहा गरीब विदुर की झोपडी! वहा कहा आप ठहरेगे कहॉ घोडे बधेगे और कहा रथ खडा किया जाएगा? काम न हुआ तो न सही आराम से रहने मे क्या हर्ज है?

कृष्ण – तुम समझते नही हो ऊधो! जिस महल मे बैठकर दुर्योधन ने द्यूत का झूठा खेल खेला और पाण्डवो का राज्य हडपा जिस महल मे दुर्योधन अब भी उन्हे पॉच गॉव तक नही देना चाहता उस महल मे मेरा रहना ठीक नही है। विदुर झोपडी अपने लिए भली है। विदुर किसी की भी परवाह

न करके धृतराष्ट्र को सच्ची बात तो कह देते है। उस झोपडी मे न्याय की प्रतिष्ठा है। यह महल तो पाप का धाम है।

उद्धव। ठीक है पर वहा तो खाने को भी मिलना कठिन हे?

कृष्ण – कुछ भी हो। प्रेम का घास–पात भी पाप के मेवा–मिष्टान्न से लाख गुणा श्रेष्ठ है। पापी का अन्न पेट मे जाने से अनिष्ट फल होता है।

कृष्णजी विदुर के घर चल दिये। विदुर उस समय घर पर नहीं थे। उसकी पत्नी थी। उसने मक्की•का दलिया बनाकर प्रेम से परोसा ओर आप भी साथ ही खाने को बैठ गई। वह अपने असाधारण अतिथि के स्वागत मे इतनी तन्मय हो गई कि उसे भान ही न रहा। उसे जैसे कोई अलौकिक वैभव मिल गया हो। उसने केले छीले। गूदा आप खा जाती और छिलका कृष्णजी को खिलाती जाती। इतने मे विदुर आ पहुचे। अपनी आनद–विभोर ओर सुध–बुधहीन पत्नी का यह करतब देखकर बोले– 'अरी पगली, तू यह क्या गजब कर रही है?' विदुर की बात सुनी तो गृहिणी को होश आया। वह लज्जित होकर पछतावा करने लगी। मगर कृष्ण ने कहा – विदुरजी तुमने आकर रग मे भग कर दिया आनन्द मे विघ्न डाल दिया।

क्या कृष्ण को छिलके प्रिय थे? नही उन्हे सत्य प्रिय था प्रेम के वे भूखे थे। जहॉ सत्य हो, प्रेम हो वहॉ मधुरता के सिवाय ओर क्या होगा? इसलिए आज भी गाया जाता हे– 'दुर्योधन घर मेवा त्यागे शाक विदुर–घर खाये कि वाह वा!'

दुर्योधन ओर भरत की स्थिति मे अधिक अन्तर नही हे। दुर्योधन कपटी था भरत नही। दुर्योधन ने छल करके अपने भाइयो का राज्य हथिया लिया था, भरत अपनी शक्ति के बल पर हथियाना चाहते थे। मगर अपन भाइयो का हिस्सा हडपने की चेष्टा दोनो मे समान हे। हॉ प्रतिकार की पद्धति मे अन्तर हे। पाण्डवो ने युद्ध करके दुर्योधन का प्रतिकार किया जव कि भरत के भाइयो ने अहिसा का अवलम्व ले कर भरत का मुकाबिला किया। युद्ध करके दुर्योधन मारा गया लेकिन वह झुका नही। अन्त तक उसक हृदय म परिवर्तन नही हुआ। मगर भरत चक्रवर्ती अहिसा के आगे ऐस पराजित हुए कि भीतर से भी ओर बाहर से भी एकदम नम्र हो गए। भरत के हृदय पर अहिसा का जो प्रवल प्रभाव पडा दुर्योधन के हृदय पर हिसा का वगा तनिक भी प्रभाव नही पडा। कोरव–पाण्डव युद्ध मे अनगिनत वीरा का महार हुआ। महाभारत युद्ध क कारण भारत को ऐसी क्षति पहुची कि जिसकी फिर पूर्ति ही न हो सकी। मगर भरत क भाइया ने जा पद्धति स्वीकार की उसस किसी

का कुछ भी अहित नही हुआ बल्कि जगत के सामने वे एक महान आदर्श उपस्थित कर गये। हिसक और अहिसक पतिकार मे कितना अन्तर है और दोनो के परिणाम मे कितना भेद पड जाता है? यह बात इन दो घटनाओ से स्पष्ट हो जाती है।

पाण्डवो के परामर्शदाता कृष्णजी थे और भरत के भाइयो के सलाहकार भगवान ऋषभदेव थे। इससे इन दोनो की नीति का भेद भी हमारी समझ मे आ जाता है। दोनो महापुरुष भारतवर्ष के सर्वमान्य पुरुष है। जैन और वैदिक दोनो परम्पराए दोनो को महापुरुष के रूप मे स्वीकार करती है। फिर उनकी राजनीति का भेद समझना विशेषत आधुनिककाल मे उपयोगी होगी।

अहिसक पतिरोध के सामने भरत एकदम निर्बल पड गए। उनका शरीर ही नही बल्कि हृदय भी झुक गया। कुछ ही समय पहले जो गर्व से उन्मत्त हो रहा था वही अब बालक की भाति रोने लगा।

बडा–बडा महल बनाय के, बढई मुझ ललचायो।
आग लगाई भाया घरे मुझ मन पछतायो।।

भरत कहते है – मै बडी–बडी चीजो के भुलावे मे भूल गया। अगर भुलावे मे न आ गया होता तो आपको हरगिज न सताता और आपको मुनि न बनना पडता। गृहपतिरत्न ने मुझे सारी गृहक्रिया समझाई। मैं समझता था कि वह मुझे गृहस्थ बना रहा है पर वास्तव मे उसने मुझे धोखे मे डाल दिया। इसी कारण मैने जिनके साथ खाया–पीया था और जो मुझे प्राणो की तरह प्यारे थे उन्ही अपने भाइयो को सताने को उद्यत हो गया।

भाइयो मुझे एक बढईरत्न भी मिला हे। वह 42 मजिल के महल बनाता है। उसने मेरे लिए ऐसा सुन्दर महल बना दिया है कि ससार का कोई भी महल उसका मुकाबला नही कर सकता। पहले तो उस बढई की नकल करके कोई महल बना ही नही सकता तिस पर भी मैने आज्ञा जारी कर दी थी कि मेरे महल सरीखा महल और कोई न बनवावे। बढई मे अजब स्फूर्ति है। वह चाहे जेसा महल आनन–फानन मे बना सकता है। यह रत्न पाकर मेरा अभिमान और बढ गया।

शातिपाठ पुरोहित करे वैरी मुझ न सतावे।
मन वैरी हुओ म्हारो शाति तिणसू न पावे।।

मेरे यहा एक पुरोहितरत्न भी है जो शातिपाठ करने वाला ओर मत्र [illegible] आहुति आदि से वैरी का नाश करने वाला है। उसने मुझे विश्वास

दिलाया कि मेरे अजलि छूटने पर कोई वेरी नही रह सकेगा। उसके इस आश्वासन से मे पागल हो उठा। मैंने सोचा – अब किसका सामर्थ्य हे जो मुझे न माने! अगर कोई मुझे न मानेगा तो पुरोहित ही उसे भस्म कर देगा।

आज भी बहुत–से लोग भेरो–भवानी की मनोती मनाते हैं – अगर मेरे वैरी का नाश हो जाय तो में चूरमा–बाटी चढाऊगा। सास–बहू मे अनबन होने पर सास बहू के और बहू सास के विनाश के लिए ऐसी मनोती मनाती होगी। लेकिन विचारणीय बात यह हे कि जब दोनो ने दोनो के विनाश के लिए मनोती की तो भैंरोजी दोनो का विनाश करेगे या किसी एक का? अगर वे दोनो का साथ ही विनाश कर दे तब भेरोजी बेचारे चूरमा–बाटी से वचित रह जाएगे! अगर दोनो का चूरमा–बाटी खाकर दोनो का विनाश करते हैं तो वह कृतघ्न ठहरते है। अगर किसी एक का विनाश करते हैं तो दूसरी की मनौती वृथा जाती है। वस्तुत यह सब अज्ञान का परिणाम हे। इष्ट ओर अनिष्ट की प्राप्ति पुण्य ओर पाप के उदय से होती है। पुण्य और पाप के फल को कोई देवी–देवता पलट नही सकता।

भरत कहते हैं 'पुरोहित की शाति के गर्भ मे घोर अशाति छिपी हुई थी। अगर अशाति न होती तो भाई साधु क्यो बनते ओर मुझे पश्चात्ताप करने का अवसर क्यो आता? शाति तो मे तव समझता जव भाई भगवान् के पास न जाकर मेरे पास आते ओर मेरे पेर पडते। मगर ऐसा हो भी जाता तो मेरा अभिमान ओर वढता। आपने भगवान् के पास आकर मेरा अभिमान मिटा दिया यह एक तरह से अच्छा ही हुआ।

भरत फिर कहते हैं – मेरा पुरोहितरत्न यत्र–मत्र के चमत्कार भी दिखलाता हे। अब समझ मे आ गया हे कि उसका शातिपाठ अशाति का ठाठ बढाने वाला ही साबित हुआ।

ससार मे सभी प्रकार की वस्तुए विद्यमान हे परन्तु उनम रा कोन वस्तु उपादेय हे ओर कोन हेय हे? यह समझ लेना आवश्यक हे। थाडी दर के लिये मान लीजिए आपके सामने दो आदमी खड ह। एक कहता ह म तुम्हारी कमर की करधनी (कॅदोरा) काटूॅगा ओर दूसरा कहता ह – म तुम्हारी गर्दन काटूगा। उस समय आप क्या कहेगे? आप यही कहग कि करधनी भले काटलो गर्दन मत काटा। इसी प्रकार ज्ञानी कहत हे – एक यह स्थूल शरीर ह ओर दूसरा सूक्ष्म धर्म रूपी शरीर हे। मरा धर्म रूपी शरीर नहीं कटना चाहिए स्थूल शरीर भल ही कोई काट ल। आपका भी यही कहना चाहिए। पहले अनेक महापुरुपा न भी ऐसा ही किया ह। उन्हान धर्मशरीर की रक्षा करन क लिए हाड–मास क स्थूल शरीर क कट जान की परवाह नहीं की।

धर्म की रक्षा के लिए ही मेवाड मे कितना खून बहा दिया गया? तेरह हजार स्त्रिया धर्म की रक्षा के लिये ही आग मे कूदकर जली थी। लेकिन आज तुच्छ वस्तु के लिए भी लोग धर्म को हार जाते है। जरा–सी बात के लिए कपट करना क्या धर्मशरीर का नाश करना नही है?

भरत कहते है – पुरोहित के शाति पाठ का फल हुआ अशाति। पर आप क्या सोचते है? आप तो जप और पाठ द्वारा दूसरे का अकल्याण नही चाहेगे? लोग शातिनाथ भगवान् की माला फेरते है, पर शत्रु का नाश करने के लिये। क्या यह उचित है? क्या यह धर्मशरीर को नष्ट करना नही है?

लक्ष्मी आई मुझ घर मै अति हरषायो।
श्री शोभा भाया तणी हरता मन न घबरायो।।

भरत कहते हैं – भाइयो! मेरे यहॉ श्रीदेवी अर्थात् लक्ष्मी नाम की रानी आई। वह ससार की सर्वोत्कृष्ट महिला है। उसकी समानता वाली स्त्री ससार मे दूसरी नही है।

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र मे उसकी विशेषता बतलाते हुए कहा कि अन्य स्त्रियो के साथ सहवास करने से तो वीर्य और यौवन का नाश होता है किन्तु श्रीदेवी के साथ सहवास करने से इनकी उलटी वृद्धि होती है। एक हजार यक्ष उसके सेवक होते हैं।

'ऐसी देव–सेवित स्त्री पाकर मुझे अत्यन्त अभिमान हुआ। मैंने सोचा – मेरे यहा ससार की सर्वोत्कृष्ट स्त्रीरत्न आया है फिर मेरे सामने मेरे भाई क्यो न झुकेगे? उस लक्ष्मी ने भी मुझे सुमति नही दी। यही नही वरन् उसने उलटी कुबुद्धि दी। वह कहने लगी – आप मेरे नाथ हैं। सर्वश्रेष्ठ राजा है। क्या मेरे देवरो और देवरानियो को भी मेरे पैरो पर नही झुकाऍगे?'

चाहे श्रीदेवी ने ऐसा ही कहा हो या यह कवि–कल्पना हो, लेकिन श्रीदेवी को पाकर भरत को अभिमान हुआ। अतएव भरत कहते है – 'उस लक्ष्मी को पाकर अगर मेने आपको ओर आपने मुझको स्नेह की दृष्टि से देखा होता तो वह लक्ष्मी बडी गिनी जाती। मगर मै उसे पाकर वत्सलता की लक्ष्मी को भूल गया। श्रीदेवी की अपेक्षा बन्धु–वत्सलता की लक्ष्मी मुझे अधिक शाति पहुंचा सकती थी लेकिन उस समय तो मे अपने–आप को ही भूला हुआ था। इसी कारण मेने आपकी शोभा हरण की हे। आपके जिस मस्तक पर मुकुट शोभित था उस पर आज केश भी नही है। आपके जिन हाथो मे वीर वलय थ आर जिन्हे देख कर शत्रु सिहर उठते थे वे ही हाथ आज खाली हे। अब वे सिर्फ दया आर आशीर्वाद के लिये ही उठते हे। आपके शरीर की लक्ष्मी

मैने ही खोई है और मेरे ही कारण आपको साधु बनने की नोबत आई हे। यह गर्व उस लक्ष्मी के गर्भ से उत्पन्न हुआ है।

मित्रो! विवाह होने के बाद आप तो अपने भाइयो से लडाई नही करते? स्त्रियाँ ससुराल मे जाकर अपने पति के हृदय मे ऐसे भाव तो नहीं भरती , जैसे श्रीदेवी ने भरत के दिल मे भरे थे? कहावत है–

एक उदर का ऊपना जामन जाया वीर।
औरत के पाले पड्या नही तरकारी मे सीर।।

पहले भाई–भाई शामिल खाते–पीते ओर रहते थे लेकिन जब से लुगाई आई तब से दूसरे तो भले ही जीम जाए, पर भाई के घर तो शाक–तरकारी भी नही पहुचेगी। भरत तो अपने पाप का प्रायश्चित्त कर रहे है पर आप भी अपनी दशा का विचार कीजिए। क्या आपसे यह आशा करू कि आप स्त्री की बातो मे आकर भाई से लडाई करके अपना सर्वस्व खोएगे? और क्या बहिनो से यह आशा रखू कि वे पति के परिवार को अपना ही परिवार मानेगी और उस परिवार मे पारस्परिक प्रेम की सरिता बहाएगी?

गज चढ गर्वी हू हुवो, तुम पर हुक्म चलायो।
अश्व अपूरव पावियो पन्थ विकट दौडायो।

भरत कहते हें – भाइयो! मुझे एक हस्तीरत्न ओर एक अश्वरत्न भी मिला हे। मेरा वह जयकुजर (हाथी) सब हाथियो मे सिरमोर हे। सारे भरतखण्ड मे उसकी बराबरी का दूसरा हाथी नहीं हे। ऐरावत हाथी के समान उस हाथी की गध से ही दूसरे हाथी भाग खडे होते हें। जब जयकुजर के ऊपर मणिजटित सुवर्णमय होदा सजाया जाता ओर चमर–छत्र से सुशोभित होकर मे उस पर बेठता, तो ऐसा प्रतीत होता मानो में किसी पर्वत–शिखर पर बेठा हूँ और मेरे सामने कोई दूसरा किसी गिनती मे ही नही हे! उस समय मे सोचता था कि असीम पुण्य के प्रभाव से मुझे यह हाथी मिला हे पर आज समझ आने पर सोचता हू कि मेरे पाप का प्रभाव बढाने क लिए ही वह मुझ मिला हे।

ज्ञान श्रेष्ठ वस्तु ह ओर पुण्य के प्रताप से उसकी प्राप्ति हाती ह। लेकिन ज्ञान हाने पर अगर ज्ञानमद हो गया तो समझिए कि दूध भी दारू बन गया! फिर दारू सरीखा उन्माद पदा करने वाला वह ज्ञानमद बुद्धि का विकृत ही करता हे। इस प्रकार पुण्य से मिलने वाली वस्तु पाप का भी कारण बन जाती हे आर कदाचित पाप से प्राप्त हुई वस्तु भी पुण्य का कारण हो जाती ह।

भरत बोले – 'वह हाथी मिला था पुण्य के पभाव से पर मुझे उसका अभिमान हो गया। मेने सोचा – अगर मेरे भाई मेरे हाथी के साथ–साथ नीचे न चले तो इस हाथी का पाना ही वृथा हुआ।

भाइयो! मुझे कमलाभ नामक एक उत्कृष्ट घोडा मिला है। वह भी देवसेवित है। वह जैसे थल पर चलता है वैसे ही जल पर भी चलता है और आग पर भी चलता है। आग पर वह इतना तेज चलता हे कि आग का दाग तक नही लगने देता। उस घोडे के सामने मुझे आपके सब घोडे टट्टू नजर आने लगे। मैं सोचने लगा – टट्टुओ पर सवार होने वालो को मेरे सामने झुकना ही चाहिये।

आपके पास घोडा न होगा तो मन का घोडा तो आपके पास है ही। आप मन के घोडे पर सवार हैं। चक्रवर्ती को वैसा घोडा मिलना तो कठिन नही है पर जीवात्मा के लिए मनुष्य होकर मन का घोडा मिलना बडा ही कठिन है। आपको यह दुर्लभ मन रूपी घोडा प्राप्त हुआ है। अब आपको सोचना चाहिए कि आप उसे किस ओर दौडा रहे हैं? यह मन का घोडा ही है जो मनुष्य को सतो के चरणो मे ले जाता है और यही वेश्या के घर भी पहुचा देता है। इसकी दौड बडी तेज है। इस पर सवार होने वाले को सदा सावधान रहने की आवश्यकता है। जो सवार सावधान नही रहता, उसकी बडी दुर्गति होती है। यह घोडा असावधान सवार पर सवार हो जाता है और फिर नाना प्रकार के नाच नचाता है।

आत्मा के कल्याण और अकल्याण मे मन प्रधान कारण है। कहा है–

मन एव मनुष्याणा कारणं बन्धमोक्षयो ।

मन ही बध और मोक्ष का प्रधान कारण है। मन ही स्वर्ग नरक और मोक्ष मे पहुचाता हे। इसलिये प्रतिक्षण जाग्रत् रहकर मन रूपी घोडे पर नियन्त्रण रखना चाहिए। मन की गति का अवलोकन करते रहना चाहिये और जब वह कुपथ की ओर जाने लगे तभी लगाम खीचकर उसे रोक लेना चाहिये और सुपथ की ओर ले जाना चाहिये। बेखबर होकर लगाम ढीली छोड देने से वह मुसीबतो के मार्ग मे ले जाता है। जो घोडा हमे मोक्ष और स्वर्ग मे पहुचा सकता हे उस पर सवार होकर क्या नरक मे जाना उचित है? सातवे नरक मे प्राय सज्ञी जीव ही जाते हैं और सज्ञी वही कहलाता है जो मन–युक्त हो। बिना मन के छोटे जीवो को ऐसा भयकर नरक नही मिलता।

अब किरपा ऐसी करो, दु ख मुझ मिट जावे।
राज करौं स्वाधीन हो मुझ मन हुलसावे।।

भरतजी कहते है – भाइयो! मेरी अन्तिम प्रार्थना यह है कि आप मुझे कलक से बचा लीजिये। आपके बिना मुझे चैन नही पडेगा। मैंने सच्चे

हृदय से अपने कार्य की आलोचना की हे। मैं बतला चुका हू कि किस प्रकार इस शेतानी सम्पत्ति के भुलावे मे पडकर मैंने आपको सताया है। आप मेरे भाई हैं। आप इस दु ख से मुझे बचा सकते हैं। आप लौट चले और स्वतन्त्र रहकर अपना राज्य भोगे। चक्रवर्ती होने का मेरा स्वप्न भग हो गया। मुझे इसकी लालसा नही रही। मेरा आपके साथ स्वामी–सेवक का नहीं भाई–भाई का सम्बन्ध रहेगा। मैं भगवान् ऋषभदेव का पुत्र हू और आपके सामने प्रतिज्ञा करता हू कि अब आपको नहीं सताऊगा। मेरी विनय मानकर आप घर लौट चलो।'

ऐसे प्रसग पर आपकी राय मागी जाय तो आप क्या राय देगे? आप शायद कह देगे– 'मामला तय हो गया।' अब कोई झगडा नहीं रहा। अत घर जाकर राज्य करना चाहिए। परन्तु मुनि कुछ और ही कहते हैं। उनका विचार निराला हे। मुनियो के कथन पर ध्यान दीजिये –

राज दियो प्रभू ऋषभजी तुम पर बीती जी आण।
प्रत्यक्ष फल छे एहनो आगे परम कल्याण।
चिन्ता बान्धव! वारिये।।टेर।।

मुनियों का आश्वासन

भरत ने अपने सेवको को हाथी घोडे पालकी आदि सवारिया सजाने का ओर वस्त्राभूषण ले आने का आदेश दिया। अपने भाइयो से कहा– अब आप तेयार हो जाइये ओर जिस सवारी पर सवार होना चाहे ओर जेसे वस्त्राभूषण धारण करना चाहे वेसा करके घर चलिये। यह सब देख–सुनकर मुनियो ने कहा –

'भरतजी! आपने ठीक कहा हे। हमने आपकी अलोचना सुन ली हे ओर विश्वास रखिये आपके ऊपर हमारे अन्त करण मे तनिक भी वेर–विरोध नही हे। आप यह न समझे कि आपके दवाव के कारण ही हमने दीक्षा ली हे। भगवान ऋषभदेव ने हमे पहले जो राज्य दिया था उसमे ये काटे निकले। इन काटो से वचने का मार्ग खोजने के लिए हम लोग फिर भगवान की शरण मे पहुचे। अबकी वार भगवान ने हमे यह कटहीन राज्य दिया हे। इस राज्य का प्रभाव आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं। इस राज्य को पाते ही सर्वप्रथम आपके ऊपर ही इसकी आन चली। आप हमारे सामने झुक रह हैं यद्यपि आपको झुकाने की हमारी लेशमात्र भी इच्छा नहीं हे।

अगर हमने आपके दूत को सूखा–सा जवाव देकर लौटा दिया होता गैर भगवान की शिक्षा मानकर मुनि न वने होते ओर आपकी आन भी न मानते

तो फल क्या होता? यही कि एक भाई दूसरे भाई का गला काटने का तैयार हो जाता। मगर इस लोकोत्तर राज्य की प्राप्ति होने पर आप आनंद करते हैं। यह भगवान् के दिये हुए इस राज्य का ही प्रताप है। क्या आप यह राज्य छुडा कर हमे फिर उसी राज्य मे ले जाना चाहते हे? जिसके लिए भाई भाई का प्राण लेने को तैयार हो जाता है? आप यह भूल क्यो कर रहे हे?

मुनियो का कथन सुनकर भरत कहने लगे – वास्तव मे आपका कथन सर्वथा सत्य है। आपके धर्म का तेज पाकर ही मेरे हृदय का अंधकार मिटा है। आपने सयम ग्रहण न किया होता तो मेरा मन शायद ही सुधरता।

मुनि कहने लगे – भरतजी! धर्म की थोडी–सी शरण लेने से तो तुम चक्रवर्ती भी हमारी आन मे आ गये हो, अगर पूरी शरण लेगे तो जन्म–मरण के चक्कर से छूट जाएगे। विश्वास रखिये, आपके प्रति हमारे हृदय मे लेश मात्र भी वैर नहीं है। आपसे हमारा यही कथन है कि अगर आपसे राज्य नही छूटता हो तो कम से कम अहकार अवश्य छोडकर नम्रता धारण कीजिये। इससे आपका कल्याण होगा।

भगवान् ऋषभदेव के सभी पुत्र मोक्ष गये हैं, मगर पाठक जरा अपने विषय मे भी विचार करले। उनमे किसी को सताने की किसी का हक छीनने की या अहकार की भावना तो नहीं है?

कथा में विभिन्नता

भगवान् ऋषभदेव ने 98 पुत्रो को और 98 पुत्रो ने भरत चक्रवर्ती को जो बात समझाई थी वही बात क्षेमकर मुनि ने राजा दशरथ को समझाई। कथा आगे बढाने के पहले थोडा–सा स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक है।

जैन साहित्य मे दशरथ का पुत्र–शोक से विहल होकर मरना नही बतलाया गया है वरन् उन्होने दीक्षा लेकर अपना और जगत् का कल्याण किया – इस बात का वर्णन विशद रूप से किया गया है।

प्रश्न हो सकता हे – तब कौनसी बात सत्य मानी जाय? इस प्रश्न का लेकर कई लोग गडबड मे पड जाते हैं। मगर यह ऐसी बात नही कि जिसके कारण किसी को गडबड मे पडना चाहिये। मकान बनाने से पहले मकान का नक्शा बनवाना मकान बनवाना और मकान बनवाने की रिपोर्ट लिखना – ये तीन अलग अलग बाते है। एक ही मकान के सम्बन्ध मे ये तीन बात होती हैं। इसी प्रकार एक धर्मशास्त्र है एक धर्मशास्त्र की रिपोर्ट है और एक धर्मशास्त्र की कथा है। इनमे से यह धर्मशास्त्र की रिपोर्ट हे।

धर्मशास्त्र की इस रिपोर्ट के आधार पर अनेक इतिहास बन सकते ह। जब किसी एक ही कथा वस्तु के दो विवरण हमारे सामने उपस्थित हो तो हमे उनमे से वस्तु सम्बन्धी सामजस्य खोजना चाहिए घटनाओ के पार्थक्य को प्रधानता नहीं देनी चाहिये। कथाओ मे घटनाए प्रधान नही होती वरन कथावस्तु ही प्रधान होती हे। कथावस्तु को भलीभाति प्रतिपादन करने के लिए घटनाओ की आयोजना होती हे। अतएव हमे कथा पढते समय उसके मुख्य भाग कथावस्तु का, जो कथा का प्राण हे ध्यान मे रखना चाहिये। ऐसा करने से किसी प्रकार की गडबड नही होगी।

जैन साहित्य मे राजा की दो दशाओ का वर्णन मिलता है – युद्ध करते–करते मर जाना या चोथेपन मे दीक्षा लेना। अगर राजा लडाई मे जीवित रहे तो चोथेपन मे दीक्षा लेते हैं। राम के वन जाते समय रामायण के अनुसार भी कौशल्या ने कहा था – मुझे तुम्हारे वन जाने का दु ख नही है क्योकि राजा चोथेपन मे वन जाते ही हैं।

जेन साहित्य का उद्देश्य ससार मे फसे रहकर हाय–हाय करते हुए मरना नही, किन्तु सब कुछ त्याग कर सयम धारण करके आत्मा का शाश्वत कल्याण करना ओर ससार के सामने तप त्याग ओर सयम का आदर्श उपस्थित करना हे। कोई भी जेनकथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये लिखी जायेगी अथवा यो कहना चाहिये कि जिस कथा म इस उद्देश्य की पूर्ति हुई होगी वही कथा जेन साहित्य मे लिखी जायेगी। इस उद्देश्य के विरुद्ध काई कथा नही हो सकती। तुलसीदासजी को पुत्र–स्नेह का आदर्श बताना था अतएव उन्होने अपनी रामायण मे दशरथ का पुत्र–शोक मे मरना बताया ह। वास्तव मे तुलसी–रामायण कोटुम्बिक प्रेम का पाठ सिखाने म बेजोड़ हे। लेकिन इस आदर्श का फलित अर्थ यही नही हाना चाहिये कि हर एक पिता को अपने पुत्र के वियोग के शोक मे हाय–हाय करके मर जाना चाहिए।

कथाकार के सामने एक निश्चित उद्दश्य रहता हे। कथा का वही प्राण ह। मेथिलीशरण गुप्त क साकेत को दखिय। व राम कथा म रामराज्य की बात लाए हें आर अपनी कविता द्वारा उन्हान लागा का स्वराज्य का बोध कराया हे। एसी स्थिति मे पुत्र–शोक म मरना न बतलाकर जन साहित्य मे यदि दशरथ का विरक्त हाकर ससारत्यागी बनकर आत्मकल्याण म लग जाना बताया गया ह ता यह स्वाभाविक ही ह। भारतीय साहित्य चाहे वै-दिक हो बोद्ध हा या जेन साहित्य हो सन्यास त्याग तप का मह-त्व

स्वीकार करता है और इसी से मानवजीवन की सफलता का मूल्य आकता है। यह आर्य जाति का सर्वसम्मत आदर्श है। फिर दशरथ का दीक्षित हो जाना क्या अनुचित है?

जैन साहित्य पुत्र–स्नेह को बुरा नही मानता लेकिन पुत्र–स्नेह मे मर जाना कोई बहुत ऊचा आदर्श भी नही मानता। जैन साहित्य अमरता का आदर्श उपस्थित करता है।

साराश यह है कि किसी को स्वराज्य इष्ट है किसी को प्रेम इष्ट है किसी को सन्यास इष्ट है। जिसे जो इष्ट होगा, वही, उसकी कथा मे पधान रूप से चमकेगा। उसकी कथा मे उसी के अनुकूल कथा की सघटना होगी।

दशरथ का सत्संकल्प

राजा दशरथ को जरा ने जाग्रत् कर दिया। वे सोते थे, तो जाग्रत् हो गये लेकिन जो सोने का बहाना करते हैं, उन्हे कैसे जाग्रत् किया जाय? देवल मे रहने वाले कबूतर बाजे से कब डरने लगे? वे जानते हैं यह तो नित्य ही बजता है।

दशरथ के हृदय मे अन्त प्रेरणा उत्पन्न हुई। वे जाग उठे और उसी समय उन्हे मुनि की सहायता भी मिल गई। जो आदमी नदी पार करना चाहता है उसे अचानक ही अगर नौका मिल जाय तो कितनी प्रसन्नता होगी? दशरथ को भी ऐसी प्रसन्नता हुई। जब दशरथ भवसागर से पार उतरने की चेष्टा कर रहे थे तभी तारने वाला मुनि रूपी जहाज उन्हे मिल गया। अब आश्रय लेने मे वे ढील क्यो करेगे?

दशरथ कहते हैं – मैंने भरत चक्रवर्ती की तथा रघुवशियो के पूर्वजो की बात सुनी। मैं उनकी कथा का मर्म पा गया हू। मैं भी अपने पूर्वजो का अनुसरण करूगा और बिछौने पर पडे हुए तडफडाते हुये प्राणत्याग नहीं करूगा वरन अपने आत्म–कल्याण के मगल मार्ग पर अग्रसर हो जाऊगा।

इस प्रकार निश्चय करके दशरथ अपने महल मे लौट आए। उन्होने कहा –

पडी रह तू मेरी भव भुक्ति।
मुक्ति हेतु जाता हू मैं यह मुक्ति मुक्ति बस मुक्ति।
मेरा मानस–हस सुनेगा और कौन–सी युक्ति।
मुक्ताफल निर्द्वन्द्व चुनेगा चुन ले कोई शुक्ति।

यह मैथिलीशरण गुप्त की कविता हे जो उन्होने बुद्ध पर लिखी हे। लेकिन यह कविता इस प्रकार की जागृति वाले सभी महात्माओ पर घटती है। यह वह साहित्य हे जो सबके कल्याण के लिये रचा जाता हे।

राजा दशरथ के सामने एक ओर विशाल साम्राज्य हे खजाना है अपरिमित भोग सामग्री हे शरीर–सम्पत्ति हे राम–लक्ष्मण सरीखे सुपुत्र सीता सरीखी सुशीला पुत्रवधू और कोशल्या–सी पतिव्रता रानी है अर्थात ससार की श्रेष्ठतम विभूति हे ओर दूसरी ओर मुक्ति है। दशरथ को दोनो मे से एक का चुनाव करना हे। एक ओर भुक्ति है दूसरी ओर मुक्ति। एक ओर प्रेय हे दूसरी ओर श्रेय है। इनमे से किसे ग्रहण किया जाय? ओरे किसे छोडा जाय? दशरथ के हृदय मे थोडी देर तक इस प्रकार द्वन्द्व चला। अन्त मे उन्होने यही निश्चय किया –

पडी रह तू मेरी भव–भुक्ति।
मुक्ति हेतु जाता हू अब मैं
मुक्ति मुक्ति बस मुक्ति।

दशरथ सोचते हें – हे भवभुक्ति! तू यही पडी रह। तुझे चाहे राम समाले या ओर कोई समाले, में नहीं सभालूगा। में राम–सा पुत्र पाकर भी क्या ससार मे फसा–फसा ही मोत का शिकार बनूगा? इसलिये तू राम के लिए रह। मैं जाता हू। में यह करने नहीं जाता कि –

लेकर फकीरी चाह करत अमीरी की।
काहे का धिक्कार शिर पगडी उतारी है।।

में केवल मुक्ति के लिये ही जा रहा हू। मेरा हस ओर काई युक्ति नही सुनेगा। उसे मुक्ति के अतिरिक्त अब कुछ प्रिय नही हे।

मन मे बडी करामात हे। यह कोवा भी बन जाता हे आर हस भी बन जाता हे। आप अपने मन को क्या बनाना चाहत हें?

एक दोने मे मास रखा हा ओर दूसरे मे माती हो आर हस तथा कावा आदि पक्षी वहा इकट्ठे हुए हो तो हस मोती की ओर ही जायगा आर कावा मास की ओर ही। मास मोतियो से बढकर चीज नही है लकिन कावा अपन स्वभाव से लाचार है। मगर हस एसा नही ह। 'क हसा माती चुगे क भूखा मर जाय। वह मास नहीं खायगा।

दशरथ कहते हे – अब मेरा मानस हस ससार की प्रिय वस्तुआ का त्याग कर निर्द्वन्द्व होकर माती चुगगा।

'इधर या उधर यह या वह की अनिश्चित स्थिति को द्वन्द्व कहते हैं। सरल भाषा मे

यो करियो ने यो करस्यू रे भाडार भरियो ने फेर भरस्यू रे।
मूढ यो नही जाने अब मरस्यू रे मानव डर रे।
मानव डर रे चौरासी मे घर है रे।

ससार मे कोई भी वस्तु ऐसी नही है जिसको पाने के पश्चात सदा के लिये सब आवश्यकताए पूरी हो जाती हो और फिर दूसरी चीज नहीं चाहिए। अगर कडे हैं तो कठा चाहिए। दोनो ही है तो उनके लिये तिजोरी चाहिए। सोने के हैं तो हीरे के चाहिए। लाख रुपये हैं तो दस लाख चाहिए। भाग्य से दस लाख हो गये तो दस करोड की लालसा उत्पन्न हो गई। इस पकार तृष्णा का कही अन्त नहीं आता। सुना था कि एक अग्रेज ने एक बहुत सुन्दर पलग खरीदा उस पलग के पीछे कुर्सी टेबल आदि फर्नीचर बनाने मे साठ हजार रुपये खर्च हो गये। यही सब 'द्वन्द्व' कहलाता है।

दशरथ कहते हैं – मैं अब द्वन्द्व से निकल कर निर्द्वन्द्व होकर अपने मानस हस को मोती चुगाऊगा। दशरथ आगे सोचते हैं –

अमृतपुत्र मैं हूं अकाम, ओ क्षणभंगुर भव! राम राम।
रख अब अपना यह स्वप्नजाल मैं जागरूक हूं ले संभाल।
निज राजपाट धन धरणि धाम अमृतपुत्र मैं हू अकाम।
रहने दे वैभव यश सौरभ जब हमी नही क्या कीर्ति लोभ।
तो क्षम्य करू क्यो हाय क्षोभ थम थम अपने को आप थाम।
अमृतपुत्र मैं हू अकाम।

राम–राम तो सभी कहते हैं मगर अधिकाश का उद्देश्य होता है –

राम नाम जपना पराया माल अपना।।

किन्तु दशरथ का राम–राम और ही प्रकार का है। वे कहते है – हे क्षणभगुर भव! राम राम। जैसे इन्द्रधनुष थोडी ही देर मे अनेक रग दिखलाकर लुप्त हो जाता है और जिस तरह हाथी के कान और पीपल के पान चचल होते हैं उसी प्रकार इस क्षणभगुर नश्वर और चचल शरीर–वेभव को मैं राम–राम करता हू।

जब कोई किसी से विदाई लेता है अलग होता है तब राम–राम किया जाता है। विदाई का राम–राम करने वाले बहुत मिलेगे मगर दशरथ

की भाति राम–राम करने वाले कितने हैं? दशरथ जेसे राम–राम करने वाले निहाल हो जाते है।

दशरथ कहते हैं – मैं क्षणभगुर नहीं हू – मैं अमृत हू। और हे भव। तू क्षणभगुर है। तू जिस तरह नाशवान है, मैं वैसा नाशवान नही हू। मैं अमृत हू। मुझे जरा–मरण रोग छू नहीं सकते। तू इनसे घिरा हुआ है। मैं इतने दिनो तक तेरे साथ रहा, पर अब राम–राम करके तुझसे विदा लेता हू।

दशरथ के इस कथन से यह ध्वनि भी निकलती है कि हे भव। मैं अब तुझे राम के लिये छोडता हू। मैं तो जाता हू। बस, राम–राम।

हे भव। अगर तू समझता है कि इतने दिनो का गहरा सम्बन्ध छोडकर अचानक चल देना कठिन है, तो सुन। कोई मनुष्य फूलमाला समझकर साप को गले मे भले ही पहन ले लेकिन ज्यो ही उसे मालूम होगा कि यह फूलो की माला नहीं साप है, तो क्या वह उसे दूर करने मे देरी करेगा? नही वह तुरन्त छोड कर भागेगा। इसी तरह मैंने तेरा क्षणभगुर रूप जान लिया है अतएव तुझे छोडकर जाता हू। मैं अमृत–पुत्र हू। अकाम हू। अब तेरे भुलावे मे नहीं आऊगा।

अकाम का अर्थ हे – किसी प्रकार की चाह न रखना। लोग जो–कुछ करते हैं अकाम होकर नहीं सकाम होकर करते हैं। जैसे रुपये देते हैं सूद की कामना से, उसी प्रकार भक्ति जप तप आदि करते हैं – स्वर्गसुख या यशकामना से। इस प्रकार कामना से प्रेरित होकर कार्य करना बनियापन है। बनियापन असली फल को नष्ट कर देता हे। अतएव कोई भी धर्मकार्य करते समय निष्कामभाव होना आवश्यक है। जो कुछ करो भगवान को समर्पित करदो। भगवान को समर्पित कर देने से भव पार हो जाने का रास्ता साफ हो जाता हे। जेनशास्त्र 'कामना' को नियाणा – निदान कहता हैं। निदान एक भयकर शल्य माना गया हे।

दशरथ कहते हें – हे क्षणभगुर मन। तूने अब तक मुझे अपने स्वप्न–जाल मे बाध रखा था। अब अपना यह जाल समेट ले। अब मुझ पर जाल मत डाल। जैसे मछली को पकडने के लिये एक जाल होता हे उसी प्रकार यह स्वप्न सासारिक माया का भुलावा भी जीव को पकड रखने के लिये जाल बन गया हे। लेकिन जेसे रोहिताश्व मछली अपनी पूछ की फटकार से जाल को छिन्न–भिन्न कर देती हे उसी तरह मैं भी तेरे स्वप्न जाल को तोडकर फेकता हू। मैं अब तक सो रहा था इसी कारण स्वप्न–जाल मे फसा रहा। पर अब मैं जागरूक हू। अब मुझे कामना भी नहीं है इसलिए अपना स्वप्न–जाल समेटले।

कहा जा सकता है कि राजसी वैभव की गोद मे पले हो बडे हुए हो कभी कष्ट की सूरत नही देखी। फिर अब साधु–अवस्था के घोर कष्ट कैसे सहोगे? सुनो–

गज चढि चलता गरव से सैन्या सजि चतुरग।
निरखि–निरखि पगल्या धरे पाले करुणा–अग।।

इन बातो का मुझे पर कोई असर नही होगा। सच तो यह है कि ससार के सुख–वैभव शरीर के साथ है। जब शरीर ही नही, तो इनकी सभावना ही क्या है? मै शरीर का भी त्याग (ममत्व–त्याग) कर रहा हू तो वैभव को कहा ले रखूगा?

पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपा कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये।

अर्थात् चमडी के हट जाने पर शरीर मे रोम कहा रहेगे?

मैं अक्षय सम्पत्ति प्राप्त करने मे लगता हू। जो मेरी असली सम्पदा है जिसका मै सच्चा स्वामी हू और जो मुझ से कभी न्यारी नही हो सकती, उसी अक्षय सम्पत्ति को मै पाप्त करूगा। यहा का यश–वैभव मेरे किस काम का? मनुष्य इमारत वही खडी करता है, जहा उसे स्थायी रहना हो। चार दिन के बसेरे के लिये कौन पक्की इमारत बनवाता है? दशरथ कहते है–

क्या भाग रहा हू भार देख तू मेरी ओर निहार देख।
मै त्याग चला निस्सार देख, अटकेगा मेरा कौन काम।।
ओ क्षणभगुर भव! राम–राम।

अगर कोई कहता हे कि दशरथ से राज्य का भार उठाया नही गया, इसलिये डर कर भाग गये तो वही मेरी ओर देखे। मेरा बल–पराक्रम कम नही हो गया हे। मै राज्य के भार से घबराया नही हू। मुझमे राज्य का सचालन करने की शक्ति अब भी प्रचुर परिमाण मे मौजूद है। किन्तु मैं निस्सार समझकर ही ससार त्याग रहा हू। अब तक मुझे यह विवेक प्राप्त नही हुआ था, अब हो गया है। मे अब निस्सार को त्यागकर सार को ही पकडना चाहता हू।

दशरथ इतने पराक्रमी थे कि मरते–मरते भी अगर तीर फेकते तो पहाड को छेद सकते थे। मगर जागृति आने पर उनके पराक्रम की दिशा बदल गई। अब तक जो पराक्रम ससार–भमण के लिए था, वह अब ससार के अन्त मे लगना चाहता हे। **'जे कम्मे सूरा ते धम्मा सूरा'** – जो कर्म करने मे शूर होते हे वे दिशा बदल जाने पर धर्म मे भी शूर बन जाते हैं। वस्तुत पराक्रम वही हे दिशा भिन्न–भिन्न हे। जिसमे पराक्रम ही नही है वह न कर्म मे समर्थ होता हे न धर्म मे।

लोग समझते हे – ससार छोडकर साधु बन जाना अकर्मण्यता है उत्तरदायित्व से भाग निकलना है। मगर जिसे साधुता की मर्यादा का ज्ञान है, वह ऐसा नही कहेगा। साधु होकर अकर्मण्यता धारण नही की जाती। साधु प्रतिपल इतना कर्तव्यरत उद्यत और सलग्न रहता है कि कल्पना करना भी कठिन हे। राजा अपने से हीनवीर्य और अल्पसाधनसम्पन्न शत्रु पर विजय प्राप्त करता है अपनी विशाल सेना की सहायता से और सहारक शस्त्रो से। मगर साधु जिन शत्रुओ से जुझता है वे बडे ही बलवान हैं ओर उन पर भौतिक शस्त्रो का प्रहार काम नही आता। राजा के कर्तव्य का और उत्तरदायित्व का दायरा बहुत छोटा होता हे उसके राज्य की भोगोलिक सीमा ही उसके उत्तरदायित्व की सीमा हे। मगर साधु का कर्तव्य और दायित्व असीम हे। राजा उसकी रक्षा करता है जो उसकी अधीनता स्वीकार करता हे उसकी प्रजा बनकर रहता है। मगर साधु तीन लोक के स्थावर और जगम सूक्ष्म और स्थूल – सभी प्राणियो की समभाव से रक्षा करता है। वह किसी को अपने अधीन रखने का प्रयत्न नही करता हे। वह स्वय स्वाधीन हे और प्राणीमात्र को अपनी ओर से स्वाधीनता वितरण करता हे। राजा अपनी प्रजा से धन लेता हे ओर उस धन मे से प्रजा की उन्नति के लिए व्यय करता है मगर साधु अकिचन हे। उसे धन से कोई सरोकार नही। वह देना ही देना जानता हे लेना उसके लिये त्याज्य हे। राजा की सहायता के लिये अमला होता हे मगर साधु विना किसी अमले की सहायता के एकाकी ही अपने कर्तव्य का पालन करता हे। वह निस्पृह भाव से जगत के उत्थान के लिये उद्यत रहता हे। इस प्रकार साधु के कर्तव्य की कोई सीमा नही हे। अतएव उत्तरदायित्व से वचने के लिये साधुता स्वीकार नही की जाती किन्तु क्षुद्र उत्तरदायित्व के वदले असीम उत्तरदायित्व स्वीकार करने क लिये साधुत्व अगीकार किया जाता हे। हा साधुता के नाम पर ढाग चलाने की वात अलग हे किन्तु ढाग करन क लिये कोई राजपाट आर वेभव–विलास नही छोडता। दशरथ फिर सावत हैं –

ओ क्षणभगुर भव! राम–राम।

रूपाश्रय तेरा तरुण गात्र वह कह कव तक है प्राणमात्र

भीतर भीषण ककाल गात्र वाहर–वाहर है टीमटाम।।ओ।।

राम–राम जुहार या सलाम विछुडन क समय का सकत ह। आप यह या ऐसा ही अन्य सकत लोगा स प्रतिदिन करत हाग पर इस क्षणभगुर ससार से भी कभी किया ह? मात आने पर ता सभी करत ह मगर जा लोग जीवित रहत एसा करत ह व धन्य ह। ससार की सम्पदा का आज तक कोई

अपने साथ नही ले गया है। यही विचार कर दशरथ ससार को राम-राम करते है।

दशरथ कहते है-शरीर का यह सुन्दर रूप यौवन की निशानी हे। मगर यौवन तो **'गिरीनदी-वेगोपमम् यौवनम्'** है अर्थात् पहाडी नदी के वेग के समान है जो आने के बाद थोडे ही समय मे समाप्त हो जाता है। ऐसे अस्थिर यौवन का भरोसा करके विवेकी पुरुष निश्चिन्त हो सकता है? शास्त्र मे कहा है-

कुसग्गे जह ओसविन्दुए, थोव चिट्ठइ लम्बमाणए।
एव मणुआण जीविय, समय गोयम! मा पमायए।।

-उत्तराध्ययन

अर्थात् कुश की नोक पर लटकती हुई ओस का बूद कितनी देर ठहरेगी? पवन का हल्का-सा झोका लगते ही वह जमीन पर गिर पडेगी। इसी पकार मनुष्यो का जीवन अस्थिर है। वह किसी भी समय समाप्त हो सकता है।

सकल्प की सराहना

राजा दशरथ ने मन ही मन जो विचार स्थिर किया था, उसे अमल मे लाने का तत्काल निश्चिय कर लिया। शुभस्य शीघ्रम्' इस उक्ति को चरितार्थ करते हुए उन्होने अपने सरदारो, उमरावो, रानियो और पुत्रो को बुलाकर उनके सामने अपना सकल्प प्रकट कर दिया। दशरथ बोले – मैं अब वृद्ध होने लगा हू। अतएव अब चोथेपन का सदुपयोग करना चाहता हू। आप सब मुझे क्या सम्मति देते हैं? मै रोते-रोते मरना नही चाहता किन्तु राम के लिये राज्य त्याग कर जन्म-मरण की जड ही काट देना चाहता हू।

दशरथ का समय भारतवर्ष का स्वर्ण-समय था। वह धार्मिकता एव आध्यामिकता का समय था। दशरथ का प्रस्ताव उस समय की प्रचलित परिपाटी क अनुकूल ही था। अतएव यह प्रस्ताव सुनकर किसी को विस्मय नही हुआ। राजा लोग वृद्धावस्था मे ऐसा ही किया करते थे।

दशरथ के प्रस्ताव का सभी ने एक स्वर से अनुमोदन किया। उमराव कहने लगे – आपके सफेद बाल वृद्धावस्था के आगमन के चिह्न हैं। ये बाल ऐसे पूछ रहे है – आप राम को राज्य देकर कब निवृत्त होगे? महाराज! आपका विचार सर्वथा प्रशसनीय हे। आपने श्रेष्ठ कर्तव्य करने का निश्चय किया है। आपक पूर्वज जसा करते आये हे आप भी कीजिये। हम अपने

स्वार्थ के लिये अपने हृदय की झूठी तृप्ति के लिये आपके मार्ग मे रोडा नही बनेगे। हम सदा से आपके सहायक रहे है तो क्या अब बाधक बनेगे?

आपके सामने राज्य पाने और राज्य त्यागने की दोनो बाते उपस्थित हो, तो आप किसे पसन्द करेगे? आजकल राज्य त्यागना बहुत कठिन मालूम होता है, मगर उस समय राज्य स्वेच्छापूर्वक त्याग करना उसी तरह प्रसन्नता देने वाला समझा जाता था जैसे आजकल राज्य पाना आनन्ददायक माना जाता है।

जो राजा घर मे पडा–पडा मर जाता था, उसके लिए तो जरूर चिन्ता की जाती थी, मगर कर्म–शत्रु को काटते–काटते मरने वाले के लिये तनिक भी चिन्ता नही की जाती थी। दीक्षा लेने वाले मार्ग मे कोई बाधक नही होता था। हा, क्षणिक शोक अवश्य होता था मगर वह तो चार दिन के लिए आये मेहमान के जाने पर भी होता है। कन्या जब ससुराल जाती है तो उसे अपने पितृ–परिवार का त्याग करते समय शोक होता है और पितृ परिवार को भी उसके विछोह की वेदना होती है मगर दोनो ही यह बात भली–भाति जानते हैं कि ससुराल जाना भी मगलप्रद है। जब ससुराल जाना भी मगलप्रद है तो दीक्षा लेना क्या अमगल की बात होगी?

सरदारो और उमरावो का समर्थन पाकर दशरथ को बहुत प्रसन्नता हुई। वे कहने लगे – सरदारो! तुम लोगो मे धर्म–भावना हे यह जानकर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ। मुझे सरलता से आप लोगो की सहमति मिल गई। इतना ही नही किन्तु धर्मभावना के कारण न्यायपूर्वक राज्य का सचालन करेगे यह सोचकर भी मुझे बहुत सन्तोष हे। अब मे निश्चित होकर आत्म–कल्याण की साधना मे लग सकूगा।

दशरथ जरा ठहर कर फिर बोले – श्रेयष्कर कार्यो मे विलम्ब करना उचित नही हे। कल ही रामचन्द्र को राज–सिहासन दिया जाएगा। आप लोग जाइये और तेयारी कीजिये।

राम–राज्याभिषेक की तैयारी एव प्रजा की उत्सुकता

अवध की प्रजा मे राम क प्रति जसा प्रम था उसकी उपमा मिलना कठिन ह। राम के राज्याभिषेक का समाचार विजली की तरह अवध–भर म फेल गया। वालक स लगा कर बूढ तक हर्ष रा विह्वल हा उठ। मगलमृत ग

का राज्याभिषेक देखने की आतुरता और व्यगता से अवधवासी पागल हो गये। जहा कान लगाओ बस एक ही चर्चा है। सभी की जीभ पर एक ही बात।

अगर किसी दरिद्र को सबेरे राजगद्दी मिलने वाली हो, तो उसे वह रात कितनी बडी मालूम होगी जिसका अन्त होने पर उसे राज्य मिलना है? उसे वह उषा कितनी प्यारी लगेगी जिसके बाद होने वाले सूर्योदय पर उसे राज्य मिलना है? यही बात अवध की पजा के लिये कही जा सकती है। पत्येक नर और नारी का हृदय उत्कठा के साथ सोचता है – कब प्रभात हो और कब राम का राज्याभिषेक देखे। पजा को राज्य नही मिलता है, मगर उसकी प्रसन्नता ऐसी ही है कि मानो उसी को राज्य मिल रहा है।

अगर किसी पामाणिक पुरुष को कही का हाकिम बनाने की तैयारी की जाय और वह अपने मे हाकिम बनने की योग्यता न पाता हो तो वह यही सोचता कि हाकिम बनने से साफ इनकार कर देना ही मेरे लिए योग्य है। इस तरह बुद्धिमान पुरुष उस पद को लेने से इनकार कर देता है, जिसकी जिम्मेवारी निभाने की ताकत उसमे नही है। फिर भी उसकी भावना यही होगी कि कोई बुद्धिमान पुरुष ही इस स्थान पर नियत किया जाय।

इसी प्रकार अवध की प्रजा सोचती है कि हम कब रामचन्द्रजी का राज्य देखे। अगर किसी पापी का राज्य देखना होता तो उत्सुकता न होती मगर ईश्वर की समता करने वाले महापुरुष का राज्य देखने के लिए कौन उतावला न होगा?

मित्रों की बधाई

राम के मित्रो को जब यह सवाद मिला कि हमारे मित्र रामचन्द्रजी का कल प्रातःकाल ही राज्याभिषेक होने वाला हे तो वे हर्षविभोर हो उठे। उनमे बहुत–से अपने मित्र का उत्कर्ष होते देखकर प्रसन्न थे और कुछ ऐसे भी थे जो राम के उत्कर्ष मे अपना भी उत्कर्ष देखते थे। अपना उत्कर्ष देखने वाले सोचने लगे – जब राम ही राजा हो जायेगे तब हमे किस चीज की कमी रह जाएगी? ऊचे–ऊचे पद ओर हाथी घोडे आदि सब अब हमारे ही होगे।

अगर राम आपके मित्र हो तो आप उनसे क्या चाहेगे? आप परमात्मा से प्रीति करते है? पर किसलिए? केवल सासारिक तृष्णा पूर्ण करने के लिए

ही न। तृष्णा को क्षीण करने के लिए परमात्मा से प्रीति करने वाले विरले ही मिलेगे और वे विरले ही निहाल होते है।

राम के मित्र दौडते–हाफते उनके पास आ पहुचे। वे आये तो थे राम को बधाई देने और उनका अभिनन्दन करने के लिए पर हर्ष की अधिकता के मारे उनका बोलना बन्द हो गया। मुह से बात न निकली। जब भावो का उद्रेक बहुत प्रबल होता है तो जीभ थक कर हार मान जाती हे।

राम ने मित्रो का अभिवादन करके कहा – कहिये इस समय कैसे आना हुआ कुछ कहिये तो सही। आपका चेहरा कहता है कि मन मे कोई विशेष बात है, फिर आप मौन क्यो साधे हैं?

बडी कठिनाई से हर्ष का आवेग रोक कर एक ने कहा – कल अभिषेक होगा।

राम – किसका?

मित्र – आपका।

राम यह सुन कर उदास हो गये। राम को उदास देखकर उनके मित्र सोचने लगे – यह क्या हाल हे? क्या हम कोई बुरा समाचार लाए है जो राम इस तरह उदास हो रहे हैं? फिर उन्होने कहा – 'महाराज दशरथ ने आदेश दिया है कि कल सूर्योदय होने पर रामचन्द्र का राज्याभिषेक किया जायेगा। हम आपको यह शुभ समाचार सुनाने आये हे लेकिन आपकी यह निष्कारण ओर असमयिक उदासीनता हमारी समझ मे नही आती। आप क्या विषाद अनुभव करते हे?

राम कहने लगे – मित्रो? आप मेरे सच्चे मित्र होते तो यह समाचार सुनकर मेरे पास आने के बदले पिताजी के पास गये होते। आपने उनसे निवेदन किया होता कि भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न के होते हुए राम का ही राज्य क्यो दिया जा रहा हे?

राम के मित्र कहने लगे – आप महाराज दशरथ के बड पुत्र ह। बडा पुत्र ही राज्य का अधिकारी होता हे। आपके होत हुए छोट पुत्र का राज्य किस प्रकार दिया जा सकता हे? क्या आप रघुवश की परम्परा तुडवा कर उल्टी गगा वहाना चाहते ह?

राम न उत्तर दिया – मित्रो! आप लागा न मुझ समझा नही ह। म परम्परा क लम्बे प्रवाह म वहन क लिए उत्पन्न नही हुआ हू। वास्तविकता का प्रतिपादन करना मर जीवन का नियम ह। वड का राज्य दन और छोट का न दन की परम्परा म वास्तविकता क्या ह? यह परम्परा किस [illegible]

आधार को लेकर खडी है? बडा कौन है? देने वाला अथवा केवल लेने वाला? अगर मेरे बदले मेरे किसी छोटे भाई को राज्य दे दिया जाय तो क्या मेरा बडप्पन कम हो जायगा उस अवस्था मे, जबकि मै स्वय ऐसा चाहता हू। मै समझता हू, अपने अधिकार का समझा जाने वाला राज्य छोटे को देने वाला इतना बडा होगा कि उसका यश ससार मे नही समा सकता। वास्तव मे बडप्पन देने मे है लेने मे नही कम से कम मै तो देने मे ही बडप्पन मानता हू।

मनुष्य गुणो से ही बडा होता है। देना एक बडा सद्‌गुण है और यह जिसमे हो वही वास्तव मे बडा आदमी है। धर्म के चार भेदो मे दान, शील, तप और भावना मे दान का स्थान प्रथम है। यह शिक्षा शरीर से ही मिलती है। लेकिन ससार लेना ही लेना जानता है। लोग देने का महत्त्व भूल रहे हैं। मैं देना सिखाना चाहता हू।

तुलसी या ससार मे, कर लीजे दो काम।
देने को टुकडा भला लेने को हरि नाम।।

तुलसीदासजी ने इस दोहे मे स्पष्ट कर दिया है कि मनुष्य को क्या लेना चाहिये और क्या देना चाहिये। लेने के नाम पर तो भगवान् का नाम लेना उचित है और अगर बहुत न दिया जा सके तो एक टुकडा भी दे देना अच्छा है।

भुजन्ते ते त्वद्य पापा ये पचन्त्यात्म कारणात्।

गीता मे कहा हे – जो केवल अपने लिये ही पकाता है, जिसमे दुखियो और भूखो को देने की भावना नही वह पापी है।

शास्त्रो मे श्रावक के लिये अतिथि–सविभाग बतलाया गया है। व्रतनिष्ठ श्रावक अगर अतिथि के लिये विभाग न करे तो उसका व्रत भग हो जाता है। मुनि कभी आते हैं कभी नही आते अगर कोई दूसरा आवे तो उसे दिये बिना खाना गृहस्थ के लिये पाप बतलाया गया है। अगर आपको दो रोटी प्राप्त हे तो उनमे से ही एक टुकडा दे सकते हो। केवल लाओ–लाओ ठीक नही।

देने का अर्थ सिर्फ साधु को ही देना नही हे। यह ठीक हे कि पूज्यबुद्धि त्यागी पुरुष पर ही होती है लेकिन दया करके तो सभी को देना चाहिये। विद्याध्ययन समाप्त कर चुकने के पश्चात् शिष्य जब गुरुकुल का त्याग करके गृहस्थी मे आने लगता था तो गुरु उसे अन्तिम उपदेश देते और कहते थे–

श्रद्धया देय अश्रद्धया देय भिया देय ह्रिया देय।

अर्थात् हे शिष्य! तेरे पास जो वस्तु है वह दूसरो को श्रद्धा से देना अश्रद्धा से देना भय से देना लज्जा से देना।

श्रद्धा अर्थात सामर्थ्य से देना। कदाचित देने का सामर्थ्य न हो तो भी देना। यह देख लेना कि किसको किस चीज की आवश्यकता है? जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता हो उसे वही वस्तु देना। ऐसा न हो कि भूख से तडफने वाले को तू वस्त्र का दान दे और ठड से कापने वाले को रोटी बतलावे! ऐसा करना ठीक नही होगा?

दातव्यमिति यद्दान, दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दान सात्त्विक विदु ।।

पात्र–अपात्र का निर्णय करके दिया हुआ दान ही लाभप्रद होता है। कई लोग जूते मे मोहर रखकर भीख मागते है और कई लोग अधिक भिक्षा पाने के लोभ से अपनी आखे फोड लेते हैं। अतएव पात्र–अपात्र का निर्णय कर लेना। मतलब यह है कि श्रद्धा से भी दे ओर अश्रद्धा से भी।

शोभा के लिये भी दान देना और यह भी न हो सके तो लज्जा के मारे दान देना। श्रेयस के लिये दान देना अच्छा है। किन्तु अन्तत लज्जा के लिये ही देना। अगर लज्जा से दान नही दे सको तो फिर डर से ही देना। मगर राजा के डर से नही परलोक के डर से देना। ज्ञानपूर्वक दान दोगे तो ससार तरोगे ही अगर इस तरह न दे सको तो भी दान देने मे कोई हानि ता हे ही नही।

रामचन्द्र कहते हे – मित्रो! देना सबसे बडा सद्गुण हे। अगर मैं बडा हू तो मेरा कर्त्तव्य हे कि मे अपने छोटे भाइयो को राज्य दू। छोटे भाइयो को राज्य देने से मेरा महत्त्व घटेगा नही अपितु बढ ही जायेगा। मुझ म अनन्त राज्य पाने की शक्ति हे। इस राज्य को देने से मेरी शक्ति का ह्रास नही होगा – विकास ही होगा!

गुलिश्ता म एक कहानी आई हे। एक बहुत मालदार अमीर था। उसका एक मित्र उसके पास आया। उसने देखा कि अमीर मित्र क शरीर पर काई जेवर नही ह कवल एक अगूठी हे जो उसन बाए हाथ म पहन रखी हे। आगत मित्र ने अमीर से कहा – म आपसे एक आश्चर्यजनक बात का मतलब पूछता हू। दाना हाथा म दाहिना हाथ बडा माना जाता हे। फिर आपन दाहिन हाथ म जवर न पहन कर बाए हाथ म क्या पहन रखा ह? अमीर

ने कहा – आप समझे नही। दाहिना हाथ बडा है इसलिये तो उसने अपने छोटे बाए हाथ को अगूठी पहना रखी है। बडे का काम छोटे की सेवा करना है।

आगत मित्र ने कहा – बाए हाथ मे भी सबसे छोटी उगली मे आपने अगूठी पहनी है इसका भी यही मतलब है? अमीर ने उत्तर दिया – जी हा अब आप समझ गये। वास्तव मे जो छोटे मे भी छोटा है उसे हमे भूलना नही चाहिये। उसी छोटे की बदौलत बडे बडे कहलाते हैं। इसलिये छोटे का बहुत महत्त्व है। उसका महत्त्व दिखलाने के लिये ही मेने सबसे छोटी उगली मे अगूठी पहनी है।

बडे कहलाने वालो का बडप्पन छोटो की सार–सभाल, सेवा–शुश्रूषा ओर प्रतिष्ठा करने मे है। लेकिन आज इस तथ्य को कौन समझना चाहता है? बडे लोग छोटो को हजम करके आप बडे बनने की फिकर मे रहते हैं। अपने देश के अपनी जाति के गरीबो की ओर किसका ध्यान जाता है? स्मरण रखो जाति मे ही नही ग्राम मे भी अगर कोई दु खी है तो उसका भार आपके सिर पर है। ग्राम मे जो चीज जिस भाव होगी आपको भी वह उसी भाव मे मिलेगी। ग्राम की शाति या अशाति आपके हिस्से मे भी आयेगी। अतएव कोई भी बुद्धिमान पुरुष अपने किसी ग्रामवासी को दु खी नही देख सकता। वह दु खी का दु ख दूर करेगा और गिरे को उठायेगा।

रामचन्द्र के मुख से बडे की व्याख्या और बडे का कर्तव्य सुनकर उनके मित्रो को आश्चर्य हुआ। राम की समुद्र की तरह यह गम्भीरता आज उनकी समझ मे आई। उनका उदार भाव देख कर वे बहुत प्रभावित हुए। अपने छोटे भाइयो के प्रति उनके हृदय मे कितना वात्सल्य है। राम की त्यागवृत्ति राम को ही शोभा देती है। उन्होने कहा – राज्य का मिल जाना आसान है मगर आपने आज हमे जो शिक्षा दी है उसका मिलना बहुत कठिन था। इस उदार विचार के लिये आपके आभारी रहेगे।

राम ने अपने मित्रो को जो शिक्षा दी उस पर आप भी जरा विचार कीजिये। आप किस साचे मे ढलना चाहते हैं?

भरत का वैराग्य

जब भरत को पता चला कि पिताजी ने ससार त्याग कर दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया है तो उनके मन मे भी एक अपूर्व विचार आया। भरत ने विचार किया – पिता भी जब अनगार दीक्षा लेना चाहते हैं तो मुझे भी पिता

का अनुसरण करना चाहिए। अब तक मैं पिताजी के साथ खाता – पीता और आनन्द करता रहा हू, तो क्या अब मुझे उनका साथ नहीं देना चाहिये? मुझे क्या घर मे ही रहना उचित है? पुत्र का कर्तव्य पिता की सेवा करना है। पिताजी अब तक राजा थे। सब प्रकार की सुख–सामग्री उन्हे प्राप्त थी। अनगिनत दास–दासिया हाथ जोडे उनके सामने खडी रहती और उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करती रहती थीं। ऐसे समय मे मुझे सेवा करने का पूरी तरह अवकाश नही मिलता था। साधु हो जाने के पश्चात् उनकी सेवा करने का मुझे बहुत अच्छा अवसर मिलेगा और मेरी आत्मा का भी कल्याण होगा। इस प्रकार मेरे दीक्षा लेने से दोहरा लाभ है।

इस प्रकार विचार करके भरत दशरथ के पास पहुचे। उन्होने दशरथ से गद्‌गद् होकर कहा–

भरत भणै प्रभुजी सुनो, मैं व्रत लेस्यू लार।
हेत न जाणे आपणो ते साचो ही गवार।
पहलो दुख तो एक ए विरह तुम्हारो होय।
अरु ससार बधारणो दो दुख देखे कोय।।

'पिताजी! आपने जो विचार किया सो धर्म के अनुकूल तो है ही रघुवश की परम्परा–परिपाटी के अनुसार भी उचित है। राजाओ का यह अतिम कर्तव्य है। लेकिन मैं आपसे एक प्रार्थना करना चाहता हू।

पिता का ओर परमात्मा का दर्जा बडा ऊचा बतलाया गया है। पितृप्रेम एक नेसर्गिक आकर्षण है जो छोटे से बालक मे भी पाया जाता है। मेरी सासारिक अवस्था मे माताजी का जब देहावसान हुआ तब मैं बहुत छोटा था। मेरे पिताजी ने ही मेरा पालन–पोषण किया। मैं उन्ही के पास रहा था। पिताजी ही मेरे माता थे। एक बार रतलाम जाते समय वे मुझे मामा के घर छोड गए। रात्रि मे सो रहा था कि अचानक मेरी नीद खुल गई। मैं धीरे–से उठा ओर किवाड खोलने लगा। किवाडो की आवाज से मामाजी की नीद खुल गई। उन्होने पूछा – कोन है? मैंने कहा – मैं हू। मामाजी ने पूछा – क्यो किवाड खोलता हे? मैंने उत्तर दिया – भाईजी (पिताजी) के पास जाऊगा।

रतलाम वहा से बीस कोस दूर था और मे चार वर्ष का बालक था। फिर भी पिताजी का आकर्षण मुझे रतलाम जाने के लिये प्रेरित कर रहा था।

मनुष्य का बचपन मे पिता पर इतना प्रेम होता है तो आगे चल कर वह बढना चाहिये या घटना चाहिये?

बेटा झगडत बाप से करे तिरिया से नेहु।
बदाबदी से कहत हू, मोहि जुदा करि देहु।।
मोहि जुदा करि देहु चीज सब घर मे मेरी।
केती करू खराब, अकल विगरेगी तेरी।।
कह गिरधर कविराय सुनो ओ मेरी मिन्ता।
औसर पलटा खाय बाप से झगरत बेटा।।

ऐसे भाग्यशाली कुल विरले ही होगे जिनमे पुत्रो की आयु–वृद्धि के साथ–साथ पितृ–प्रेम की भी वृद्धि होती है। अन्यथा यही दशा होती है जिसका वर्णन गिरधरराय ने किया है। सौभाग्य से भरत ऐसे झगडाखोर लडको मे नही थे। इसी कारण उन्हे पिता की सेवा करने का उत्तम विचार उत्पन्न हुआ।

दशरथ के पास पहुच कर भरत ने कुछ प्रार्थना करने की आज्ञा मागी।

दशरथ ने सोचा – में राम को राज्य दे रहा हू, कहीं भरत मुझसे राज्य मागने तो नही आया है? ऐसा न हो कि भरत मेरी दीक्षा या राम के राज्याभिषेक मे विघ्न डाल दे।

अन्त मे दशरथ ने कहा – कहो तुम क्या कहना चाहते हो?

भरत – मैं एक प्रार्थना करना चाहता हू और वह यही कि आपके चरणो से मेरा वियोग न हो।

दशरथ – यह कैसे हो सकता है? क्या मुझे घर मे ही रखना चाहते हो?

भरत – नही पिताजी मैं आपकी दीक्षा मे विघ्न नही डालना चाहता किन्तु आपके साथ ही में भी दीक्षा लेना चाहता हू।

भरत का विचार जानकर दशरथ चकित रह गये। उन्होने कहा – तुम्हारा विचार उत्तम हे। लेकिन तुम्हारी उम्र अभी दीक्षा लेने योग्य नही है। अच्छा काम भी उचित अवसर पर ही होना चाहिये। इसके अतिरिक्त तुम्हारी माता का तुम्हारे ऊपर बहुत प्रेम है। तुम माता की आज्ञा लिये बिना दीक्षा नही ले सकते।

भरत – पिताजी मे दीक्षा अवश्य लेना चाहता हू। दीक्षा न लेने से प्रथम तो आपका वियोग होता है और दूसरे ससार मे जन्म–मरण करना पडता है। यह दोनो दु ख सहने की अपेक्षा आपके साथ दीक्षा लेकर जन्म–मरण की जड काटना क्या बुरा हे?

दशरथ – बुरा नही हे वत्स! दीक्षा लेना बुरा नही हे। बुरा होता तो में स्वय क्यो दीक्षा का मार्ग ग्रहण करता? किन्तु प्रत्येक काम उचित रीति से होना चाहिये। अतएव अपनी माता की आज्ञा लिये विना तुम दीक्षा नही ले सकते।

भरत – ऐसा ही हे तो में माताजी के पास जाता हू। उनसे आज्ञा प्रदान करने के लिये निवेदन करता हू।

राज्याभिषेक मे विघ्न

जैन रामायण का वर्णन

महाराज दशरथ ने रामचन्द्र का राज्याभिषेक करने का आदेश दे दिया था। उनका आदेश पाते ही अभिषेक की तेयारी आरम्भ हो गई। अयोध्या नगरी मे घर–घर आनद छा गया। नगर–निवासियो ने समझा मानो हमारे घर मे ही उत्सव हे। सुहागिने मगलगान गाने लगी। उत्साह का पूर उमड आया। राजप्रासाद एक विचित्रता से उभर रहा था।

इसके वाद जो घटना घट रही हे उसका उल्लेख जेन रामायण मे भी हे ओर तुलसी–रामायण मे भी हे। किन्तु दोनो रामायणो मे उस घटना के कारण मे अन्तर देखा जाता हे। तुलसी–रामायण मे मन्थरा के उकसाने पर केकेयी ने अपना धरोहर–स्वरूप वर दशरथ से मागा हे जवकि जेन रामायण मे मन्थरा का कोई उल्लेख नहीं हे। जेन रामायण के अनुसार केकेयी को पता चला कि मेरे पति भी सयम धारण कर रहे हें ओर साथ ही पुत्र दीक्षा लेने की तेयारी कर रहा हे ऐसी स्थिति मे में सर्वथा निराधार हो जाउगी। श्रीरविषणाचार्य ने पद्मचरित मे इस सम्वन्ध मे लिखा हे–

कथ न मे भवेद् भर्ता न च पुत्रो गुणालय।
एतयोर्वरणे कुर्वे कमुपाय सुनिश्चितम्।।
एव चिन्तामुपेताया परम व्याकुलात्मन।
तस्या वरोऽभवच्चित्ते गत्वा च त्वरित तत।।
प्रीत्या परमया दृष्ट्वा सावष्टम नराधिपम्।
जगदर्धासने स्थित्वा तेजसा गुरूणान्विता।।
सर्वेषा भू–भृता नाथ! पत्नीना च पुरस्त्वया।
मनीषित ददामीति यदुक्ताह प्रसादिना।।
वर सम्प्रति त यच्छ मह्यह कीर्ति समुज्जवल।
दानेन तेऽखिल लोक कीर्तिर्भ्रमति निर्मला।।

अर्थात रानी कैकेयी सोचने लगी – अपने पति और पुत्र को दीक्षा लेने से रोकने के लिये क्या उपाय करना चाहिए? इस प्रकार सोचते–सोचते उसका चित्त अत्यन्त व्याकुल हो गया। तब उसे 'वर का स्मरण आया। वह उसी समय दशरथ के पास आ पहुची। बडे प्रेम और आदर के साथ राजा की ओर देख कर वह अर्धासन पर बैठी और कहने लगी –नाथ आपने प्रसन्न होकर पहले सभी राजाओ और पत्नियो के समक्ष मेरी इच्छा के अनुसार वर देने के लिए कहा था। अब वह वर मुझे दीजिए। आप दानी हैं। दान की बदौलत आपकी कीर्ति ससार मे भ्रमण कर रही है।

वर की याचना करने पर दशरथ बोले – 'प्रिये! मुझे भली–भाति स्मरण है। मैंने तुम्हे वर दिया था और वह धरोहर की तरह मेरे पास सुरक्षित है। अच्छा हुआ, तुमने उसे याद कर लिया। अन्यथा तुम्हारा ऋण मुझ पर चढा रह जाता। अब मैं तुम्हारे ऋण से मुक्त होकर ही दीक्षा लूगा।

रानी ने सोचा – अगर महाराज वर की याचना किये बिना ही दीक्षा लेने का विचार स्थगित कर दे तो वर मागने की आवश्यकता ही नही पडेगी। यह सोचकर उसने कहा–

वद कि कृतमस्माभि येनासि त्यक्तुमुद्यत ।
ननु जीवितमायातमस्माकं त्वयि पार्थिव!
अत्यन्त दुर्धरोदिष्टा प्रव्रज्या जिनसत्तमै ।।
कथ माश्रयितु बुद्धिस्तामद्य भवता कृता।
देवेन्द्रा सदृशैर्भोगैरिद ते लालितं वपु ।
कथचक्ष्यति जीवेश! श्रामण्य विविधं परम्।।

अर्थात राजन! कहिये हमसे क्या अपराध बन पडा है कि आप हमारा त्याग करने पर उतारू हो गये हैं। हमारा जीवन तो आपके ही सहारे है! आप हमे त्याग देगे तो हमारी क्या गति होगी? जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है कि साधु–दीक्षा बहुत ही कठिन है। उसका पालन करना सहज नही है। आपने किस कारण दीक्षा लेने का विचार किया है? प्राणेश! आपका शरीर बहुत कोमल है। इन्द्र के समान विपुल भोगो से इसका लालन–पालन हुआ है। यह कोमल शरीर उस कठिन दीक्षा को किस प्रकार सहन करेगा?

महारानी के इस स्नेहपूर्ण कथन का दशरथ पर अब कोई प्रभाव नही पड सकता था। उन्होने सयम धारण करने का पक्का विचार कर लिया था। किसी प्रकार का प्रलोभन उन्हे अपने निश्चय से डिगा नही सकता था। अतएव दशरथ ने कहा–

वाच्छित वद कर्तव्य स्वय यास्यामि साम्प्रतम्।

अर्थात् हे रानी! मैं तो अब जाऊगा ही! तुम्हारा जो इष्ट हो सो कहो। आप वर माग लो। मेरा निश्चय अब पलट नही सकता।

रानी ने देखा कि पति ने अटल निश्चय कर लिया हे ओर उस मे परिवर्तन की कोई गुजाइश नही है। ऐसी स्थिति मे अब पुत्र को ही रखने का प्रयत्न करना उचित है। पुत्र भरत को सयम से रोकने का एकमात्र उपाय यही दिखाई देता है कि उसके सिर पर राज्य का बोझ डाल दिया जाय। मगर भरत के लिये राज्य मागने का काम भी सरल नही था। रानी जानती थी कि इस कुल मे ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का अधिकारी होता आया है। इस परम्परा के अनुसार रामचन्द्र ही राज्य का अधिकारी है। रामचन्द्र के राज्याभिषेक की तैयारी भी प्रारम्भ हो गई है। राम मेरा राजपरिवार का और प्रजा का भी बहुत प्यारा है। वह सब प्रकार से योग्य और विनीत है। मै भले ही उसकी विमाता हू, मगर वह मुझे माता ही मानता है। मैं भी उसे भरत से कम प्रेम नही करती। अतएव भरत के लिये राज्य मागना मुझे शोभा नही देता। मगर ऐसा न करू तो भरत हाथ से जाता है। कोमल–वय भरत को मैं साधु अवस्था मे केसे देख सकूगी? पति और पुत्र दोनो से वचित होकर मैं क्या करुगी? किस प्रकार जीवित रह सकूगी?

केकेयी बडे असमजस मे पड गई। इधर कुआ उधर खाई की कहावत उस पर पूरी घटने लगी। अन्त मे उसने विचार किया – राम स्वत महान् हे। उसकी महत्ता न राज्य पाने से बढ सकती हे ओर न राज्य नही पाने से घट सकती हे। भरत की राम पर जो अपरिमित श्रद्धा हे वह कभी कम नहीं हो सकती। राम इतना उदार हे कि भरत के राजा हो जाने पर भी वह भरत से प्रेम करेगा। ऐसी स्थिति मे भरत अगर राजा हो जाए तो क्या हर्ज हे। आखिर तो वह भी दशरथ का पुत्र ओर राम का भाई हीहे।

हृदय को सबल बनाकर केकेयी ने यह विचार स्थिर कर लिया मगर जिह्वा से कहना उसके लिये असभव हो गया। सोचन लगी – यह बात महाराज के सामने कहू केसे? महाराज दशरथ मुझ कितनी क्षुद्र और नीच समझेगे? इनके चित्त को आघात पहुचा तो क्या हागा? इस प्रकार लज्जा आर सकोच की मारी केकेयी मुख से बोल न निकाल सकी। थाडी दर मोन रहने के पश्चात जब दशरथ ने वर–याचना का तकाजा किया ता अत्यन्त भाव से लज्जित होते हुए उसन जमीन पर लिख दिया–

इत्युक्त्वा लिखित क्षोणी प्रदेशिन्या नतानना।
जगाद–नाथ! पुत्राय मम राज्य प्रदीयताम्।

रानी ने लज्जा से अपना मुख नीचा कर लिया। वह मुह से बोल न सकी। उगली से जमीन पर सिर्फ इतना लिख दिया – नाथ! 'मेरे पुत्र भरत को राज्य दे दीजिये।

तुलसी–रामायण का विवरण

सगति का प्रभाव पडे बिना नही रहता। अतएव कोई कैसा ही बुद्धिमान नीतिमान होशियार और धर्मात्मा हो उसे बुरी सगत से बचना चाहिये। बुरी सगति का प्रभाव किस पकार पडता है, यह बताने के लिये ही यह कथा कही जा रही है। यह कथा जैन रामायण मे नही है पर कथा का उद्देश्य शिक्षा ग्रहण करना है और इस कथा से भी शिक्षा मिलती है।

दशरथ की रानी कैकेयी कुलीन, बुद्धिमती और घर मे फूट न होने देने की इच्छा रखने वाली कल्पलता के समान सब को प्रिय थी। लेकिन कुल्हाडी कल्पलता को भी काट डालती है कैकेयी अच्छे विचार की स्त्री होने पर भी कुसगति के कारण बुरी कहलाई। मन्थरा नाम की उसकी दासी थी। तुलसी–रामायण मे कहा है–

देखि मथरा नगर बनावा मजुल मगल बाज बधावा।
पूछेसि लोगन काह उछाहू, राम तिलक सुनि भा उर दाहू।

जैसे किसी फले–फूले बाग मे कोई दुष्ट जाए और उसे बुरी दृष्टि से देखे उसी तरह मथरा उत्सव से भरी अयोध्या मे निकली और लोगो के आनन्द को देखकर पूछने लगी – आज नगर मे यह आनन्द किस निमित्त से हो रहा है? कोई उत्सव तो है नही फिर यह अपूर्व चहल–पहल किस बात की है?

मथरा की बात सुनकर लोग कहने लगे – तू राजपरिवार की दासी है फिर भी तुझे उत्सव का कारण नही मालूम है? कल राम का राज्याभिषेक होगा और महाराज दशरथ राज्य का भार त्याग कर आत्म–कल्याण के लिए वन को जाएगे।

करहि विचार कुबुद्धि–कुजाति
होइ अकाज कवन विधि राती।
देखि लागि मधु कुटिल किराती
जिमि गव तकइ लेउ केहि भाति।

राम को कल राज्य मिलेगा, यह सुनते ही मथरा के शरीर मे आग लग गई। उस कुटिला दासी के मन मे कुबुद्धि आई। वह सोचने लगी – कल राम राजा होगे। अब क्या करना चाहिये? क्या उपाय किया जाय कि रग मे भग हो जाय। जैसे शहद लगा देख कर भीलनी सोचने लगती है कि यह शहद मैं किस प्रकार प्राप्त करू? इसी प्रकार मथरा कोई उपाय सोचने लगी। मथरा को ध्यान आया – अभी गनीमत है कि राम को राज्य मिलने मे रात–भर की देरी है। इस रात मे तो बहुत काम हो सकता है। मगर इस रात मे मैंने पासा न पलट दिया तो मेरा नाम भी मथरा ही क्या? मैं ऐसा उपाय करूगी कि राम को राज्य नहीं मिल पाएगा।

मथरा की कुबुद्धि भीलनी की बुद्धि के समान थी। शहद की मक्खिया बेचारी न जाने कहाँ–कहाँ से फूलो का रस ला–ला कर शहद रखने के लिए छत्ता तैयार करती हैं, उसमे मोम लगाती हैं और उस पर बैठ पर गुनगुनाया करती हैं। लेकिन भीलनी को इन सब बातो से क्या प्रयोजन है? वह निर्दयता के साथ शहद लूट लेती है मधुमक्खियो का सर्वस्व हर लेती है ओर वे बेचारी रोती रह जाती हैं।

मथरा ने राम के राज्याभिषेक मे विघ्न डाल कर पुरवासी रूपी मधुमक्खियो को दुखित करने का निश्चय कर लिया। यद्यपि राम को राज्य न मिलने से मथरा को कोई लाभ नहीं था ओर राज्य मिलने से उसे कोई हानि भी नहीं थी फिर भी ईर्ष्या से अन्धा व्यक्ति ऐसी बातो का विचार नहीं करता। भीलनी शहद के लोभ से मक्खियो को सताती हे पर मथरा को राम की राज्यप्राप्ति मे विघ्न डालने से कुछ भी नही मिलेगा। वह दासी मिटकर रानी नहीं बन जाएगी। मगर अज्ञानी जीव निरर्थक ही अपना मुह काला करके दूसरे का अनिष्ट करते हैं।

भरत माता पहँ गई विलखानी का अनमनि असि कह हरि रानी।
ऊतरि देइ न लेई उसासू, नारि–चरित करि ढारइ आसू।

मथरा कैकेयी की दासी थी। इसलिये वह दोडी हुई उसी के महल मे पहुची। वह थी तो कूवडी पर थी वडी चतुर। चतुर न होती तो इतना वडा साहस केसे कर सकती थी? अपनी चतुरता के कारण वह रानी का प्रिय थी।

मथरा घोर दु खी होने का स्वाग वनाती हुई अनमनी हाकर रानी के पास पहुची। उसे इस स्थिति मे देखकर रानी ने हस कर पूछा – आज तू अनमनी क्यो है? मगर मथरा न कुछ उत्तर नहीं दिया। वह लम्बे – लम्बे सास लेने लगी आर त्रिया–चरित्र करके आसू वहान लगी।

रोना त्रिया–चरित्र का एक अग है। मर्द वही है जो त्रिया–चरित्र मे नही फसता।

कैकेयी पूछने लगी – मेरी बात का उत्तर क्यो नही देती? तेरे रोने से जान पडता है कि आज कोई विशेष बात है।

हसि कहि रानि गालु बड तोरे, दीन्ह लखन सिख अस मन मोरे।
तबहु न बोलि चेरि बड पापनि, छोडे स्वास कारि जनु नागिनी।।

कैकयी मथरा से कहने लगी – तेरी जीभ बहुत चलती है। जान पडता है आज तेरी जीभ चली होगी और उसी का नतीजा तुझे भोगना पडा है। मेरे कारण और लोग तो तेरे साथ रियायत कर देते है मगर लक्ष्मण किसी की बात नही सुनता। तूने उससे कोई बात कही होगी और उसने तेरी पूजा उतारी होगी। क्यो यही बात है न?

मथरा फिर भी कुछ न बोली। पिटारी मे बन्द काली नागिन जैसे फुफकारती है उसी प्रकार वह भी लम्बे–लम्बे सास छोडने लगी।

किसी को काटने से नागिन का पेट नही भर जाता फिर भी वह बदनाम होती है और जिसे काटती है उसके प्राण चले जाते हैं। मथरा को राम के राज्याभिषेक मे विघ्न डालने से कोई लाभ नही था, फिर भी वह बदनाम हुई और सारी अयोध्या को उसने घोर पीडा पहुचाई।

समय रानि कह कहसि किन कुशल राम महिपाल।
भरत लखन रिपुदमन सुनि भा कुबरिहि उर साल।।

मथरा को रोती देख रानी ने सोचा – यह बहुत रोती है तो कोई और बात होनी चाहिये। रानी को किसी अशुभ की आशका हुई। उसने पूछा – कहती क्यो नही क्या बात हे? महाराज, राम भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न सकुशल है न? इन्ही की कुशलता मे सब की कुशलता है।

राम का नाम सुनते ही मथरा के अग–अग मे आग लग गई। वह कहने लगी –

कत सिख देई हमहि कोउ माई। गरव करव केहि कर बल पाई।।
रामहि छाडि कुशल केहि आजू। जिनहि नरेश देत युवराजू।।

मुझे कोई शिक्षा क्यो देगा? में बोलूगी किसके बल पर कि मुझे कोई शिक्षा दे? मुझे सिर्फ आपका बल हे लेकिन आप ऐसे हे कि बिना अपराध किये उलाहना देती हैं। अगर अपराध हो जायगा तब तो कहना ही क्या है? आप औरो की कुशल पूछती फिरती हैं पर अपनी कुशल का भी कुछ ध्यान

है या नही? रानी हो कर इतनी भोली हो? ऐसा भोलापन किस काम का? आप राम की कुशलता पूछती हो मगर आज राम के सिवाय और किसकी कुशल है? राजघराने वालो को राज्य ही प्रिय होता हे। वह राम को मिल रहा है। उसके अतिरिक्त और उन्हे चाहिये ही क्या? महाराज कल ही राम को राज्य दे रहे हैं।

भा कौशल्यहि विधि अति दाहिन। देखत गर्व रहत उर नाहिन।।
देखहु जाइ न कस सब शोभा। जो अवलोकि मोर मन छोभा।।

आज अगर किसी का भाग्योदय हुआ है तो केवल कौशल्या का। आज उनके भाग्य पर चार चाद लग गए। उनके बेटे को राज्य मिल रहा है। वे राजमाता होगी। आप जाकर देख क्यो नही आती कि उनके घर कैसा आनन्द हो रहा है! आपको इन बातो का पता ही नही है। आप समझती हैं कि महाराज का हमारे ऊपर बहुत प्रेम है! मगर उन्होने पूछा भी सही कि राम को राज्य दू या नही? जहा देखो, राम और कौशल्या की चर्चा है। आपका नाम कौन लेता है? मुझे अभी तक इस षड्यन्त्र का पता नही था। अब मालूम हुआ कि आपके विरुद्ध भयानक जाल रचा गया है।

मथरा की इस प्रकार की बहुत–सी बाते सुनकर कैकेयी ने जान लिया कि इसकी बाते प्रिय तो हे मगर इसका मन मैला है। वह रुष्ट होकर मथरा से कहने लगी – अरी कुटिला! तुझे इस मगल–कार्य मे अमगल कैसे सूझ रहा है? महाराज अवध का राज्य राम को देते हे इससे अधिक खुशी का अवसर ओर क्या हो सकता हे? राम बडे हे वे ही तो राज्य के अधिकारी हे।

केकयी की आखे लाल हो गयी। उसने कहा – खबरदार! मे सोने की कटारी पेट मे भोंकने वाली नही हू। मे तुझे प्यार करती हू, लेकिन तूने राम ओर कोशल्या की बुराई करके घर मे फूट डालने की चेष्टा की तो तेरी जीभ खिचवा लूगी। मे समझ गई कि तू मेरा हृदय मलीन बनाना चाहती हे। आयदा इस तरह की बात मत करना। इसी मे तरी कुशल हे।

केकेयी बडी बुद्धिमती ओर गुणवती थी। फिर भी कुसगति न उसे धर दबाया। जब केकेयी जेसी स्वच्छ–हृदया रानी भी कुसगति क प्रभाव स न बच सकी तो ओरो का क्या कहना हे! अत कुसगति स सदेव बचत रहन की आवश्यकता ह। आज भारतवर्ष म जगह–जगह मथराए मोजूद हे जो हिलमिल कर रहने वाले परिवारो मे फूट ओर कलह क जहरीले बीज बो देती ह आर फिर तमाशा दखती ह। एसा करन वाला चाह कोइ पुरुष हो या स्त्री

उससे दूर ही रहना चाहिये। साथ ही आपको सदैव स्मरण रखना चाहिये कि ऐसा करना घोर कुकर्म है अतएव आप किसी के परिवार को फोडने का पयत्न न करे।

काने खोरे कूबरे कुटिर कुचाली जानि।
तिय विशेष पुनि चेरि कहि भरत मात मुसकानि।।

कैकेयी कहती है – काने खोडे और कुबडे कुटिल होते ही हैं तिस पर स्त्री–जाति पर यह खास तौर पर घटती है और फिर स्त्रियो मे भी दासी पर। अब तू चुप रह। फिर कभी मुह से ऐसी बात मत कहना। इतना कह कर रानी मुस्करा दी।

यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति

अर्थात् जिसकी आकृति अच्छी होती है, उसमे गुण भी अच्छे होते हैं और जिसकी आकृति अच्छी नही होती उसमे अच्छे गुण भी नहीं होते।

रानी के इतना कहने पर भी मन्थरा अपने उद्देश्य से विचलित नही हुई जैसे दो–चार मक्खियो के काट लेने पर भी भीलनी शहद लेने के उद्देश्य से विचलित नही होती। मथरा जानती थी कि रानी का यह क्रोध क्षणिक है, एक उफान है जो अभी शात हो जाएगा।

प्रियवादिनी सिख दीन्हेउ तोही, सपनेहु तो पर कोप न मोहीं।
सुदिन सुमगलदायक सोई, तोर कहा फुर जेहि दिन होई।
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई यह दिनकर–कुल रीति सदाई।
राम तिलक जो साचेउ कालि मांगु देउ मनभावत आली।

कैकेयी के क्रुद्ध होने पर मथरा जब अनमनी–सी खडी हो गई तब रानी विचार करने लगी – मैंने इसे बहुत कठोर शब्द कह दिये हैं। अब तक मै इसे बहुत प्रेम करती आई हू। आज इतने कठोर शब्द कह देना ठीक नही हुआ। इस तरह विचार कर रानी ने उससे फिर कहा – प्रियवादिनी! मैंने तुझ से कुछ कहा तो शिक्षा देने के लिये ही कहा। मैं तुझ पर तनिक भी नाराज नही हू। तूने अपनी ओर से अमगल शब्द ही कहे हें मगर उन मे भी कुछ मगल दिखाई दिया।

समझदार मनुष्य बुराई मे से भी अच्छाई खोज निकालते हैं। आप अपने घर का कूडा–कचरा बाहर फेक देते हैं लेकिन किसान उसी कचरे को खेत मे डालकर अन्न उत्पन्न करता है।

रानी कहती है – तेरे कथन मे मगल यह है कि कल राम को राज्य मिलेगा। वास्तव मे वह दिन धन्य होगा जब राम राजा होगे। अगर तेरा कहना सच है तो माग मै मुहमागी बधाई देती हू। राम को राज्य मिलने मे बुराई क्या है? तुझे इससे दुखित क्यो होना चाहिये?

कौशल्या सम सब महतारी रामहि सहज स्वभाव पियारी।।
मो पर करहि सनेह विशेषी, मैं करि प्रीति–परीक्षा देखी।।

राम का जन्म कौशल्या के उदर से हुआ हे, लेकिन वे कौशल्या के ही हैं या कौशल्या को ही वे माता मानते हैं – यह बात नही है। राम के लिये सब माताए समान हैं, मुझे तो वह कौशल्या से भी अधिक मानते हैं। यह बात मैंने उनकी प्रीति की परीक्षा करके देख ली है। मै तो यही कहती हू–

जो विध जन्म देहि करि छोहू। होहु राम–सिय पूत पतोहू।।

अगर मुझे फिर जन्मना पडे और स्त्री बनना पडे तो मैं यही चाहती हू कि राम सरीखा पुत्र और सीता सरीखी पुत्र–वधू ही मिले। मेरा सौभाग्य है कि इस जन्म मे भी राम और सीता के समान पुत्र और पुत्र–वधू की प्राप्ति हुई है।

कैकेयी भरत की माता थी पुण्यवती थी, अच्छे विचार वाली थी। वह मथरा के कहने से तब तक नहीं डिगी जब तक कि उसकी खुद की बुद्धि नही बिगडी। अपने कुल की मर्यादा को जानने वाली और राम पर अपरिमित स्नेह रखने वाली कैकेयी भी अन्त मे कुसगति के कारण गिर गई। इससे यह शिक्षा मिलती है कि अच्छा व्यक्ति भी कुसग पाकर बुरा बन जाता है। जेसे डॉक्टर घाव को जहरीले कीडे से बचाते रहते है उसी प्रकार अपने–आप को बुरी सगत से बचाना चाहिये। केकेयी से आश्वासन पाकर मथरा ने कहा – मुझे क्या करना? मेरी तरफ से चाहे जो हो। मेंने आपकी भलाई के लिये ही इतना कहा था। लेकिन जब आपको अपनी चिन्ता नही तो मुझे क्या लेना देना हे? मेरे चिन्ता करने से हो भी क्या सकता हे? पीछे आप ही पछताएगी।

मथरा की इस वात से केकेयी के मन मे भ्रम ने प्रवेश किया। वह सोचने लगी – यह दासी चतुर हे राजतत्र जानती हे ओर मेरा हित चाहने वाली हे। राजतत्र मे छल–कपट भी चलता हे अतएव होशियार तो रहना ही चाहिये। उसने मथरा को शपथ देकर कहा – तू सच वता वास्तव मे वात क्या है?

फोरन जोगु कपार अभागा। भलेउ कहत दु ख रोरेहु लागा।।

मथरा ने अपना सिर फोडते हुए कहा – महारानीजी मेरा भाग्य ही फोडने योग्य हे। इसी कारण मेरी कही हुई अच्छी वात भी दूसरा को बुरी लगती हे।

मथरा का हाथ पकड कर सिर फोडने से रोक कर केकयी कहने लगी – तू कह तो सही कि असल मे वात क्या हे?

मथरा ने सोचा – तीर निशाने पर लगना चाहता है। लेकिन [illegible] हुई बोली – अब मे किस मुह से वात कहू? एक वार कहने का इनाम तो

आपने दे दिया। आपको वेही प्यारे है जो झूठी किन्तु मीठी–मीठी बात कहते हैं। सच्ची और खरी बात कहने वाली मैं बुरी लगती हू। खैर, मेरा क्या बिगडता है? मै अब ठकुरसुहाती बात ही कहूगी।

कैकेयी ने भरत की शपथ देकर कहा – तू सच कह। तेरी बात मेरी समझ मे नही आई इससे इतना कहा। मुझे माफ कर और निडर होकर सारी बात कह।

रानी को बात सुनने के लिये आतुर देखकर वह फिर रोने लगी। रोते–रोते बोली – मैं आपका अहित्त नहीं देख सकती। इससे मैं आपसे कहने आई। मगर आपने मुझे कपटिन बताया और कुबडी आदि कह कर मेरी भर्त्सना की। मैं कुबडी हू, इसमे मेरा क्या अपराघ है? यह तो मेरे कर्म का फल है। आगे के लिए मैं बुरा काम करू तो मेरा दोष हो सकता है। आपने भरत की शपथ न दी होती तो मैं एक शब्द न कहती। आप राम और भरत को समान समझती हैं पर वे दिन चले गये जब दोनो समान थे। अब राम, वह राम नही रहे। अब वे जवान हो गये हैं। अब आप पर उनका वह प्रेम नहीं रहा है। आप इस भ्रम मे है कि राजा आपको प्रेम करते हैं। अगर वे आपको चाहते होते तो राम को राज्य देने से पहले आपसे पूछते क्यो नही? उन्होने आपकी सलाह ली है?

मूर्ख को बहकाने का यह एक सरल उपाय है कि अमुक काम के लिये तुमसे क्यो नही पूछा गया। मूर्ख मनुष्य सोचता है – अमुक काम भले ही अच्छा हो मगर मुझसे पूछे बिना कैसे हो सकता है? यह सोचकर वह उस काम मे विघ्न डालने के लिये तैयार हो जाता है। बुद्धिमान् पुरुष ऐसा नही सोचते। वे काम के गुण–अवगुण को देखते हैं। अगर कोई काम अच्छा है फिर भले ही वह उनसे पूछ कर नही किया गया है तो भी बुद्धिमान् व्यक्ति उसमे विघ्न नही डालते किन्तु यथाशक्ति सहायता पहुचाते हैं। वे सोचते है – मुझसे नही पूछा तो भी क्या हर्ज हे? कार्य अच्छा है तो मुझे उसकी सराहना ही करनी चाहिये।

मथरा कहने लगी 'कोशल्या की नीति आपको मालूम नही हे। वह बडी ही धूर्ता है। उसकी धूर्तता का पता मै आज लगा कर आई हू। उसने धूर्तता करके राजा से स्वीकार करा लिया हे कि कल ही राम को राज्य दे दिया जाय। राजा उसके बहकावे मे आ गये है और कल राम को राज्य दे रहे है।

एक बात और है। सब रानिया कौशल्या के पेर छूने जाती हैं लेकिन मैने आपको इस अपमान से इस कारण बचाया है कि आपका और कोशल्या का पद बराबरी का हे। वह रानी हे तो क्या आप रानी नही है? आप किसी छोटे घर की नहीं है। आप बडे राजा की राजकुमारी हैं। कौशल्या के मन मे इस कारण भी आपके प्रति द्वेष है। इस द्वेष का बदला लेने के लिए उसने यह षड्यन्त्र रचा है। इस षड्यन्त्र से आपकी जड उखड गई है। अब आपके दिन पलट रहे है। दिन पलटने पर मित्र भी शत्रु बन जाते हें। सूर्य कमल को जीवन देता है मगर जड उखड जाने पर वही उसे सुखा डालता हे। कौशल्या आपकी जड उखाड कर आपको अपने आगे नतमस्तक करना चाहती है।

मथरा की बात सुनकर कैकेयी काप उठी। उसने सोचा – वास्तव मे ही यह मुसीबत का समय है। मथरा से उसने कहा – सखी, तेरा कहना सही मालूम होता है। आजकल रात्रि मे मुझे बुरे स्वप्न भी बहुत आते हैं। अब मालूम हुआ – कोशल्या मेरा अहित करना चाहती है। तू मेरा भला चाहने वाली हे। यह अच्छा हुआ कि तूने मुझे सावधान कर दिया।

केकेयी जिस कोशल्या को अब तक अपनी बडी बहिन के समान समझती थी उसे पापिन ओर राक्षिसी समझने लगी। जिस पति पर उसे अटल विश्वास था उसे कपटी समझने लगी। जिस राम को वह अपना ही पुत्र मानती थी ओर स्नेह करती थी, अब उसे अपना शत्रु समझने लगी। उसके लिये मानो सारी सृष्टि सहसा बदल गई। वास्तव मे दृष्टि बदलते ही सृष्टि बदल जाती हे – 'यथा दृष्टिस्तथा सृष्टि । यह सब परिवर्तन होते कुछ भी देर नहीं लगी। कुसगति के प्रभाव से इतना घोर परिवर्तन हो गया।

रानी कहने लगी – सखी मथरा! तूने खूब सचेत कर दिया मुझ मगर जिस आपत्ति का तू पता लगाकर आई हे उससे छुटकारा पान का क्या उपाय हे?

मथरा मन ही मन प्रसन्न हुई। उसने प्रकट म कहा – उपाय न मालूम होता तो में इसकी खबर ही क्यो देती? मगर आप मेरी बात माना ता आपत्ति टल सकती है अगर किसी के फुसलाने मे आ गई ता फिर मर किय कुछ न होगा। फिर आप जान, आपका काम जान।

रानी कहने लगी – तू मरी हितचिन्तिका हे मे तरी न मानूगी ता किसकी मानूगी? अगर मं अपन पिता की पुत्री हू ता वही करूगी जा तू कहेगी।

मथरा ने देख लिया कि रानी अब पूरी तरह मेरी मुट्ठी मे है। तब उसने कहा – महारानी! क्या वह वरदान वाली बात भूल गई हो? वह वरदान अब काम आ सकता है। राजा चले जायेगे तो फिर वरदान किस काम आयेगा?

कोई यह न सोचे कि भरत की माता जैसी समझदार रानी भी जब मथरा जैसी धूर्त दासी के कपट–जाल मे फस गई तो औरो की क्या बात है? हम भी किसी के कपट–जाल मे फस सकते हैं। ऐसा सोचने का कोई कारण नही है। एक मत्र ऐसा है जिसे याद रखने पर कोई धोखा नही खा सकता। कैकेयी भले ही ठगी गई पर इस मत्र का स्मरण रखने वाला कदापि नहीं ठगा सकता। यह कोई नियम नही कि जहा हाथी गिरे, वहा सभी गिरते है या सब को गिरना ही चाहिये। पुल पर जाते समय बडे–बडे तो गिर पडते है, लेकिन चीटिया कतार बाध कर चलती है तो वे नही गिरती। आपको कोई कितना ही भरमावे अगर आप श्रेय और प्रेय का विवेक रखेगे तो आप धोखे मे नही आएगे। जगत् की धूर्तता से बचने के लिये श्रेय–प्रेय का विवेक ही महामत्र है।

प्रेय वह है जो तत्काल अच्छा लगता है, मगर परिणाम जिसका भयकर होता है। श्रेय इससे विपरीत है। वह तत्काल चाहे अच्छा न लगे मगर उसका परिणाम कल्याणकारी होता है। श्रेय बात अगर शत्रु भी कहे तो ग्राह्य होनी चाहिये।

कैकेयी अगर श्रेय–प्रेय का भेद जानती होती तो एक क्या, सौ मन्थराए भी उसे नही बहका सकती थी। लेकिन कहावत है – 'लोभी के होते धुतारे भूखो नही मरते। इस कहावत के अनुसार कैकेयी लोभ मे पडी तो मथरा की बन आई।

आजकल व्यापार के नाम पर सट्टे का बाजार गरम है। लोग तेजी–मदी के लोभ मे पडे हैं। आपको अपने आधीन रखने के लिये कई– एक साधु भी तेजी–मदी बताने लगे है। इस प्रकार लोग स्वार्थ मे पड कर यह नही देखते कि श्रेय क्या हे और प्रेय क्या है? साधु भी श्रावको को अपने हाथ मे रखने की चिन्ता मे पड गये हे। किसी ने कहा है–

गुरु लोभी चेला लालची दोनो खेले दाव।
दोनो डूबे बापडे चढ पत्थर की नाव।।

लोगो को प्रेय भला मालूम होता हे पर श्रेय–साधन मे ही सच्चा कल्याण है। रावण को अगर राम अच्छे लगे होते तो वह भी वहा दोडा आता और वह सीता को देख सकता था। मगर उसने तो सिर्फ प्रेय देखा ओर श्रेय

की तरफ ध्यान नही दिया। इसी कारण लोग उसे राक्षस कहने लगे। अगर उसने प्रेय के साथ श्रेय भी देखा होता तो वह राक्षस नहीं कहलाता ओर उसका काम भी हो जाता। अगर आप प्रेय का त्याग नही कर सकते तो श्रेय को भी मत भूलो।

कैकेयी चित्त मे यो आई, कि वर भूपति से मैं पाई।
भरत को राजपद बिठाऊ, राजमाता पद मै पाऊ।

मथरा ने रानी से कहा – आपकी जड उखड गई तो फिर कुछ नही बनेगा। खेती के सूख जाने के बाद वर्षा होने से कोई लाभ नही। अभी मोका हे! वरदान का उपयोग करना हो तो जल्दी करो। राजा से भरत के लिए राज्य माग लो। भरत राजा होगे और आप राजमाता होगी तो सब लोग आपकी आज्ञा मानेगे, अन्यथा कोई टके सेर भी नही पूछेगा। यही अन्तिम रात्रि हे जिसमे आपके भाग्य का निर्णय होना है। सवेरा होते ही वाजी हाथ से जाती रहेगी।

रानी ने मथरा से कहा – तूने ठीक मोके पर चेता दिया। तू मेरी सखी हे। में तेरा उपकार कभी नही भूलूगी। अब तू मेरी दासी नही सखी होगी।

मथरा वोली – नही महारानी में सखी नही वनना चाहती। आपकी दासी रहने मे ही मुझे सुख हे। में अपने लिये कुछ नही चाहती। मेरा एक ही उद्देश्य अपनी स्वामिनी की भलाई सोचना ओर सेवा करना हे।

रानी प्रेय पर लुभाई यह बात आप भी पसन्द नहीं करेगे। आप रानी के इस कार्य को बुरा मानेगे। ओर ऐसा मानना स्वाभाविक भी हे। मगर रानी के कार्य को बुरा समझने से आपका हित नही होगा। आपको अपनी ओर देखना होगा। रानी की जिस बुराई को आप पसन्द नहीं करते वह बुराई अगर आपमे मोजूद हे तो उसे भी आप बुरा समझे ओर त्याग दे। ऐसा करन स ही आपका कल्याण होगा। आपके सामने श्रेय का विघात करन वाला प्रेग आवे तो आप उसे त्याग द ओर श्रेय को ही स्वीकार करे तभी समझना चाहिग कि ककयी क उदाहरण से आपन शिक्षा ग्रहण की हे। या ता श्मशान का वराग्य सभी को आता ही ह पर भाग्यशाली वह हे जिसक अन्त करण म वह वराग्य टिका रहता हे। आप अपनी आत्मा क कल्याण की चिन्ता कीजिग। आत्मा आर शरीर का भिन्न–भिन्न समझ कर श्रेय आर प्रेय पर ध्यान दीजिग तो अवश्य आपका कल्याण हागा।

श्रय ओर प्रय सदा आपके सामन आत रहग। में कितन ही व्याख्या द्, श्रय आर प्रय की चर्चा समाप्त नही हा सकती। या ता वात वहुत छाटी

है और स्मरण रखी जा सकती है। अगर मोह की प्रबलता न होने दी तो उसके आचरण मे भी कोई कठिनाई नही होगी।

धर्म–पुण्य आदि की बाते श्रेय है और तत्काल प्रिय लगने वाली किन्तु परिणाम मे अपिय प्रतीत होने वाली बाते प्रेय हैं। इन दोनो की मूर्ति आमने–सामने सदा आती रहती है। कल्याण–अकल्याण की बात न केवल बाहर ही वरन् अन्त करण मे भी सदैव उत्पन्न होती रहती है। मगर श्रेय को अपनाने और प्रेय का त्याग करने की क्षमता प्राप्त करने मे ही बलिहारी है। इसी मे मानवीय विवेक की सार्थकता है।

कहा जा सकता है – पेय छूटता नही है। लम्बे समय के सस्कार आत्मा को प्रेय की ओर ही आकर्षित करते हैं। मगर यह कथन दुर्बलता का द्योतक है। आत्मा मे अनन्त शक्ति है। आत्मा अपने किसी भी सस्कार पर विजय प्राप्त कर सकती है। अगर सस्कार अजेय होते तो महात्माओ का उपदेश देना निरर्थक ही होता। भूतकाल मे अनेक आत्माओ ने अपने कुसस्कारो पर पूर्ण विजय प्राप्त की है। उन्होने दुर्बल आत्माओ का पथ–प्रदर्शन किया है। उस पथ पर चलकर हम भी आत्मविजेता बन सकते हैं। आत्मविजय कोई असम्भव कल्पना नही है। वह एक सुसाध्य साधन है। इस साधना के साधन शास्त्रो मे वर्णित किये गये हैं। उनमे से एक साधन यह है–

सुमर रे सुमर रे सुमर रे श्रेयास जिनन्द सुमररे।

अगर प्रेय मे यह शक्ति है कि वह आत्मा मे चिपट कर बैठ जाता है तो परमात्मा के नाम मे भी वह शक्ति है कि वह उसे निकाल कर फेक देता है। जब आपके अन्त करण मे कुमति उत्पन्न हो उस समय आप परमात्मा को स्मरण करो ओर परमात्मा को आगे कर दो। फिर देखो किस प्रकार आपकी रक्षा होती है और आपको केसा आनन्द आता है?

भरत की माता कैकेयी के सामने श्रेय और प्रेय दोनो थे। श्रेय यह था कि राम के राजा होने मे और दशरथ तथा भरत के दीक्षा लेने मे वह विघ्न न डालती। प्रेय यह था कि भरत राजा हो और राम को राज्य न दिया जाय। कौशल्या राजमाता न बनने पावे में राजमाता की पदवी प्राप्त करू। ये दोनो विकल्प उसके सामने खडे थे। उसे इन दोनो मे से किसे लेना चाहिये था और किसे छोडना चाहिये था? कैकेयी आपकी सम्मति लेती तो आप उसे क्या करते?

आप कहेगे – 'हम यही सलाह देते हैं कि राम को राजा बनने दो और दशरथ के साथ भरत को दीक्षा लेने दो।

मगर यह बात पराये घर की है इसीलिये आप सरलता से ऐसी सलाह दे सकते हैं। घर मे ऐसी घटना घटने पर भी आपकी यह न्याय–बुद्धि कायम रहनी चाहिये। आप कैकेयी को जो सलाह दे सकते हैं वही सलाह अपने हृदय को दोगे तो आपका कल्याण होगा। आप जिस बात की प्रशसा करते है, जिस बात को हृदय से अच्छा समझते हैं उसे अपनाने मे पीछे क्यो रह जाते हैं?

कल्पना कीजिये, कोई सेठ अच्छी–अच्छी भोज्य वस्तुए थाल मे लेकर भोजन करने बैठा है। दूसरा आदमी वहा आया और तरह–तरह से उन वस्तुओ की प्रशसा करने लगा। उसे प्रशसा करते देखकर सेठजी ने कहा – मित्र! आओ दो कौर तुम भी ले लो। वह प्रशसक पुरुष भोजन का आमत्रण पाकर भी भोजन नही करता। वह कहता है – नहीं मैं खाऊगा नहीं। अब ऐसे आदमी को क्या कहा जाए? यही कहा जा सकता है कि जिन वस्तुओ की तू प्रशसा करता है वे तेरे सामने है। तू चाहे तो उन्हे ग्रहण कर सकता हे। फिर भी अगर ग्रहण नही करता तो तेरी तकदीर फूटी है!

आप भोजन की बात मे शायद ऐसी भूल न करे, मगर जहा स्वार्थ–त्याग का प्रश्न उपस्थित होता है वहा भूल जाते हैं। जब केकेयी की कथा कही जाती हे तब आपकी न्यायबुद्धि एकदम जाग उठती है और आप केकेयी को सलाह देने के लिये तेयार हो जाते हैं। लेकिन आज न राम हे न केकेयी हे। कदाचित् वे होते तो भी आपकी सलाह कोन मानता? इसलिये उनकी वात छोडो। अपनी तरफ देखो। महापुरुषो ने जो पकवान खाए हे उन्ही पकवानो का थाल आपके सामने मोजूद हे। अगर आप पूरी तरह नही खा सकते तो दो कोर ही लो। इतने पर भी आप तेयार नही तो यह आपका सोभाग्य नही कहा जा सकता।

भरत–से सुत को निस्सदेह रखू मैं कर उपाय निज गेह।
पवन भी मानो उसी प्रकार शून्य मे करने लगा पुकार
गूजते थे रानी के कान तीर–सी लगती थी वह तान।

रानी की भावना पलट गई। वह सोचने लगी कि मुझ यह साखी न मिलती तो मेरी क्या गति होती? मे आपत्ति के वहाव म वह जाती ओर मरी पुकार पर कोई कान न देता।

अव केकेयी ने निश्चय किया कि मैं भरत के तिये राज्य मागूगी। मरा भरत राजा हागा आर म राजमाता वनूगी। कोशल्या मुझसे वेर रग्व कर

जो–कुछ करना चाहती है वह मै नही होने दूगी। वह मुझे अपने अधीन रखना चाहती है मगर मै उसे अपने अधीन रखूगी। मै राजा से वर माग कर उसका षडयत्र विफल कर दूगी।

इस प्रकार सकल्प करके रानी ने बढिया वस्त्र और आभूषण उतार दिये। फटे–पुराने कपडे पहन कर वह कोपभवन मे जाकर पड रही।

अयोध्या उत्साह–आनन्द मे मग्न है। इधर दशरथ राम के राज्याभिषेक की तैयारी करवा रहे है उधर कैकेयी कोपभवन की मेहमान बन गई है। राजभवन मे क्या हो रहा है दशरथ को कुछ पता नही। इसलिए ज्ञानी कहते हैं – किसी बात पर गर्व मत करो। तुम जिस बात के लिए गर्व कर रहे हो, उसके विरुद्ध कहा क्या हो रहा है, इसका तुम्हे क्या पता है?

राम और सीता का विचार–विनिमय

यहा मुझे एक बात और कहना है। यह बात बार–बार मेरे चित्त मे उद्भूत होती थी लेकिन किसी कवि की कल्पना मे नही मिलती थी। मै सोचता था – भारत के अनेक कवियो ने राम का चरित्र लिखकर अपनी काव्यकला – कुशलता प्रकट की है और अपनी कविता को अमर बनाया है। लेकिन राम के अलौकिक चरित्र पर अपूर्वक प्रकाश डालने वाली एक बात किसी भी कवि की कविता मे क्यो नही मिल रही है? सच्ची बात किसी कवि की कल्पना मे होनी तो चाहिये। आखिर यह बात नही। वह बात यह है–

इस समय क्या करते थे राम हृदय के साथ हृदय–सग्राम।
उच्च हिमगिरि से भी वे धीर सिन्धु सम थे सम्प्रति गम्भीर।
उपस्थित वह अपार अधिकार, दीख पडता था उनको भार।
हाय वह पितृ वत्सलता भोग, और निज बाल्यभाव का योग।
विगत–सा समझ एक ही सग शिथिल–से थे उनके सब अग।
कहा वैदेही ने – हे नाथ! अभी तक चारो भाई साथ।
भोगते थे सब सम सुख भोग व्यवस्था मेट रही वह योग।

जिस समय दशरथ राज्याभिषेक के मगल कार्य की तैयारी कर रहे थे पुरजन आनन्द मना रहे थे और उत्सुकता के साथ सूर्योदय की प्रतीक्षा कर रहे थे कैकेयी कोपभवन मे पडी थी। उसी समय राम क्या सोच रहे थे? राम को जब राज्याभिषेक की खबर लगी तब से ही वह गम्भीर विचार मे डूब गये थे।

हमे राम के चरित्र पर ही ध्यान देना है। राम के चरित्र की पूर्णता प्रकट करने के लिये ही कैकयी आदि के चरित्रो का उल्लेख किया जाता है।

मगर और सब चरित्र प्रासगिक हैं। असली उद्देश्य तो राम का चरित्र प्रकट करना ही है।

साधारण मनुष्य को दो पैसे के लाभ की सभावना देखकर प्रसन्नता होती है। फिर राम को तो स्वर्ग जैसा राज्य मिलने वाला है। उन्हे कितना हर्ष होना चाहिये? मगर उनका चरित्र और ही कुछ शिक्षा देता है। कवि का कथन है कि राम उस समय अपने हृदय के साथ स्वय ही सग्राम कर रहे थे। वे सोचते थे – क्या मै राज्य करने के निमित्त जन्मा हू? मुझे अधर्म मिटा कर जगत् मे धर्म की स्थापना करनी है, श्रेय की महिमा प्रकट करके प्रेय की त्याग–भावना रखना सिखलाना है। फिर क्या मे स्वय इस प्रेय के चक्कर मे पड जाऊ? अगर इस फदे मे फसा तो श्रेय से वचित रह जाना पडेगा। यह राज्य मेरे श्रेय का विघातक होगा। पिताजी को मुझे ही राज्य देने का विचार क्यो आया? मेरे तीन भाई और भी हैं।

राम हिमालय की तरह उच्च थे। वे सोचने लगे – राज्य लेने पर में ऊचा भले ही ओर हो जाऊ पर मुझ मे गभीरता नही रहेगी तथा राज्य त्याग देने पर वह उच्चता गभीरता मे परिणत हो जायेगी। अपनी उच्चता को राज्य लेकर अधिक उच्च नही बनाऊगा वरन् राज्य को त्याग कर गभीर बनाऊगा। यह राज्याधिकार वास्तव मे मेरे लिये भार हे।

राम को राज्य भी भार मालूम होता हे। आप किसे भार समझत हे? आप वस्तु की असलियत को नही जानते। इसी कारण भार डालने की वस्तु को भार न डालने वाली ओर भार न डालने वाली को भार डालने वाली वस्तु समझते हें। आपको जो वस्तु प्रिय हे वह कितनी ही भारी हो आप उरा हल्की ही समझते हें। इस बात को एक दृष्टान्त से समझना ठीक हागा।

एक सेठ के लडके का विवाह दूसरे सेठ के यहा हुआ था। उराकी स्त्री वहुत ओछे स्वभाव की थी। एक दिन सेठ का लडका भोजन कर रहा था ओर उसकी माता तथा पत्नी सामने वेठी थी। सास न वहू रा कहा – वहू, जरा शिला तो उठा लाओ मसाला पीसना हे। वहू तडक कर वोली – में क्या पत्थर उठाने यहा आई हू? मन अपन वाप क घर कभी पत्थर नही उठाये। सास गम्भीर ओर समझदार थी। उसन वहू स सिर्फ इतना कहा – मुझ से भूल हुई कि मेंन तुम्हे यह काम करने को कह दिया। म स्वय उठा लूगी। यह कह कर उसने स्वय शिला उठा ली आर मसाला पीरा लिया।

लडका यह सव देख–सुन रहा था। पत्नी क इस दुर्व्यवहार स ... हृदय का वडी चोट लगी। वह साचन लगा – 'मरी माता क प्रति इतना।

ऐसा व्यवहार है। लडका कुलीन था। उस समय तो वह चुप रह गया पर उसने निश्चय कर लिया कि किसी तरकीब से इसकी अक्ल ठिकाने लानी होगी। ऐसा निश्चय करके वह चला गया।

लडका सराफी की दुकान करता था। एक दिन उसकी दुकान पर एक हार बिकने आया। उसने वह हार खरीद लिया और सुनार को बुलाकर कहा – इस हार मे पान की जगह लोहे की ढाई–सेरी सोने मे मढकर जड दो। ऊपर से कुछ जवार जड दो जिससे भीतर लोहा होने का किसी को खयाल भी न आवे। सुनार ने ऐसा ही किया। लडका वह हार अपने घर ले गया। उसने अपनी पत्नी से कहा – आज एक बहुत बढिया हार बिकने आया था। मैने उसे खरीद लिया है। बात इतनी ही है कि वह भारी बहुत है और तुम्हारा शरीर बहुत नाजुक है, वरना तुम्हारे लायक था। तुम उसका बोझ नही सभाल सकोगी।

पत्नी के दिल मे गुदगदी पैदा हो गई। वह बोली – दिखाओ तो सही कितना भारी है वह हार। मैंने अपने पिता के घर बहुत भारी–भारी गहने पहने है।

पति ने कहा – हा देख लो। मगर तुमसे वह उठेगा नही।

पत्नी ने हार देखा तो खुश हो गई। कहने लगी–मैंने अपने पिताजी के घर तो इससे भी भारी हार पहने है। उनके सामने यह क्या चीज है?

पति बोला – हा पहने होगे। वह बडा घर है। अपनी शक्ति देख लो। पहन सको तो पहन लो।

पत्नी – पहन तो मै लूगी। इसकी कीमत क्या है?

पति – कीमत की चिन्ता मत करो। वह तो मैंने चुका दी है।

स्त्री ने हार पहन लिया। हार पहनने की खुशी मे वह फूली नही समाई। घर का काम दौड–दौड कर करने लगी। हार बार–बार उसकी छाती से टकराता और छाती की हडिडया चूर–चूर होने को हो गई फिर भी वह हार का लोभ नही छोड सकी। हार पहन कर उसकी प्रसन्नता बहुत बढ गई।

लडके ने सोचा – हार के लोभ मे यह अन्धी हो गई है। इसे हार का भार मालूम नही होता। अगर ढाईसेरी की चोटे खाते–खाते छाती का खून जम गया तो नया बवाल उठ खडा होगा। दवाई–दारू की झझट तो मुझे ही करनी पडेगी।

एक रात जब स्त्री सो रही थी उसके पति ने किसी औजार से ढाई–सेरी का सोना हटा दिया। ढाईसेरी आधी नजर आने लगी। सुबह स्त्री

ने उठ कर देखा – अरे! हार तो लोहे का है। लोहा पहिना कर मुझे बोझो क्या मारा? बेर भजाना ही था तो ओर तरह भजा लेते।

सेठ के लडके ने कहा – में तुम्हारी सुकुमारता की परीक्षा करना चाहता था। एक दिन मा ने शिला लाने को कहा था, तव तुम इतनी सुकुमार थी कि तुमसे शिला नही उठी। फिर तुम शिला से भी भारी वोझ गले मे लटकाये रही ओर कष्ट का अनुभव नहीं किया। आज जब तुमने देखा कि यह सोना नही लोहा है तो फिर तुम्हे वोझ लगने लगा। बोझ क्या लोहे मे ही होता हे, सोने मे नही? तुम्हे सीख देने के लिये ही मॅने यह उपाय किया था। तुम मेरी माता को देव–गुरु की तरह पूजनीय समझना। में माता से द्रोह करके स्त्री का गुलाम होकर रहने वाले कपूतो मे से नहीं हू।

अब आप अपने विषय मे सोचिये। आप पाप का बडे से बडा बोझ उठा लेते हैं मगर धर्म का थोडा–सा भार भी नहीं उठा सकते। सोने का बोझ प्रसन्नतापूर्वक सह सकते हें पर लोहे का बोझ नहीं सहा जाता। मगर ज्ञानी की दृष्टि मे सोने का बोझ ओर लोहे का बोझ समान हे। आज गरीबो को चूस कर आनन्द करने वालो की कमी नही है। पर राम कहते हें – पिताजी मेरे ऊपर राज्य का भार क्यो डालते हे?

राम सोचते हें – पिताजी ससार की रीति के अनुसार वत्सलभाव से मुझे भोगो मे डालते हें लेकिन क्या वास्तव मे यह राज्यभोग अच्छा हे? अब तक हम चारो भाई साथ–साथ रहते थे साथ–साथ खाते–पीते थे। हम मे आपस मे भाई–भाई का सम्बन्ध था। मगर राजा होने पर स्वामी–सेवक का सम्बन्ध हो जायेगा। में स्वामी और वे सेवक समझे जायेगे। क्या भाई–भाई के सम्बन्ध की अपेक्षा स्वामी–सेवक का सम्बन्ध अच्छा होगा? हम वचपन से भाई रहे ओर अब स्वामी–सेवक होगे।

राम इस प्रकार विचार–तरगो मे बह रहे थे। जानकी पास ही वेठी हुई थी। राम के हृदय मे विचारो का जो मथन हो रहा था जानकी पर भी उसने असर किया।

एक के मन की वात दूसरे के मन मे जानने अर्थात दूसरे को मालूम हो जाने की विद्या यूरोप मे आजकल भी सीखी जाती हे। एक समाचार पत्र मे पढा था कि दो महिलाओ ने जो वहिने थी, इस विद्या का अभ्यास किया था। वे आपस मे एक–दूसरे के मन की वात जान भी लेती थी। उन्होंने इस विद्या की परीक्षा भी की थी। दोनो बहिने कुछ कोस की दूरी पर वेठ गईं। ` ` के साथ कुछ प्रतिष्ठित विद्वान भी बेठ गये। पास बेठे विद्वानो न एक

कागज पर कुछ लिखकर एक महिला को दिया और उसे दूसरी बहिन को कह देने के लिये कहा। उसने इस प्रकार चिन्तन किया कि उसके मन की बात दूसरी बहिन के मन मे पहुच गई। उसने अपने पास वालो से कहा – लिखिये मेरी बहिन अमुक–अमुक कहती है।

मिलान करने पर बात सही निकली। मगर यूरोप के लोग जिस विद्या को आज सीखते हैं वे विद्याए भारतवर्ष मे बहुत पहले से विद्यमान हैं। भारतवर्ष ने आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा आश्चर्यजनक विद्याए प्राप्त की थी। परन्तु अब आध्यात्मिकता के साथ ही साथ उन विद्याओ का भी लोप होता जा रहा है, यहा तक कि अधिकाश विद्याए लुप्त हो चुकी हैं।

पति–पत्नी का मन अगर निष्कपट हो तो एक को दूसरे की बात जान लेना कठिन नही है। सीता ने राम के मन की बात जान ली। वह राम से कहने लगी – नाथ आपको राज्य मिल रहा है। इस विषय मे गहराई के साथ विचार करने की आवश्यकता है। कम से कम देवरो के सबध मे तो विचार करना ही चाहिये। अब तक आप चारो भाई साथ रहते और खाते–पीते थे बराबरी से रहते थे लेकिन अब जो हो रहा है, उससे बराबरी मिट जायगी। यह भ्रातृभाव मे फर्क डालने वाली व्यवस्था है। इसलिये मैं कहती हू कि आपको मिलने वाला राज्य कही सयोग से वियोग मे तो नही डाल देगा?

सीता की बात सुनकर राम बोले – वाह सीता! मेरे दिल मे जो बात आ रही थी वही तुमने भी कही है। मैं भी इसी समस्या पर विचार कर रहा हू।

जश्न–सा करके कौशलराज राज देते हैं तुमको आज।
तुम्हे रुचता है वह अधिकार राज्य है प्रिये भोग या भार।

सीता कहती हे – मेरे श्वसुर आपको राज्य क्या दे रहे हैं मानो भाइयो को आपस मे अलग–अलग कर रहे हैं जुदाई दे रहे हैं। क्या आपको ऐसा रुचिकर हे? आप उसे चाहते हैं? आप राज्य को प्रिय वस्तु समझते हैं या भार मानते है?

सीता की भाति आज की बहिने भी क्या देवरो के विषय मे ऐसा ही सोचती है? राज्य तो बडी चीज है क्या तुच्छ वस्तुओ को लेकर ही देवरानी जेठानी मे महाभारत नही मच जाता? भाई–भाई के बीच कलह की बेल नही बो देती? क्या जमाना था वह जब सीता इस देश मे उत्पन्न हुई थी? सीता

जैसी विचारशीला सती के प्रताप से यह देश धन्य हो गया है। आज क्या स्थिति है? किसी कवि ने कहा हे –

एक उदर का नीपज्या, जामण जाया वीर।
औरत के पाले पडिया, नहि तरकारी मे सीर।।

बहिनो! अगर धर्म को जानती हो तो इस बात का विचार रखो कि भाई–भाई मे भेद न पडने पावे।

सीता ने राज्यप्राप्ति के समय भी इस बात का विचार किया था। वह राज्य को भार मान रही है। मगर आज क्या माई ओर भौजाई जरा–जरा–सी बात के लिये छल–कपट करने से चूकते हैं?

रामचन्द्र सीता से कहने लगे – प्रिये! तुम वास्तव मे असाधारण स्त्री हो। तुम बडे भाग्य से मुझे मिली हो। स्त्रियो पर साधारणतया यह दोषारोपण किया जाता है कि वे पुरुष को गिरा देती हे पुरुष को ऊर्ध्वगामी नहीं बनने देती। उसके पख काट डालती हैं ओर यहा तक कि पुरुष को नरक मे ले जाती हैं। मगर जानकी तुम अपवाद हो। पुरुष की प्रगति मे बाधा डालने वाली स्त्रिया और कोई होगी तुम तो मेरी प्रगति ही हो। तुम मेरी सच्ची सहायिका हो। जो काम मुझसे अकेले नही हो सकता वह तुम्हारी सहायता से करूगा।

जानकी! मैं स्वय राज्य को भार मानता हू। वह वास्तव मे भार ही है। मैं राज्य पाना दड पाना समझता हू। अगर वह सौभाग्य की बात समझी जाय तो सिर्फ इसलिये कि राज्य के द्वारा प्रजा की सेवा करने का अवसर मिलता है। जो राजा न होकर भी प्रजा की सेवा कर सकता हे, उसे राज्य की आवश्यकता ही क्या हे? सभव है, मेरे सिर पर यह भार अभी न आवे कदाचित् आया भी तो में अपने भाइयो के साथ लेश–मात्र भी भेदभाव नही करूगा। हम जिस प्रकार रहे, उसी प्रकार रहेगे। अवध का राज्य क्या इन्द्र का पद भी मुझे-अपने भाइयो से अलहदा नही कर सकता।

कैकेयी की वर–याचना

राम ओर सीता मिलकर यह सोच रहे हें। उधर दशरथ विचार कर रहे हें कि कब सवेरा हो और कब में राम को राज्य सॉप कर दीक्षा ग्रहण करू। प्रजा हर्ष मे मतवाली होकर राम का राज्याभिषेक देखने को उत्सुक हो रही हे। उधर कैकेयी कोपभवन मे प्रवेश कर चुकी हे।

वास्तव मे ससार का चरित्र बडा ही गहन हे। राम को राज्य देना नीति के अनुकूल हे, यह कोन नही जानता? ज्योतिपियो ने राजतिलक का

शुभ मुहूर्त निकाला होगा। इस प्रकार राम के राजतिलक मे विघ्न की सभावना नही थी। मगर इस विषयी और दारुण ससार मे क्या घटित नही होता। एक कवि कहता है –

क्वचिद् वीणानाद क्वचिदपि च हा हेति रुदितम्,
क्वचिद् रम्या रामा क्वचिदपि च जरा जर्जरतनु ।
क्वचिद् विद्वद्गोष्ठी क्वचिदपि सुरामत्त कलह,
न जाने ससार किममृतमय कि विषमय ।।

ससार की विचित्रता पर विचार करता–करता कवि ऊब जाता है तब अन्त मे कहता है – इस ससार को अमृतमय कहे या विषमय? दोनो मे से कुछ भी कहना कठिन है। वास्तव मे ससार का रूप अनिर्वचनीय है। कही वीणा–नाद के साथ नाच–गान और राग–रग हो रहा है तो कही हाहाकार की करुण ध्वनि कर्णागोचर होती है। कही इन्द्राणी–सी सर्वांगसुन्दरी स्त्री है तो कही जरा की साक्षात् मूर्ति बुढिया खो–खो कर रही है। एक जगह विद्वान् बैठे हुए तत्त्वचर्चा का आनन्द उठा रहे है, तो दूसरी जगह शराब के नशे मे चूर शराबी आपस मे लड–भिड रहे हैं। इस प्रकार ससार मे एक ही साथ परस्पर विरोधी बाते दिखाई देती हैं। ऐसी स्थिति मे ससार को अमृतमय कहे या विषमय कहे?

सच तो यह है कि ससार मे सदा से अमृत भी है और विष भी है। अच्छाई और बुराई दिन और रात धर्म और पाप हमेशा यहा रहे हैं और रहेगे। पर इस विचित्रता को देख कर हिम्मत नही हारना चाहिये। ससार मे दोनो है पर आपके सामने अमृत आने पर आप क्या यह कह कर रोने लगेगे कि हाय! ससार मे तो जहर भी है। यह अमृत मेरे सामने क्यो आया है! अथवा आप अमृत पाकर उसे पी जायेगे? बुद्धिमान् पुरुष तो यही सोचेगा कि ससार मे विष भी है मगर मेरे सोभाग्य से मेरे सामने अमृत आया है विष नही आया। विष आ जाना कोई आश्चर्य की बात नही थी। पर मुझे अमृत की प्राप्ति हुई है तो मुझे इसका उपयोग ओर उपभोग कर लेना चाहिये।

कई लोग जिस काम को अच्छा मानते हैं उसे करने की सुविधा होने पर भी नही करते ओर भाग्य का बहाना करने लगते है। लेकिन अगर कही उत्तम भोजन हो और आपके घर चने की रोटिया हो तो उस समय आप अपना भाग्य देखकर रुक जाएगे या उस भोजन का निमत्रण पाकर जीमने चले जाएगे? उस समय आप यही सोचेगे कि मेरे भाग्य मे अगर उत्तम भोजन न होता तो मुझे निमत्रण ही क्यो मिलता? इस प्रकार जीमने के लिये अपना

दुर्भाग्य समझ कर जो नही रुकता और सोभाग्य की कल्पना करके जीमने चला जाता हे, वह दूसरे श्रेष्ठ कर्तव्य को करने के लिये अपने दुर्भाग्य का बहाना करके क्यो रुक जाता है? इस प्रकार का विचार प्राय ऐसे कामो के लिये ही किया जाता है जिनमे स्वार्थ की आवश्यकता होती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि ससार बडा विषम है। इसमे इतनी विविधता और विचित्रता है कि उस पर विचार करते–करते मस्तक थक जाता है और उस विचित्रता का कही अन्त नहीं दिखाई देता। एक ओर राम को राज्य देने की तैयारी हो रही है तो दूसरी ओर राम को राज्य न मिलने देने की तैयारी हो रही है। कैकेयी सोचती है – भरत को राज्य मिलना अमृत है राम को राज्य मिलना विष है। प्रजाजन राम के राज्य मे अमृत की कल्पना करते है। इस प्रकार एक के लिये जो अमृत हे, वही दूसरे के लिये विष है। अब ससार को अमृतमय कहा जाय या विषमय?

दशरथ ने सोचा – बाहर की तैयारी तो देख ली अब अन्दर जाकर रनवास की भी तैयारी देख आऊ। इस प्रकार विचार कर राजा पहले–पहल कैकेयी के महल की ओर चले। दशरथ वहा अमृत की आशा से गये थे। देखना चाहिये कि उन्हे क्या मिलता है?

दशरथ ने कैकेयी के महल मे पैर रखा ही था कि दासिया दौड कर उनके सामने आई। कैकेयी कही नजर न आई। दशरथ ने पूछा – रानी कहा है? दासियो ने घबराहट के साथ उत्तर दिया – महारानीजी कोप भवन मे हे। दशरथ को आश्चर्य हुआ। आज इस शुभ अवसर पर कोप कैसा? क्या यह मगल मुहूर्त कोपभवन मे बेठने का है?

रानी को कोपभवन मे जान कर राजा को चिन्ता हुई। तुलसीदास कहते है जिनके तेज–प्रताप से बडे–बडे शूरमा कापते हें वही राजा दशरथ केकेयी का कोप सुनकर काप उठे। यह काम का ही प्रताप है।

आखिर दशरथ रानी के पास पहुचे। रानी की स्थिति देखकर सन्न रह गये। रानी ने अच्छे वस्त्र ओर आभूषण उतार फेके हे। वह कुमति के वश होकर नागिन की तरह फुफकार रही हे। राजा ने सोचा – यह हाल तो आज तक कभी नही देखा। क्या आज मेरे घर मे कलिकाल आ गया हे? क्या मेरे घर मे सर्वप्रथम कुसमय का पदार्पण हुआ हे?

दशरथ ने विचार किया – क्रोध से क्रोध की शाति नही हो सकती। अतएव कुपिता रानी को शाति और प्रेम के साथ समझाना चाहिये। यह विचार

कर वह बोला – प्रिय! आज तुम यहा कैसे? आज क्या उदास होने का अवसर है? क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया है? ऐसा हो तो बतलाओ किसके बुरे दिन आये है? अगर यह बात नही है, और किसी को कुछ देने की इच्छा है तो आज दूना–चौगुना दो। मगर इस प्रकार रूठना बडे घर की रानियो के लिये योग्य नही। कहते हैं, बडे घर की बेटिया बडी होती हैं। वे बिगडी बात को सुधार लेती है। सो अगर कोई बात बिगड गई हो तो उसे सुधार लो। उठो! बताओ क्यो इस प्रकार उदास हो?

यह कहते हुए दशरथ ने हाथ पकड कर रानी को उठाने की चेष्टा की। मगर रानी ने झटका देकर अपना हाथ छुडा लिया। तब दशरथ ने कहा – मैं सरल हृदय का हू। मैं कपट नहीं जानता। मैं यह बात सदा स्मरण रखता हू कि युद्ध मे तुमने मेरी बहुत सहायता की थी। युद्ध मे जब मेरा सारथि मारा गया था और घोडे बे–काबू होकर भाग रहे थे, उस समय तुम्हीं ने घोडो की लगाम सभाली थी। तुम्ही ने सारथि का कार्य किया था और रथ की धुरी को अपनी साडी से मजबूत बाध कर मेरा रथ चलाया था। तुम्हारी इस सहायता से मैंने युद्ध मे विजय पाई थी। तभी से मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रीति रखता हू। लेकिन तुम इतनी उदास और नाराज क्यो हो? आज तो विशेष आनन्द का दिन है।

कैकेयी ने मन मे सोचा – राजा को उस युद्ध की बात स्मरण है तो मेरे वरदान की बात भी स्मरण होगी। यह सोच कर वह उठ बैठी। कहने लगी – आज विशेष आनन्द अनुभव करने का दिन कैसे है? दशरथ ने कहा –

भामिनि भयउ तोर मन भावा घर–घर उत्सव रग बधावा।
रामहि देउ काल्हि युवराजू, सजहु सुलोचनि! मगल साजू।

प्रिय! तुम यह भावना किया करती थी कि प्रिय पुत्र रामचन्द्र कब युवराज बनेगे! तुम राम को युवराज बनाने के लिये कई बार मुझसे कह चुकी हो। अब कल ही तुम्हारी कामना पूर्ण होने का मगलमय मुहूर्त है। इस कारण आज अयोध्या मे घर–घर आनन्द मनाया जा रहा है। तुम भी उठो और तैयारी करो। मुझसे भूल हुई कि मैंने यह शुभ सवाद पहले तुम्हारे पास नहीं भेजा। खैर उठो। वस्त्राभूषण पहनो और उत्सव का आनन्द लो।

दशरथ की निश्छल हृदय से निकली बात सुनकर कैकेयी सोचने लगी – मथरा ने ठीक ही कहा था। इस प्रकार रानी को मथरा की बात पर विश्वास हो रहा है पर अपने पति की बात पर नही। जब कुबुद्धि आती

है तो महापुरुष की बात पर विश्वास नही होता बुरे ओर क्षुद्र पुरुष की बात पर बहुत जल्दी विश्वास जम जाता है। कैकेयी के लिये राजा पूज्य है। उसका पति है। लेकिन रानी उसकी बात मानने को तैयार नहीं और मथरा जैसी साधारण दासी को अपनी 'गुराणी' मान रहीहै।

राम कल ही युवराज बन रहे हैं, यह सुनकर कैकेयी के मन मे घोर डाह पैदा हो गया। रानी अनेक बार राम को युवराज बनाने का प्रस्ताव रख चुकी। इससे पहले राम के प्रति उसका हृदय एकदम साफ था। अब वह इस युवराज पदवी का किस मुह से विरोध कर सकती हे? फिर भी दशरथ का कथन सुनते ही उसका हृदय जलने लगा।

कैकेयी ने कहा – नाथ! अभी आपने उस युद्ध का स्मरण किया है। मगर क्या आपको वरदान वाली बात भी याद है? आपने प्रसन्न होकर मुझे एक वरदान दिया था न? क्या उसे देने को तैयार हैं?

दशरथ – हा! वह तुम्हारी धरोहर मेरे पास सुरक्षित है। उसे मैं कैसे भूल सकता हू?

रघुकुल–रीति सदा चली आई प्राण जाई पर वचन न जाई।
नहि असत्य सम पातक पुजा गिरि सम होहि न कोटिक गुजा।।

रानी! तुम रघुकुल की कुलवधू हो। क्या तुम्हे इस कुल की यह मर्यादा नही मालूम कि प्राण जाय तो जाय मगर वचन नही जा सकता। ससार सत्य पर अवलम्बित है। जैसे करोडो गुजाफल मिलकर पहाड के बराबर नही हो सकते, उसी प्रकार दूसरे बहुत–से पापो का समूह मिलकर भी असत्य के बराबर नही हो सकता। अर्थात् असत्य बहुत बडा पाप है। क्या मैं सत्य को त्याग कर असत्य का आश्रय लूगा?

कैकेयी ने कहा – ठीक है तो मै अपना वरदान अब मागती हू।

कैकेयी के वरदान मागने से पहिले कवि कल्पना करता हे–

भूप मनोरथ सुभग वन सुख सुविहग समाज।
मिलहनि जनु छोडन चहति वचन भयकर बाज।।

अर्थात् राम को राज्य देने का राजा का मनोरथ एक सुन्दर बगीचा हे। उस बगीचे मे जो सुख हे अर्थात् अवध की प्रजा आदि के मन मे जो आनन्द हे वह आनन्द अच्छे पक्षियो के समान है। लेकिन केकेयी रूपी भीलनी सुख रूपी पक्षी समूह को अपना शिकार समझ कर उसका वध करने के लिये वचन रूपी बाज छोडना चाहती हे। अर्थात् कैकेयी ऐसी बात कहना चाहती है जिससे दशरथ के मनोरथ रूपी बाग के सुख रूपी पक्षी मारे जाने वाले ह।

सुख–पूर्वक बगीचे मे किलोल करने वाले पक्षियो को मारने वाली भीलनी को लोग बुरा कहते हैं और जिसके लिये भीलनी की उपमा दी गई है उस कैकेयी की निन्दा करते है। मगर उन्हे ऐसा करने से पहले अपनी ओर देख लेना चाहिये। जो लोग कैकेयी की निन्दा करते है, वे अपनी मौज के खातिर दूसरो को विपदा मे तो नही डालते?

दशरथ ने रानी से कहा – कहो रानी! क्या चाहती हो?

कैकेयी हाथ जोडकर कहने को उद्यत हुई। तब दशरथ ने कहा – इस समय हाथ जोडने की क्या आवश्यकता है? अपना ऋण लेने के समय हाथ जोडने की जरूरत नही है।

रानी–पति का विनय करना पत्नी का धर्म है ही। मुझे इस धर्म का पालन करना ही चाहिये।

राजा – ठीक है, जो मागना चाहो, माग लो।

रानी – मेरी माग यही है कि कल जो उत्सव होने वाला है वह भरत के लिये किया जाय और राम के बदले भरत को राज्य दिया जाय।

जगाद् नाथ! पुत्रात मम राज्य प्रदीयताम्।

अर्थात् नाथ! मेरे पुत्र भरत को राज्य दीजिये।

रग मे भग का कारण

जो कैकेयी कुछ समय पहले तक राम को अपना ही पुत्र समझती थी ओर जो राम को युवराज बना देने का कई बार प्रस्ताव रख चुकी थी उसी कैकेयी मे अचानक यह परिवर्तन क्यो हो गया? जिस परिवार मे सौतिया–डाह का बीज भी नही था उसी मे एकाएक डाह का यह विशाल वृक्ष कैसे खडा हो गया? राम को राज्य देने मे उनके किसी भाई का विरोध नही था। प्रजा हृदय से यही चाहती थी। ज्योतिषी ने अपनी समझ मे उत्तम से उत्तम मुहूर्त निकाला ही होगा। फिर सारा गुडगोबर केसे हो गया? रग मे भग होने का वास्तविक कारण क्या हुआ?

कैकेयी के चित्त मे राम के राज्य के विरुद्ध भावना क्यो उत्पन्न हुई? यह भावना और शक्ति कहा से आई? कहा जा सकता है कि मथरा के उकसाने से कैकेयी मे यह भावना उत्पन्न हुई थी। मगर यह समुचित समाधान नही है। इस समाधान के बाद भी प्रश्न बना रहता हे कि आखिर मथरा के मन मे यह भावना क्यो उत्पन्न हुई? राम ने मथरा का क्या बिगाडा

था? और भरत के राजा हो जाने से मन्थरा को क्या लाभ था? वह तो स्वय कहती है कि चाहे राम राजा हो, चाहे भरत राजा हो मैं दासी मिटकर रानी होने से रही।

इस विसगति की सगति बिठलाने के लिये कोई देवो द्वारा मथरा को ऐसी बुद्धि देने की बात कहते हैं। जैन रामायण मे स्पष्ट रूप से यही कहा गया है कि भरत की दीक्षा रोकने के इरादे से ही कैकेयी ने यह वर मागा था। उसे राम के प्रति तनिक भी द्वेष नही था ओर न कोशल्या से बदला लेने का ही उसका इरादा था। भरत पर राज्य का भार डाल कर उसे ससार मे बनाये रखने के विचार से ही कैकेयी ने ऐसा किया। तुलसी–रामायण मे कैकेयी के चरित्र का जो चित्रण किया गया है, उससे उसकी क्षुद्रता टपकती है, जबकि जैन रामायण के चित्र मे उसकी पुत्र–वत्सलता एव पुत्र–वियोग की कातरता ही प्रधान दिखलाई देती है। जैन रामायण के अनुसार कैकेयी वर मागते समय इतनी लज्जित होती है कि वह अपनी जीभ से याचना करने मे असमर्थ हो जाती है और नीचा मुख करके जमीन पर लिख देती है कि भरत को राज्य दीजिये।

इस प्रकार कैकेयी के दो चित्रो मे कुछ भिन्नता होने पर भी मूल बात एक–सी है और वह यह कि कैकेयी ने महाराज दशरथ से भरत के लिये राज्य माग लिया। इस माग के जो कारण ऊपर बतलाये गये हे उनके अतिरिक्त एक बात और मेरे ध्यान मे आती है। मै कहता हू कि राम से ही केकेयी मे यह भावना और शक्ति आई थी।

यह पहले कहा जा चुका है कि राम को राज्य रुचिकर नही था। जब उन्हे राज्याभिषेक का समाचार मिला तो वे उदास हो गये थे। उनके मित्र जब बधाई देने के लिये उनके पास दौडे आये तो उन्होने कहा – सम्पत्ति ओर विपति के समय इस प्रकार हर्ष या विषाद करना बुद्धिमानो को नहीं शोभता। यह तो मूर्खो का काम है। बुद्धिमान् वही हे तो प्रत्येक परिस्थिति मे समभाव धारण करता है। अगर आप सम्पत्ति मे हर्ष मानेगे तो विपत्ति मे विषाद भी आपको घेर लेगा। जो सम्पत्ति को सहज भाव से ग्रहण करता हे वह विपत्ति को भी सहज भाव से ग्रहण करने मे समर्थ हो सकता है। उसे विपत्ति की व्यथा छू नही सकती। ससार मे सम्पत्ति भी हे विपत्ति भी हे। इनमे हर्प–शोक का अनुभव करना सच्चे ज्ञान का फल नही है।

आगे राम फिर कहने लगे – आप नही जानते कि मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है? राज्य करना मेरे जीवन का साध्य नही हे। अधर्म का नाश करके धर्म की स्थापना करना ही मेरे जीवन की एकमात्र साधना हे।

इस समय अधर्म फैल रहा है और धर्म का नाश हो रहा है। मुझे अधर्म के स्थान पर धर्म की प्रतिष्ठा करना है। मनुष्य क्या करने के लिये जन्मे हैं और क्या कर रहे है?

राम के मित्रो ने कहा – आप राज्य को अपने उद्देश्य मे बाधक क्यो समझते हैं? राज्यसत्ता की सहायता से सहज ही सब सुधार किया जा सकता है। तब राम बोले – ससार के उत्थान का कार्य इस प्रकार नही होता। जिन प्राचीन महापुरुषो ने यह गुरुतर कार्य किया। उन्होने प्राप्त राज्य को भी पहले ठुकरा दिया था। तभी उन्हे अपने महान् उद्देश्य मे पूर्ण सफलता मिल सकी। राज्य करना कोई बडी बात नही है। यह तो भरत या लक्ष्मण भी कर सकते हैं। फिर मुझे इस बन्धन मे डालने की क्या आवश्यकता है?

राम की इस बलवती भावना ने ही अगर कैकेयी के हृदय पर असर किया हो तो क्या आश्चर्य? राम सोचते थे – अगर मै राज्य लेने से इनकार करता हू तो पिताजी की आज्ञा का उल्लघन होता है और राज्य स्वीकार करता हू तो बडा काम रुकता है। अगर कोई ऐसा मार्ग निकल आता कि मुझे राज्य भी न लेना पडता और इनकार भी न करना पडता तो क्या ही अच्छा होता। शायद राम की यही भावना कैकेयी मे काम कर रही हो। राम को राज्य न दिया जाय और भरत को राज्य दिया जाय यह बात किसी बडी शक्ति द्वारा ही कही जा सकती थी। कैकेयी की माग के पीछे किसी महान् शक्ति का हाथ अवश्य होना चाहिये और वह महान् शक्ति अगर स्वय राम की ही भावना की हो तो इसमे जरा भी आश्चर्य नही है।

दशरथ की दुनिया

राज्य राम को न दिया जावे यह बात सुनकर दशरथ को घबराहट हुई। हा यह सोचकर वे दुखित हुए कि मेरे घर मे भेदभाव क्यो?

आज तो इस प्रकार का भेदभाव घर–घर घुस रहा है। राम और भरत की माता तो खैर अलग–अलग थी मगर आज तो एक ही माता से उत्पन्न भाइयो मे भी पक्षपात और भेदभाव देखा जाता है। लोग अपने और अपने भाई के लडके को भी अलग–अलग नजर से देखते है और उनके प्रति एक–सा व्यवहार नही करते। कहा तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का उदार आदर्श और कहा इतनी क्षुद्रता।

अपने घर मे जिसे वे अभी तक आदर्श समझते आए थे यह क्षुद्रता और भेद–भाव देखकर राजा दशरथ सन्कुचा गये। फिर उनहोने कहा – रानी मे तुम्हे वचन दे चुका हू। में अपने वचन के विरुद्ध नही जाऊगा।

सत्य से ही थिर है ससार। सत्य ही सब धर्मों का सार।।
राज्य ही नही प्राण परिवार। सत्य पर सकता हू सब वार।।

रानी, ससार सत्य पर टिका हुआ हे। समुद्र सत्य के बल पर ही रुका हुआ है। सूर्य, चन्द्र, वर्षा और पृथ्वी सत्य से ही सव के सहायक बने हुए हें। न मालूम किसके सत्य से ये सव काम कर रहे हें?

दशरथ फिर कहते हें – सत्य के लिये में राज्य ओर यहा तक कि प्राण भी निछावर कर सकता हू, लेकिन में यह पूछता हू कि क्या राम तुम्हारा पुत्र नही है? तुम वार–बार कहती थी कि बडे भाग्य से राम–सा पुत्र ओर सीता–सी पुत्रवधू मिली हे। फिर तुम्हारे मन मे यह भेदभाव क्यो आया हे? अगर तुम्हारे अन्त करण मे भेदभाव नहीं हे ओर सिर्फ भरत को दीक्षा लेने से रोकने के उद्देश्य से ही तुम भरत के लिये राज्य माग रही हो तो मुझे वेसी व्यथा न होगी।

इतना कहकर दशरथ बडे असमजस मे पड गये। वे सोचन लगे – रानी को वचन दिया हे सो उसकी इच्छा के अनुसार भरत को राज्य देना ही होगा। मगर इस व्यवस्था को राम मानेगा या नही? ओर प्रजाजन इस परिवर्तन को स्वीकार करेगे या नही? कदाचित् यह सब समझ भी गये तो लक्ष्मण का समझना कठिन होगा। अगर अकेला लक्ष्मण ही बदल गया तो वह सारे राज्य को हिला देगा। ऐसी स्थिति मे क्या किया जाय? रानी ने पहले ही वर माग लिया होता तो कोई प्रश्न न उठता? मगर अचानक सारी व्यवस्था को बदलना कितना कठिन हे! इस समय राम को राज्य देने की बात सब प्रकार प्रकट हो चुकी हे ओर नगर मे उत्सव मनाया जा रहा हे। में स्वय राम को राज्य देने की बात कह चुका हू । इधर रानी को कह चुका हू कि इच्छा हो सो माग लो। बडी विकट उलझन हे। प्रात काल मे दीक्षा लेना चाहता हू ओर यह नया सकट खडा हो गया! किस प्रकार इससे छुटकारा पाऊ?

लक्ष्मण का हर्ष

ज्येष्ठ भ्राता राम का कल प्रात काल ही राज्याभिषेक हागा यह जान कर लक्ष्मण के हर्ष का पार न रहा। 'साकेत' काव्य मे लक्ष्मण की रानी का नाम उर्मिला वतलाया हे। जेन साहित्य मे लक्ष्मण की अनेक रानिया हान का उल्लेख पाया जाता हे। उनमे से एक का 'उर्मिला' नाम स्वीकार कर लेने म कोई हर्ज नही हे। नाम के भेद से वस्तु म काई भेद नही होता।

लक्ष्मण की पटरानी ने लक्ष्मण को बहुत आनदित देख कर पूछा – नाथ! आज इस अपूर्व हर्ष का क्या कारण हे? आज आप अत्यन्त आनन्दित दीख पडते हैं। लक्ष्मण बोले – प्रिये! आज हर्ष न हुआ तो फिर कब होगा?

बढे क्यो आज न हर्षोद्रेक, राम का कल होगा अभिषेक।
धरा पर धर्मादर्शनिकेत, धन्य है स्वय सदृश साकेत।।

पत्नी को उत्तर देते समय लक्ष्मण का कठ गद्‌गद हो गया। पत्नी ने कहा – आप प्रत्येक प्रिय वस्तु मे मुझे सदा से हिस्सा देते रहे हैं। ऐसा कोई अवसर नही बीता जब आपने इष्ट वस्तु मे से मुझे उचित भाग न दिया। फिर आज कजूसी क्यो कर रहे हैं? अपने आनन्द मे से भाग मुझे क्यो नही देते?

लक्ष्मण ने मुस्करा कर कहा – प्रिय! आज के हर्ष का क्या कहना है! आज जीवन मे हर्ष का अभूतपूर्व अवसर है। कल राम का राज्याभिषेक होने वाला है!

खुद को राज्य मिलने पर तो लोग हर्षित होते होगे, पर अपने भाई को राज्य मिलने के अवसर पर इतना हर्ष होना सामान्य बात नही है। लक्ष्मण सरीखे बन्धुवत्सल असाधारण पुरुष ही ऐसा हर्ष भोगने के लिये भाग्यशाली होते हैं। आज भी कुछ लोग ऐसे मिलेगे जो अपने भाई का उत्कर्ष देखकर प्रसन्न होते है मगर जो लोग भाई को भाई की दृष्टि से नही देखते और भाई के उत्कर्ष को देखकर ईर्ष्या करते है वे अपने पैरो पर कुल्हाडी मारते हैं। जो भाई के लडके मे और अपने लडके मे भेद मानता है उसके लडके भी यही पाठ सीखते हें।

कल राम का राज्याभिषेक होगा यह सुनकर लक्ष्मण की रानी को बहुत प्रसन्नता हुई। वह कहने लगी – आपने ऐसा हर्ष–समाचार भी मुझ से अब तक छिपा रखा था। राज्याभिषेक कल होने वाला हे मगर आप कहे तो मे आज ही और यही राज्याभिषेक दिखला सकती हू।

लक्ष्मण – सौ कैसे? क्या राज्याभिषेक किसी डिबिया मे बन्द करके रख छोडा है कि डिबिया खोली और राज्याभिषेक दिखा दिया!

रानी – जो मेरे पास नही है वह ससार मे कहीं नही है। आप आज्ञा दे तो अभी राज्याभिषेक दिखा सकती हू! वह डिबिया मे बद तो है मगर वह डिदिया एक अलौकिक धातु की बनी है।

लक्ष्मण – अगर तुम आज और यही राज्याभिषेक दिखला सकती हो तो मैं तुम्हे ऐसा पारितोषिक दूगा जेसा तुमने कभी नही पाया होगा।

रानी – तो ठीक है थोडी देर ठहर जाइये।

इतना कह कर उर्मिला एकात मे चली गई। उसने राज्याभिषेक का एक बहुत ही सुन्दर चित्र तैयार किया। ऐसा सुन्दर मानो साक्षात् राज्याभिषेक हो रहा हो।

कलाकार भविष्य को वर्तमान रूप दे देता है। कलाकार की सूक्ष्म और पैनी दृष्टि मे भूत–भविष्य वर्तमान की भाति प्रतिबिम्बित होते हैं। उर्मिला चित्रकला मे असाधारण निपुणता रखती थी। भारतवर्ष मे पहले कला का बडा मान था और बहुत प्रचार था। आज तो लोगो ने कला का सर्वस्व ही लूट लिया है।

लक्ष्मण की रानी ने अपने चित्र मे राज्याभिषेक के लिये एक अत्यन्त सुन्दर मण्डप बनाया। मडप के रत्नमय खभे खडे किये। खभो पर मनोहर पुतलिया बनाई और मणियो और रत्नो का प्रकाश दिखलाया। मडप के बीचोबीच एक सिहासन चित्रित किया। सिहासन पर राम और सीता को बिठलाया और दशरथ आदि को अभिषेक करते हुए दिखलाया। उसने राम की मुद्रा मे ऐसी नम्रता प्रदर्शित की, मानो ससार का बोझ आ जाने कारण वे झुक गये हो। राम के अगल–बगल अनेक सरदार और उमराव आदि अभिषेक की सामग्री लिये खडे दिखलाये। यथास्थान सिपाही चोबदार खडे किये गये। नर–नारियो का और दास–दासियो का ऐसा सजीव चित्रण किया गया कि देखते ही बनता था। चित्र सामने आने पर ऐसा मालूम होता था जैसे साक्षात् राज्याभिषेक ही हो रहा है।

चित्र तैयार करके लक्ष्मण की रानी प्रसन्न होती हुई लक्ष्मण के पास आई। उसने कहा – देखो, कल का दृश्य आज ही दिखलाती हू। यह कह कर उसने असीम आनद के साथ वह चित्र लक्ष्मण के हाथो मे दे दिया। लक्ष्मण ने चित्र देखा तो हृदय गद्‌गद हो गया। राम की भव्य और विनम्र मुद्रा देख कर उनके नेत्रो से आसू बहने लगे। ये स्नेह और श्रद्धा के आसू थे। लक्ष्मण मानो अपने आसुओ रूपी मोतियो से राम का अभिषेक करने लगे।

थोडी देर तक चित्र देखने के पश्चात लक्ष्मण ने कहा – प्रिये! तुम्हारे इस कमल से कोमल हाथो मे वह कला है कि कल का दृश्य आज ही दिखा दिया! तुम्हारी उगलियो की कला देख कर में गर्व के साथ मतवाले हाथी की तरह झूमने लगा हू।

लक्ष्मण की बाते सुनकर और अपनी प्रशसा सुनकर रानी कुछ सकुचा गई। फिर मुस्कराहट के साथ बोली – प्राणनाथ! आपने मेरी उगलियो को कमल बतलाया है और आप स्वय मतवाले हाथी बन रहे हैं। मतवाला हाथी ...मल तोड डालता हे कही आप तो ऐसा नहीं करेगे?

लक्ष्मण की पत्नी के इस कथन का अर्थ यह नही समझना चाहिये कि उसे लक्ष्मण के पति किसी पकार की आशका या अश्रद्धा थी। राम ने सर्वसाधारण को समझाने के लिये भरत से कहा था कि परस्त्री त्याज्य है। क्या भरत परस्त्री–गामी था? नही भरत को लक्ष्य करके राम ने ससार को यह उपदेश दिया था। इसी प्रकार लक्ष्मण की पत्नी का कथन समझना चाहिये कि आप मेरे हाथ को कही तोड मत देना। आपने मेरे साथ विवाह किया है और मेरा हाथ पकडा है। अब मेरा यह हाथ तोडना मत। यह आशय भी सभव है कि जिस हाथ से आपने मेरा हाथ पकडा है उस हाथ से परस्त्री को मत छूना। मतवाला हाथी विवेक भूल जाता है। वह अपने महावत को ही मार डालता है। आप राजपुत्र हैं महान् शक्ति से सम्पन्न है। अगर आप कभी विवेक भूल गये तो छोटे लोग कुचल जाएगे। आपके द्वारा गरीबो और दुखियो की रक्षा होनी चाहिये और परस्त्री आपके लिये माता के समान होनी चाहिये।

इस बात का आप अपने विषय मे विचार कीजिये। आप भी कभी विवेक न भूले। आपने भी विवाह किया होगा और लग्नवेदिका पर खडे होकर कहा होगा कि मैं परस्त्री को माता–बहिन के समान समझूगा। लेकिन कभी मतवाले होकर यह प्रतिज्ञा भूल तो नहीं जाते? लक्ष्मण तो महापुरुष थे। उनके नाम से यह बात जगत को समझाने के लिए कही गई है। अगर वे चेते हुए न होते तो क्या मर्यादा नही तोड सकते थे? मर्यादा जब भी टूटती है बडे से टूटती है। अभक्ष्य भक्षण और अपेय पान आदि बडे घरो से शुरू होता है। लोग उत्मत्त होकर विवेक ओर मर्यादा का उल्लधन कर डालते हैं मगर ऐसे लोग कभी उन्नत नही हो सकते।

पत्नी की बात सुनकर लक्ष्मण कुछ लज्जित–से हो गए। उनकी आखो मे आसू आ गये। यह देखकर उनकी पत्नी ने कहा – क्या मेरी बात से आपको दु ख हुआ? लीजिये यह चित्र सम्भालिये। आपने चित्र के लिये पुरस्कार देने को कहा था। लेकिन जब मैने पुरस्कार मागा तो आपको दु ख हो गया।

लक्ष्मण ने कहा – मै सोच रहा हू कि मे दशरथ का पुत्र ओर राम का भाई हू अत मुझमे सदेव विवेक कायम रहेगा। पर आज मत्त होने की बात मेरे मुख से केसे निकल गई? तुमने ठीक मौके पर मुझे अच्छी चेतावनी दी। मत्त होने की तो बात दूर मे मत्त होने की बात कभी मुख से नही निकालूगा।

पत्नी बोली – प्राणनाथ! अगर आप मत्त हाथी न बनेगे तो मेरे हाथ कमल भी न रहेगा। वह आपके कार्यो मे सहायक होगा।

लक्ष्मण – मे कल से ही राम का दास हो जाऊगा। मुझ मे फिर मस्ती रहेगी ही कैसे? सेवक को अभिमान कैसे हो सकता हे?

पत्नी – आप सेवक होओगे तो मैं सेविका होऊगी। इसी मे जीवन की सार्थकता है।

लक्ष्मण – प्रात काल जल्दी ही जागना हे। सेवक का कर्तव्य स्वामी से पहले जाग जाना हे।

रात्रि व्यतीत हुई। प्रभात होने पर जल्दी जागकर लक्ष्मण राम के पास जाने लगे। उन्होने अपनी पत्नी से कहा – प्रिय! मैं जाता हू राम के उठने से पहले ही मुझे वहा उपस्थित हो जाना चाहिये।

लक्ष्मण हाथ मे चित्र लेकर प्रसन्न होते हुए राम के पास चले। राम उस समय सो रहे थे। लक्ष्मण जाकर बाहर खडे हो गये।

यहा एक कवि की कल्पना का वर्णन करता हू। मैं यह तो नही कहता कि यह बात लक्ष्मण ने कही थी। अगर लक्ष्मण ने न कही हो तो भी उनके नाम से कहने मे कवि ने कोई अनुचित काम नही किया हे। कवि की कल्पना को मैं लक्ष्मण के नाम से कहता हू –

जागिये रघुनाथ–कुवर पछी वन बोले।
चन्द्रकिरण शिथिल हुई चकवी पिय–मिलन गई।।
त्रिविध मन्द चलत पवन पल्लव–द्रुम डोले।।जागिये।
प्रात भानु प्रकट भयो रजनी को तिमिर गयो।
भ्रमर करत गुज गान, कमल दल खोले।। जागिये।।

यह बात कही तो राम के भक्त ने पर यहा लक्ष्मण के नाम से कहता हू। लक्ष्मण कहते हें – हे रघुनाथ कुवर आप जागिये। आज आनन्द का दिन हे ओर आप अभी तक सो रहे हें! आज के आनन्द का मे सजीव चित्र ले कर आया हू।

चित्र बनाना एक कला हे। चित्र चित्रकार की भावना का प्रतिबिम्ब हे। कलाकार अपनी भावनाओ मे रग भर कर उन्हे बाह्य रूप देता हे। यह आवश्यक नही कि उसकी भावना यथार्थता का स्वरूप गहण करेगी ही मगर वह अपनी भावनाओ को जितनी कुशलता के साथ अकित कर सकता हे उतना ही सुन्दर उसका चित्र माना जाता हे। राम के राज्याभिषेक का सुन्दर चित्र अकित किया गया था, मगर राज्याभिषेक नहीं हुआ ओर राज्याभिषक के समय उन्हे वन मे जाना पडा।

आपका अगर थोडा–सा भी लाभ पात काल होने पर होने वाला हो तो आपको शायद रात मे ही नीद न आवे। कदाचित् आवे भी तो जल्दी खुल जाए। मगर राम को तो राज्य मिलने वाला था फिर भी वे इतनी देर तक क्यो सोते रहे। उनकी नीद जल्दी क्यो नही उचट गई? राम का हृदय बडा गम्भीर था। उन्होने अपने मित्रो को सम्पत्ति और विपत्ति के समय हर्ष और विषाद न करने की जो बात कही थी सो केवल कहने को ही नही थी। उनके हृदय मे इस पकार का स्वभाव व्याप्त था। यही कारण है कि राज्यप्राप्ति के अवसर पर भी उनके हृदय मे किसी प्रकार का असाधारण या अभूतपूर्व भाव नही था। अतएव वे सदा की भाति इस रात्रि मे भी सोये।

राम तो सोये थे, मगर भक्त उन्हे कैसे सोये रहने देते? इसलिये लक्ष्मण उनसे कहते है – उठिये वन मे पक्षी भी चह–चहाने लगे है। चन्द्रमा की किरणे फीकी पड गई हैं पर आपको नीद अभी फीकी नही पडी? वह अब तक वैसी ही बनी है? रात व्यतीत हुई जानकर चकवी चकवा से मिलने गई ओर आप सो रहे है। प्रभातकाल की शीतल मन्द और सुगन्धित पवन के चलने से वृक्षो की डालिया हिलने लगी हैं मानो आपको बुला रही है। पात कालीन सूर्य भी प्रकट हो चुका है। सूर्य अपने सूर्यवश का राज्याभिषेक देखने के लिए चला आ रहा है। वह आपको राजसिहासन पर बैठे देखने के लिये उत्सुक दिखाई देता है और आप सो रहे है? सूर्य के प्रकट होने से अन्धकार भाग गया है मगर आपकी नीद नही भागी? भ्रमर गूजते हुए आपकी विरुदावली का बखान कर रहे है और कमल आपका स्वागत करने के लिये खिल गये है। फिर आप अभी तक क्यो सो रहे हैं?

लक्ष्मण आगे कहते है –

ब्रह्मादिक धरत ध्यान सुर–नर–मुनि करत गान।
जागन की वेला भई नयक पलक खोले।। जागिये।।

प्रात काल होने पर योगी भी जाग जाते हें ओर अपने–अपने इष्ट का ध्यान करने लगते है। फिर आप अभी तक क्यो नही जागे है?

लक्ष्मण की वाणी का असर पडा ओर राम जाग गये। लक्ष्मण को खडा देखकर राम ने कहा – अरे लक्ष्मण! तुम कब से खडे हो? तुम इतनी जल्दी कसे आ गये?

लक्ष्मण – पभो! मे आज भी जल्दी न उठूगा तो फिर कब उठूगा? मे आपसे भी यही प्रार्थना करता हू कि आप प्रात कालीन कार्यो से जल्दी निवृत्त हो लीजिये और माता–पिता का दर्शन करके सूर्यवश के सिहासन को

सुशोभित कीजिये। आज पिताजी आपको राज्य देकर दीक्षा लेने वाले हैं। अब आप ही प्रजा के पालक होगे। प्रजा के पालन और सरक्षण का भार अब आपके ऊपर आ रहा है। इसलिये उठिये, विलम्ब मत कीजिये।

लक्ष्मण को इस विचार से बडा आनन्द हो रहा है कि राम आज राजा होगे और मेरी पटरानी ने जो कल्पनाचित्र अकित किया हे, वह वास्तविक चित्र बन जाएगा।

राम – लक्ष्मण! आज तुम्हारे भीतर यह चचलता क्यो हे?

लक्ष्मण – नही, मुझ मे चचलता नही। हॉ हर्ष तो अवश्य हे।

राम – तुम मुझे राज्य मिलने का विचार कर हर्षित हो रहे हो मगर मुझे किसी और ही बात मे कल्याण दिखाई देता है।

लक्ष्मण – महाराज, मैं चाहता हू कि आज शीघ्र ही वह दृश्य दिखाई दे जो आपकी अनुजवधू ने कल ही चित्रित कर दिया है। देखिये वह चित्र यह है। मै इस चित्र को वास्तविक रूप मे देखने के लिये उतावला हो रहा हू।

राम – भैया किसी भी अवसर पर गम्भीरता नही त्यागनी चाहिये। हर्ष मानने वालो को विषाद घेर ही लेता है। तुम इस चित्र के अनुसार दृश्य साक्षात् देखना चाहते हो मगर कौन जानता है कि अदृष्ट ने कौन–सा चित्र बना रखा है? और कौन कह सकता है कि यह चित्र वास्तविक होगा ही?

राम कहते हैं – 'लक्ष्मण! आज न जाने क्यो मुझे अच्छी नीद आई? जब जाग्रत् अवस्था भी नही होती और स्वप्नावस्था भी नही होती उस सुषुप्तावस्था मे जब आत्मा जागता है तब बडा आनन्द होता हे। शरीर और मन की स्वस्थ दशा मे यानी विकार न होने पर स्वप्न नही आते उस समय बडाआनन्द होता है।'

मन मे सकल्प–विकल्प हो तो स्वप्न मे उन्ही के अनुरूप दृश्य दिखाई देते हैं। कई लागो ने स्वप्न मे यह समझ कर कि मे कपडा बेच रहा हू, कपडे फाड डाले ओर वह भी पोषध की स्थिति मे। एक श्रावक सराफी का धन्धा करते थे ओर पोषघ करके सोये थे। स्वप्न मे उन्होने देखा कि मेर जेवरो की पेटी चोर ले जा रहे हैं। वे पास मे सोये आदमी का हाथ पकड कर चोर–चोर चिल्लाने लगे। मतलब यह हे कि मन मे जेसे सकल्प–विकल्प उठते हैं नीद मे स्वप्न भी वेसे ही दिखाई देते हे। मन मे विकार न होगा मन स्वस्थ होगा तो निद्रा गहरी शात ओर अच्छी आएगी।

नीद मे विकार का बीज नष्ट नहीं होता। सुषुप्तावस्था मे भी विकार का बीज बना ही रहता है। जागने पर वह फिर उसी तरह का जजाल खडा कर देता है। यह बात दूसरी है कि साधु के जागने पर साधु के काम हो और गृहस्थ के जागने पर गृहस्थ के काम हो, पर जजाल का बीज नष्ट नही हुआ है और जाग्रत अवस्था होने पर वह ज्यो का त्यो खडा हो जाता है। ठीक उसी प्रकार जैसे ग्रीष्म ऋतु मे जगल सूख जाता है पर वर्षाऋतु मे वर्षा होते ही फिर हरा हो जाता है। मगर विचार करने योग्य बात यह है जजाल का बीज नष्ट न होने पर भी सुषुप्तिदशा मे जब इतनी शाति मालूम होती है तो बीज नष्ट हो जाने पर कितनी शाति मालूम होती होगी।

लक्ष्मण – प्रभो! अब आप चलिये। पहले पितृदर्शन कर आवे, अन्यथा अभिषेक कार्य मे विलम्ब हो जाएगा।

राम – लक्ष्मण! जिसे तुम्हारे सरीखा भाई प्राप्त हुआ है, उसे राज्य की क्या परवाह है? तुम तीन लोक की सकल सम्पदा से बढकर हो। तुम्हे पाकर मुझे राज्य की कोई लालसा नही है। लेकिन चलो, समय हो गया है। पिताजी के दर्शन कर आवे।

राम और लक्ष्मण पिता का दर्शन करने चले। दोनो भाई उस राजमहल मे ऐसे जान पडते थे जैसे दशरथ का राजमहल तो दिव्य आकाश है और उसमे ये दोनो सूर्य और चन्द्रमा हैं। आकाश के सूर्य–चन्द्र साथ नहीं रहते। सूर्य का उदय होते ही चन्द्र फीका पड जाता है। मगर दशरथ के महल रूपी आकाश मे यह विशेषता है कि सूर्य और चन्द्रमा दोनो साथ–साथ प्रकाशित हो रहे हैं। तेज की दृष्टि से राम सूर्य और लक्ष्मण चन्द्र हैं और वीरता की दृष्टि से राम चन्द्र की तरह शीतल और लक्ष्मण सूर्य की तरह तेज हैं। वीरता के लिहाज से लक्ष्मण बढकर हैं।

पिता के पास जाते समय राम के मन मे क्या विचार उठ रहे थे यह कहना सभव नही है। बडो की बात कोई बडा ही कह सकता है। लेकिन लक्ष्मण के मन मे यह विचार हो रहा था कि मै पिताजी के पास जाकर यह चित्र उन्हे दिखाऊगा और इस चित्र के अनुसार ही आज के उत्सव की आयोजना करने का आग्रह करूगा। पिताजी अपनी पुत्रवधू का बनाया चित्र देखकर अवश्य ही पसन्न होगे।

दोनो भाई पिता के महल मे पहुचे। वहा जाने पर विदित हुआ कि महाराज कैकेयी के महल मे है। राम ने कहा – चलो यह अच्छा ही हुआ। पिताजी के साथ माताजी के भी दर्शन हो जाएगे। यह सोचकर दोनो कैकेयी के महल की ओर मुड गये।

जब राम और लक्ष्मण केकेयी के भवन मे पहुचे तो उनका हृदय प्रसन्नता से परिपूर्ण था। मगर आते ही उनकी आखो ने जो दृश्य देखा उससे उनके विस्मय का पार न रहा। उन्होने देखा – पिताजी का चित्त एकदम मुरझाया हुआ है। उनके चेहरे पर घोर वेदना के चिह्न प्रकट हो रहे हैं जैसे घायल मनुष्य के चेहरे पर वेदना प्रकट होती हे। चेहरे पर असीम उदासी है, दैन्य है, शोक है। सिर नीचा किये धरती की ओर निहार रहे हैं।

दशरथ की यह दशा देखकर दोनो भाई अत्यन्त चिन्तित हुए। राम ने सोचा – बात क्या हे! मेरी मौजूदगी मे और मेरे सामने ही पिताजी की यह दशा क्यो है? धिक्कार है मुझे, जिसके होते पिताजी को इतना दु खी होना पड रहा है! लक्ष्मण विचार करने लगे – 'यह मैं क्या देख रहा हू? आज तो पिताजी को प्रसन्न होना चाहिये था, पर ये इतने उदास और शोकातुर क्यो हैं? ऐसी क्या घटना हुई कि जिससे पिताजी का हृदय इतना आहत हो गया है।'

राम ने जाकर पिता को प्रणाम किया। राम को देखकर दशरथ ने कहा – राम, तुम आ गये! हे सूर्यवश के गुरु सूर्य। आज तू उदित ही क्यो हुआ? एक ओर मैंने राम को राज्य देने की घोषणा कर दी है ओर दूसरी ओर रानी कहती है कि भरत को राज्य दो। और मैं वचनबद्ध हू। ऐसे समय मुझे क्या करना चाहिये? हे सूर्य! अगर तू उगा न होता तो मे इस सकट से बचा रहता। अगर मै राम को राज्य न देकर भरत को राज्य दूगा तो प्रजा क्या कहेगी? अगर मै किसी को राज्य नही देता हू तो मेरा निमत्रण पाकर आने वाले भाई–बन्धु क्या कहेगे?

दशरथ इस प्रकार मन ही मन विचार कर रहे थे तभी राम ने पूछा – पिताजी! आज आपको कोनसी व्यथा सता रही है?

दशरथ मोन रहे। उनके मुख से बोल न निकल सका। वे किस मुह से कहे कि तुम्हे राज्य न देकर भरत को दे रहा हू? और यह भी केसे कहे कि में तुम्हे राज्य दूगा? इस दुविधा मे बुरी तरह जकडे हुए दशरथ के मुख से एक व्यथाभरी लम्बी श्वास निकली। पिता को लम्बी सास लेते देख कर राम ने सोचा कि पिताजी को कोई बडा कष्ट हे। इसी कारण वे मन ही मन कष्ट पा रहे हैं।

अव राम की दृष्टि केकेयी की ओर गई। राम ने उसे प्रणाम करके कहा – माता क्षमा करना। मुझे अव तक पता ही न था कि आप यहा वेठी है। इसी कारण आपको अब तक मेने प्रणाम नही किया। मुझे क्षमा करो ओर

यह बतलाओ कि पिताजी के हृदय–कमल–कुसुम मे क्या काटा लगा है? मै बालक हू। नही जानता कि पिताजी क्यो व्यथित हो रहे है? आप मेरी माता हैं। आप से क्या छिपा है? शीघ्र बतलाइये तो मै यथोचित प्रतिकार करने का प्रयत्न करूगा।

राम की कथा अनेक विद्वानो ने लिखी है। उन्होने अपने–अपने दृष्टिकोण के अनुसार कथा मे थोडा–बहुत परिवर्तन भी किया है। हमारे पास ऐसा कोई साधन नही जिससे यह निर्णय किया जा सके कि किस कथा का कौनसा भाग वास्तविक है और कौनसा भाग कल्पित है? अतएव यहा किसी एक कथा का आश्रय न लेकर अनेक कथाओ के अनुसार राम–चरित्र का वर्णन किया जा रहा है। जिस कथा मे जो भाग शिक्षाप्रद है, वह भाग उसमे से लिया गया है।

आचार्य रविषेण के पद्मचरित को देखने से ज्ञात होता है कि जब रानी कैकेयी ने वर मागा था तो राम और लक्ष्मण वहा नही पहुचे थे। कैकेयी ने दशरथ को कोई खरी–खोटी नही सुनायी और न राम के प्रति ही उसे कोई द्वेष उत्पन्न हुआ बल्कि अत्यन्त लज्जित होकर रानी ने भरत के लिये राज्य मागा था। अलबत्ता इस माग से दशरथ को व्यथा पहुची और ऐसा होना स्वाभाविक ही था और खास तौर पर राम को राज्य देने की घोषणा हो जाने के बाद यह परिवर्तन शोक और दुविधा उत्पन्न करने वाला था। फिर भी कैकेयी के वर मागने पर राजा उससे कहते है–

एवमस्तु शुच मुञ्च निरृणोऽह त्वया कृत ।

रानी ऐसा ही सही। तुम शोक का त्याग करो। तुमने आज मुझे ऋणहीन बना दिया। अर्थात् चिन्ता मत करो। राज्य भरत को ही दिया जायगा।

इस प्रकार रानी को आश्वासन देकर राजा दशरथ ने राम को बुलवाया। उस समय का वृत्तात इस प्रकार है–

पद्म लक्षणसयुक्तमाहूय च कृतानिति।
ऊचे विनय सम्पन्नम् किचिद् विगत मानस ।।
वत्स! पूर्वरणे धीरे कला पारगयाऽनया।
कृत कैकय्या साधु सारथ्य मम दक्षया।।
तदा तुष्टेन पत्नीना भूभृताच पुरो मया।
मनीषित प्रतिज्ञात नीत न्यासत्वमेतया।।
देहि पुत्रस्य मे राज्य इति त याचते अधुना।

किमप्याकूतमापन्ना निरपेक्षा मनस्विनी।।
प्रतिज्ञाय तदेदानी ददाम्यस्यै न चेन्मत।
प्रव्रज्या भरत कुर्यात् ससारालम्ब नोज्झित ।।
इयच पुत्रशोकेन कुर्यात् प्राण विसर्जनम्।
भ्रमेच्च मम लोकेऽस्मिन्न कीर्त्तिर्वितथोद्भवा।।
मर्यादा न च नामेय यद्विधायाग्रज क्षम।
राज्य लक्ष्मी वधूसगम् कनीयान् प्राप्यते सुत ।।

कैकेयी को यथोचित आश्वासन देने के पश्चात् दशरथ ने राम को बुलाया। सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार शुभ लक्षणो से युक्त, विनयसम्पन्न और नमस्कार करते हुए राम दशरथ के पास पहुचे। दशरथ ने कुछ उदासीनता के साथ राम से कहा – वत्स, तुम्हारी यह माता कैकेयी कला मे बडी कुशल है। कुछ दिनो पहले एक भयकर सग्राम मे इसने मेरे सारथि का काम बहुत होशियारी के साथ किया था। इसकी चतुराई देख कर मुझे अत्यन्त सतोष हुआ। उस समय मैने अनेक राजाओ के सामने और अपनी अन्य पत्नियो के सामने यह प्रतिज्ञा की थी कि तुम्हारी जो इच्छा हो सो माग लो। मगर इसने उस वरदान को धरोहर के रूप मे मेरे पास ही रहने दिया। अब तुम्हारी यह माता वह वर माग रही है। इसने यह माग की हे कि मेरे पुत्र को राज्य दिया जाय। उस समय की हुई प्रतिज्ञा के बधन से मै बन्धा हुआ हू। कदाचित यह याचना पूर्ण न करू तो भरत अपने को इस प्रकार ससार सम्बन्धी बन्धनो से मुक्त समझेगा और दीक्षा ले लेगा। उसका दीक्षा ले लेना तो कोई बुराई की बात नही है। बुराई तो यह है कि तुम्हारी माता केकेयी अपने पुत्र के वियोग का शोक सहन नही कर सकेगी और अपने प्राण दे देगी। इसके अतिरिक्त मेरी प्रतिज्ञा भी भग हो जाएगी। लोग कहेगे कि दशरथ ऐसा असत्यभाषी हे कि उसने पहले तो रानी को इच्छानुसार वर मागने का अधिकार दिया ओर जब रानी ने वर मागा तो देने से मुकर गया। इस प्रकार दुनिया मे मेरी अपकीर्ति फैल जाएगी।

एक तरफ तो रानी के मर जाने की ओर मेरी अपकीर्ति फेलने की सभावना है ओर दूसरी ओर अनीति हे। अगर में तुम्हे राज्य न देकर भरत को राज्य देता हू तो बडा अन्याय होता हे। राजाओ की यह मर्यादा नही हे कि बडे भाई की मौजूदगी मे उसे राज्य न देकर छोटे को राज्य दिया जाय। एक ओर कुआ ओर दूसरी ओर खाई।

तदह वत्स। नो वेमि कि करोमिति पीडित ।
अत्यन्त दुख वेगेरुचिन्ता वार्तान्तरस्थित ।।

हे वत्स राम। मैं बडी दुविधा मे पडा हू। मेरे हृदय मे गहरा दु ख व्याप रहा है। मुझे भारी चिन्ता सता रही है, मैं किकर्तव्यविमूढ हो गया हू। मुझे नही सूझता क्या करू ? क्या न करू?

बेटा। अगर मै भरत को राज्य देता हू तो तुम्हारी क्या स्थिति होगी? तुम कहा जाओगे? क्या करोगे? कुछ सूझ नही पडता।

राम का आश्वासन

अपने पिता दशरथ से इस प्रकार की बात सुनकर राम को तनिक भी दु ख नहीं हुआ। उन्होने सोचा – पिताजी को जो कष्ट है, उसे मैं दूर कर सकता हू। उन्हे दुविधा मे से निकालने का उपाय मेरे हाथ मे है यह सन्तोष की बात है। यह सोचकर उन्हे प्रसन्नता हुई। राम की प्रसन्नता का एक कारण यह भी हो सकता है कि वे राज्य के बन्धन मे पडना नहीं चाहते थे और उनकी वह चाह पूरी होने का अनायास ही अवसर आ गया था। कुछ भी हो, राम ने सद्भावना और प्रीति के साथ दशरथ के चरणो की ओर देखकर कहा–

तात। रक्षात्मन सत्य त्यजास्मत् परिचिन्तनम्।
शक्रस्यापि श्रिया कि मे त्वऽयकीर्त्तिमुपागते।।
जातेन ननु पुत्रेण तत्कर्तव्य गृहैषिण।
येन नो पितरौ शोक कनिष्ठमपि गच्छत ।।
पुनाति त्रायते चाय पितर येन शोकत ।
एतत् पुत्रस्य पुत्रत्व प्रवदन्ति मनीषिण ।।

अर्थात् – पिताजी । आप अपने सत्य की रक्षा कीजिये और हमारी चिन्ता का त्याग कीजिये। आपकी कीर्ति को कलकित करके आपके यश का नाश करके अगर इन्द्र का वैभव भी मुझे मिलता हो तो वह भी मेरे लिये अग्राह्य है। कोशल का राज्य तो साधारण वस्तु है आपकी प्रतिष्ठा को भग करके मैं इन्द्र का राज्य भी नही चाह सकता। बुद्धिमान् पुरुषो का यह कथन मैं भली–भाति समझता हू कि सच्चा पुत्र वही हे जो अपने पिता को शोक ओर दु ख से बचाता हे। अगर मै आपको इस दु ख से मुक्त न कर सका तो मैं आपका पुत्र ही कैसा? अतएव आप चिन्ता मत कीजिये। निश्चिन्त हो जाइये। भरत को राज्य देकर माताजी को सतोष दीजिए ओर आप नि शल्य बन जाइये।

यह पद्मचरित का वर्णन है। इस वर्णन मे खूब सात्त्विकता हे। तुलसीदास ने इस प्रसग का वर्णन करते हुए केकेयी का जो चित्र खीचा हे वह वैसा सोम्य नही है। दशरथ की रानी कैकेयी के अव तक के उच्च जीवन को देखते हुए उसकी निष्ठुरता और कठोरता कुछ सगत नहीं जान पडती। वह राम के प्रति जली–भुनी बतलाई गई है और दशरथ को भी मनमानी सुना रही है। ऐसा जान पडता है कि कल तक की कैकेयी कोई दूसरी हे और आज की कैकेयी कोई ओर ही है। जो कैकेयी राम आदि पर जान देने को तैयार थी, वही उन्हे फूटी आखो नहीं देख सकती। केकेयी का यह चरित्र बडा विषम है। फिर भी इस वर्णन से यह शिक्षा मिलती है कि स्वार्थ मनुष्य को अन्धा कर देता है। स्वार्थ की भावना जब प्रबल हो जाती है तो वह पति पुत्र पत्नी आदि के हिताहित को नही देखने देती। उचित–अनुचित का विवेक तब तक ही रहता है, जब तक स्वार्थलोलुपता उग्र नहीं होती। तुलसी–रामायण के अनुसार इस प्रसग का वर्णन इस प्रकार है–

जब राम ने दशरथ से उनके दु ख का कारण पूछा और दशरथ सिर्फ सास लेकर रह गये – कुछ बोले नही तो उन्होने केकेयी से पूछा – माताजी आप बतलाये, पिताजी के हृदय मे कौनसा काटा हैं? मै उसे निकालकर पिताजी को सुखी करने का प्रयत्न करूगा।

कैकेयी ने कहा – और काटा कुछ नही हे, मैं ही काटा हू।

राम – माताजी, आप नाराज न हो। आप मेरी माता हैं। आप केसे काटा हो सकती हैं? माता से कभी अपराध नही हो सकता। आप स्पष्ट कहिये, वास्तव मे बात क्या हे?

कैकेयी – तुम्हारी पिताजी ने पहले तो मुझे इच्छानुसार वर माग लेने के लिये कह दिया था, मगर जब मैंने वर माग लिया तो दु खित हो रहे हैं।

राम – ठीक है, ऐसा नही होना चाहिये। जब आपको वचन दिया है तो उसे पूरा करना उचित हे। आप मुझसे स्पष्ट कहिये। मे दलाल बनकर आपको दिलाऊगा। आप निश्चिन्त रहिये।

केकेयी – तुम्हारे पिता की दृष्टि मे उस समय मे रानी थी। अब तुम्हारी मा कौशल्या रानी है। में अब रानी नही रही। यही नही बल्कि तुम्ही इनके पुत्र हो भरत पुत्र नही हे। केकेयी के इस कथन पर राम ने विषादभरी हसी हस कर कहा – रघुकुल मे ऐसा कदापि नही हो सकता कि दो रानियो मे से एक रानी रहे और दूसरी रानी न रहे ओर एक पुत्र तो पुत्र हो ओर दूसरा पुत्र पुत्र न हो। दाहिनी ओर बाई आख – दोनो बराबर हे। एक वडी ओर दूसरी छोटी नही मानी जा सकती।

कैकयी – तुम्हारी बुद्धि तो ठीक है पर तुम्हारे पिताजी यह नही सोचते। लो मै तुमसे साफ कहती हू – महाराज ने मुझे वर देने को कहा था और वह घरोहर के रूप मे था। वह वर अब मैने माग लिया है। मुझे जो अच्छा लगा सो मैने माग लिया। मैने यह मागा है कि भरत को राज्य दिया जाय, राम को नही। राम तुम बताओ मैने क्या बुरा मागा है?

तुलसीदासजी ने लिखा है –

मन मुसकाय भानुकुल–भानू। राम सहज आनन्द निधानू।।
बाले वचन विगत सब दूषण। मृदु–मजुल जनु वाग विभूषण।।

कैकेयी की बात सुनकर राम मुस्कराये। उनका चित्त आनन्द से भर गया। उन्होने सोचा – मै रात्रि मे यही विचार कर रहा था कि राज्य की विपदा मेरे सिर से कैसे टले? मैं असमजस मे पडा हुआ था। अब माताजी ने मेरी मुराद पूरी कर दी। मुझे पिताजी से कुछ नही कहना पडेगा।

राम के लिये यह कितना कठिन था! राज्य हाथ से जा रहा है, ससार मे अपवाद हो सकता है कि राम को किसी कारण अयोग्य समझ कर राज्य नही दिया गया और लोकहसाई होती है कि देखो चले थे राजा बनने। इन सब बातो की परवाह न करके राम प्रसन्न है। वे सहज आनन्द के निधान है। वे बाहर के आनन्द को ही आनन्द नहीं मानते। सहजानन्दी है, उसे ससार का आनद नही चाहिये। सहजानन्द के अभाव मे बाहरी आनन्द दु ख का रूप धारण कर लेता है। कबीर ने कहा है–

यह ससार कागद की पुडिया बूद लगे घुल जाता है।
रहना नही देश विगाना है।।
यह ससार काटन की बाडी उलझ–उलझ मर जाना है।
रहना नही देश विगाना है।।
यह ससार झाड अरु झाखर आग लगे जल जाना है।
रहना नही देश विगाना है।।

अगर आत्मा मे सहजानन्द न होगा तो बाहर की सुख–सामग्री तनिक भी सुख नही पहुचा सकेगी। बाहरी चीजो मे सुख होता तो दशरथ को वैराग्य ही क्यो होता? ओर इस समय उन्हे व्यथा हो रही है सो क्यो होती? वे क्या देखना चाहते थे ओर क्या हो रहा है? मगर राम सहजानन्दी हैं। ससार का कोई भी परिवर्तन सहजानन्द को भग नही कर सकता।

कैकयी का कथन सुनकर राम हस दिये। यद्यपि वह हसी आनन्ददायिनी थी लेकिन ककेयी के कलेजे मे वह काटे की तरह चुभ गई।

उसकी कल्पना मे राम कपटी थे। कैकेयी मन ही मन सोचने लगी – बडे को राज्य देना नीति है, यह सोचकर राम हंसता होगा मगर वचन का पालन करना क्या नीति नही है? इस प्रकार रानी ने जाने क्या–क्या सोचा होगा। पर राम तो राम ही थे। उन्होने सहजानन्द के साथ कैकेयी के सभी तीर सहन कर लिये। वे कहने लगे – माताजी, आपकी माग ठीक ही है। आपको माग करने का अधिकार था। आपने कुछ बुरा नही मागा। बल्कि आपने उदारता से काम लिया है कि भाई भरत के लिये ही राज्य मागा। आपको तो किसी गैर आदमी के लिये भी राज्य मागने का अधिकार था। भरत क्या कोई दूसरे हैं कि पिताजी उन्हे राज्य देने मे दु ख अनुभव करे।

सुनु जननी सोह सुत बडभागी। जो पितु–मात–चरण अनुरागी।।

हे माताजी! आपने मुझे भाग्यशाली बना दिया। मैं राज्य लेकर तुच्छ हो जाता, पर आपने मुझे मिलता हुआ राज्य भरत को दिलवाकर मुझे बडभागी बना दिया। शायद मैं अपनी ओर से भरत को राज्य न दे सकता पर आपने वह दिलवा कर मुझे बडा बना दिया है। माता, मैं कहा तक आपकी प्रशसा करू।

राम कहते हैं – जब तक माता–पिता खाने–पीने को दे तब तक उनकी सेवा करने मे कोई विशेषता नही है। विशेषता तो तब है जब माता–पिता द्वारा सभी–कुछ छीन लेने पर भी पुत्र उनकी उसी प्रकार सेवा करता रहे जैसी पहले करता था। इस प्रकार सेवा करने वाला पुत्र ही वास्तव मे बडभागी है। माताजी आपने मुझे सचमुच बडभागी बनने का अवसर दिया है।

भरत प्राण प्रिय पावहि राजू, विधि सब विधि सन्मुख मोहि आजू।।

मेरा भाग्य कितना अनुकूल है कि मेरा प्राणो के समान प्यारा भाई भरत आज राजा बनेगा। मेरे सोभाग्य से ही माता ने पिताजी से यह वर मागा है।

जब राम इस प्रकार की बाते कह रहे थे उस समय लक्ष्मण क्या सोचते थे? वह सोच रहे थे – माता अभी तो कह रही थी कि मे काटा हू, मुझे निकाल फेको ओर अभी–अभी तो राज्य मागने लगी। राम को कुल की परम्परा के अनुसार राज्य दिया जा रहा है अतएव महाराज या राम को कोई अधिकार नही है कि वे भरत को राज्य दे दे। मे देख लूगा राम का मिलने वाला राज्य दूसरा कोन लेता है।

राम राज्य लेना चाहते तो कह सकते थे वर पिताजी ने दिया है तो उनकी चीज ले सकती हो, राज्य तो पिताजी का नही है। राज्य तुम कैसे ले सकती हो? इस प्रकार कह कर राम अगर लाल आख दिखा देते तो कैकेयी का पुत्र भरत भी उसका साथ न देता। राम क्रोध मे आकर कह सकते थे अगर तुम्हे यहा शाति के साथ नही रहना है तो अपने मायके चली जाओ। राज्य भरत को नही मिल सकता। लक्ष्मण ने क्रोध करके यह सब कहा भी था मगर हमे तो राम के चरित्र से मतलब है। राम के चरित्र को सुनने–समझने और उसका यथाशक्ति अनुकरण करने मे ही जीवन की उन्नति है। राम ने कैकेयी पर तनिक भी क्रोध नही किया, वे कहने लगे–

भरत प्राणप्रिय पावहि राजू, विधि सब विधि सन्मुख मोहि आजू।
जो न जाऊ वन ऐसे हु काजा। प्रथम गनिय मोहि मूढ समाजा।

इन चौपाइयो का अर्थ जिव्हा से कैसे समझाऊ? राम कहते हैं– 'वाह माता! तू कितनी विवेकशीला और दूरदर्शिनी है कि तू ने पिताजी से यह वर मागा। तू मुझे साक्षात् सरस्वती ही दिखाई देती है। जिस भाई भरत को मैं पाणो से भी अधिक समझता हू, उसके लिये राज्य माग कर तूने मेरी भावना पूरी कर दी। मैं सोच ही रहा था –

विमल वश बड अनुचित एकू, अनुज विहाय बडेहि अभिषेकू।

जिन्हे मैंने अब तक भाई समझा है, राज्य लेने पर मैं उन्ही का स्वामी कहलाता और वे मेरे सेवक कहलाते। यह कितनी अनुचित बात थी? भरत की भलाई के लिये मे अपना सिर भी दे सकता हू, राज्य तो क्या चीज है!

भारतीयो के समक्ष राम का यह आदर्श उपस्थित है। फिर कोई भाई अपने भाई को मारने के लिये तेयार तो नही होता! अगर कोई तैयार होता हे तो उसने रामकथा नही सुनी दास–कथा मे ही वह रचा–पचा है।

राम कहते हैं – माता! भरत के लिये राज्य मागकर तूने मेरी इच्छा पूरी कर दी है। मेरा भाग्य अच्छा है विधाता मेरे अनुकूल हे। इसी कारण तेरे मुख से राज्य मागने की बात निकली है।

अगर मै भरत को राज्य न देकर स्वय राज्य ले लू तो मैं बडा मूर्ख ठहरूगा। मेरी यह मूर्खता इस प्रकार होगी–

सेव एरन्ड कल्पतरु त्यागी। परहरि अमिय लेहि विष मागी।।
सो न पाय अस समय चुकाही। देखु विचारि मात! मन माही।।

एक ओर कल्पवृक्ष हो ओर दूसरी ओर एरन्ड हो। दोनो मे से किसी भी एक को लेन की स्वतन्त्रता प्राप्त हो ऐसे अवसर पर जिसकी बुद्धि विपरीत

होगी वही मूर्ख कल्पवृक्ष को छोडकर एरन्ड लेगा। उसे कोई समझदार नहीं कह सकता। मगर कोई वज्र मूर्ख भी ऐसा सुयोग पाकर चूक नहीं करेगा। मै भरत को राज्य क्या दे रहा हू, भरत को अपना बना रहा हू। अगर में भाई को छोड कर राज्य अपनाऊ तो मै मूर्खों का शिरोमणि गिना जाऊगा।

राम कहते हैं – एक अमृत से भरा प्याला सामने हो ओर दूसरा विष से भरा हुआ हो। दोनो मे से किसी भी एक प्याले को लेने की छुट्टी हो तो विष का प्याला लेना कौन पसन्द करेगा ? अगर कोई पसन्द करता हे तो वह मूर्ख ही गिना जाएगा। जिस राज्य का त्याग करने से भाई का प्रेम मिलता है, पिता की प्रतिज्ञा पूरी होती है, ओर आपकी माग पूरी होती हैं और प्राणप्रिय भाई को राज्य मिलता है, उसका त्याग न करके अगर बदले मे कलह विग्रह और फूट लू तो ऐसा करना अमृत त्याग कर विष लेने के समान होगा।

राम की बात सुनकर कैकेयी सोचने लगी – राम तो गजब है। जिनसे मैंने वर मागा, वे राजा तो उदास हो गये हैं और जिनका राज्य जा रहा है वे राम यह उदारता प्रकट कर रहे हैं। इस प्रकार विचार कर कैकेयी का क्रोध शाति मे परिणत हो गया। वह मन ही मन कहने लगी – अरे राम तू क्या सचमुच ऐसा है? अरी मन्थरा। तूने मेरे घर मे यह क्या आग लगा दी।

राम कहते हैं – माता। आपने राज्य मागा सो तो आनन्द की बात है परन्तु एक बात की मुझे बहुत चिन्ता है।

थोरिहि बात पितहि दु ख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी।।
राउ धीर गुन–उदधि अगाधू। भा मोहिते कछ बड अपराधू।।

माताजी। मुझे इस बात का दु ख हे कि इस जरा–सी बात के लिये पिताजी को इतना दु ख हो रहा हे। पिताजी की दृष्टि मे मे ओर भरत दो नही हो सकते। अतएव मुझे विश्वास नही होता कि इस छोटी–सी बात के लिये ही पिताजी को इतनी वेदना हो रही है। पिताजी मे अपार धेर्य हे। वे गुणो के निधान हें। वे इस तुच्छ बात के लिये क्यो दु खी होते? जान पडता हे मुझसे कोई बडा अपराध हो गया हे। में उसे केसे जानू?

माता। मे तो स्वय ही यह चाहता हू कि भरत को राजसिहासन पर बेठा देखू। आप अपना मनोरथ सफल समझिये। आप थोडी देर के लिये महल मे पधारिये। मे पिताजी को सान्त्वना देकर उन्हे स्वस्थ करूगा।

केकेयी कहने लगी – राम क्या सचमुच तुम राज्य त्यागने को तेयार हो? या स्त्री समझकर मुझे भुलावा दे रहे हो? याद रखना में भुलावे मे आने वाली स्त्री नही हू। जब भरत को राज्यासन पर बेठा देखूगी सब जगह भरत

की दुहाई फिर जाएगी और मै राजमाता बन जाऊगी तभी मै अपना मनोरथ सफल समझूगी।

राम ने कहा – मा तुम्हे इतने पर भी विश्वास नही हुआ तो लो, मै आपके सामने प्रतिज्ञा करता हू कि यदि मै आपका और महाराज दशरथ का पुत्र हू तो मैं हरगिज राज्य स्वीकार नही करूगा और भरत को राज्यसिहासन पर बिठला दूगा।

अब कैकेयी को विश्वास हो गया कि चाहे गगा–जमना उल्टी बहने लगे पर राम की यह प्रतिज्ञा नही टलेगी। यह विश्वास करके वह वहा से जाने को उद्यत हुई।

लक्ष्मण का कोप

लक्ष्मण अब तक अपने को सभाले हुये थे। कैकेयी को जाती देख और सारा मामला बिगडता देखकर उनसे नही रहा गया। उनका चेहरा लाल हो गया। वे क्रोध से कापने लगे। कडक कर बोले – माता ठहरो। अभी मत जाओ। राम तुम भी ठहरो। राज्य के विषय मे इस प्रकार निर्णय करने का किसी को अधिकार नही है। और पिताजी आप भी मेरी बात सुन लीजिये।

लक्ष्मण का तमतमाता हुआ चेहरा और ऊचे स्वर से कही हुई उनकी बात सुनकर कैकेयी सहम उठी। वह लक्ष्मण की बहादुरी को जानती थी और उसके तेज स्वभाव से परिचित थी। इस समय लक्ष्मण का रूप देख कर तो वह काप उठी। उसने सोचा – लक्ष्मण न जाने क्या गजब ढहा देगा। कैकेयी जहा की तहा बैठी रह गई।

इसके बाद लक्ष्मण कहने लगे – माता आपने वरदान क्या मागा है, इस कुल के लिये घोर अभिशाप मागा हे। इस अभिशाप की आग मे न जाने किस–किस को ईधन बनना पडेगा। यह वर माग कर आपने आततायीपन प्रकट किया है। राज्य स्त्री और धन को हरण करने वाले ही तो आततयी कहलाते है। ऐसे आततायी को राजा दण्ड देता है। यो तो मैं आपका पुत्र हू, पर न्याय की प्रतिष्ठा के लिये आततायी पिता को भी दण्ड देना पुत्र का कर्तव्य है। मे आततायी को दण्ड दिये बिना कदापि न छोडूगा।

तुमने किसके बल–बूते पर यह दुस्साहस किया? अगर आपको अपने भाई का बल प्राप्त है तो उसे भी बुला लेना। मैं उसे भी देख लूगा। यह तो निश्चित है कि बिना सहायक के आप अकेली यह आततायीपन नही कर सकती। पर मै कहता हू – आप अपने सहायको को एक साथ बुला लो। जिनकी सहायता के भरोसे आप यह स्वप्न देख रही हो वे भी आज सोमित्र
[illegible]

का बल देख ले। तुम्हारे बहाने उन कुचक्रियो को उनके कुचक्र का फल चखाने का अवसर मिलेगा।

मुझे एक बात का बडा आश्चर्य है। तुम भरत के लिये राज्य माग रही हो मगर विश्वास नहीं होता कि भरत जैसा साधु स्वभाव का व्यक्ति तुम्हारे कुचक्र मे शामिल हो सकता है! नहीं, भरत इस षड्यन्त्र मे शामिल नहीं हो सकता! यह तुम्हारी ही रचना है। भरत हमारा भाई है और हम सब पर सूर्यवश की छाप लगी हे। सूर्यवशी कभी ऐसी नीचता नही कर सकता। तुम ही अपने पिता के सस्कारो का शिकार हो रही हो या दूसरो ने तुम्हे होली का नारियल बनाया है। आश्चर्य है कि तुम्हारे पेट से भरत का जन्म कैसे हुआ? पर कमल कीचड मे उत्पन्न होता है। कमल को जन्म देकर भी कीचड तो कीचड ही रहता है।

मैं सबके सामने स्पष्ट कर देता हू कि राम के सिवाय ससार मे किसी का सामर्थ्य नही, जो इस राजसिहासन को छू सके।

पिताजी राम के अधिकार का राज्य किसे दे सकते हैं मैं देख लूगा। राज्य प्रजा के लिये है, प्रजा के कल्याण का बोझ है और यह बोझा वही उठाएगा जिसे प्रजा का विश्वास प्राप्त है और जिसमे उसे उठाने की शक्ति है। राज्य किसी व्यक्ति – विशेष की पूजी नहीं है। वह चाहे जिसे नहीं सौंपा जा सकता है। वह एक पवित्र धरोहर है जो कुल–परम्परा के अनुसार ही दूसरो को सौंपी जाती है।

राजा लोग राज्य को अपनी बपौती की वस्तु समझते हैं। पर वास्तव मे प्रजा के कल्याण के लिये ही उन्हे राज्य सौंपा गया है। घर–घर की गाये ले कर ग्वाल उन्हे जगल मे चराने ले जाता हे, लेकिन गाये उसकी नहीं हें। वह तो केवल चराकर लाने वाला है ओर बदले मे अपनी चराई ले लेता हे। यही बात राजा के लिए है। राजा प्रजा की रक्षा करके अपना हक ले ले पर उनकी हानि न होने दे और प्रजा को अपनी पूजी न समझ बेठे। मगर आजकल तो उल्टी गगा बह रही है। राजा भोग–विलास मे डूबे रहते हें। प्रजा के कल्याण की चिन्ता उन्हे तनिक भी नही हे। तिस पर भी वे समझते हैं कि प्रजा हमारे चूसने की ही चीज हे।

लक्ष्मण क्रोध मे बोल रहे हें, मगर न्याय की बात ही कह रहे हें। वे कहते हैं कि राज्य प्रजा की सुख–शाति के लिये हे ओर राजमुकुट उसी के सिर पर रखा जाता हे जो बडा होता है। यह परम्परा हे। फिर दूसरा कोई

राज्य का अधिकारी किस प्रकार हो सकता है? वास्तव मे लक्ष्मण की दलील कोई कच्ची नही है।

दुनिया मे कहावत है, समुद्र के तूफान को और पृथ्वी के कम्पन को कौन रोक सकता है? कदाचित् यह कहावत झुठी भी हो जाय – इन दोनो को कोई रोक भी दे मगर लक्ष्मण के वीर रस से भरे कोप को कौन रोक सकता है? पर ससार मे सभी व्यवस्थाए हैं। आपको तो लक्ष्मण की वीरतापूर्ण बाते अच्छी लगी होगी किन्तु जरा राम का भी बल देखो। शारीरिक बल मे तो लक्ष्मण राम से भी बढकर हैं किन्तु राम का असली बल भिन्न ही प्रकार का है। लक्ष्मण के कोप के तूफान को केवल राम ही रोक सकते है।

लक्ष्मण की बात सुनकर राम ने सोचा – लक्ष्मण कुपित हो गया है और वह गजब कर डालेगा। अतएव उन्होने कैकेयी की ओर से दृष्टि हटाकर लक्ष्मण की ओर देखा और कहा – सौमित्र! तुम यह क्या कर रहे हो? जरा सभलो और देखो कि किधर जा रहे हो? तुम किस दर्जे से किस दर्जे पर पहुचना चाहते हो? तुमने जितना कह लिया, वही बहुत है। अब तुम्हे चुप रहना चाहिये।

लक्ष्मण ने विचार किया – चलो अच्छा हुआ इनसे भी दो बाते कहने का अवसर मिल गया है। यह सोचकर वे बोले – क्या मैं चुप रहू ? चुप कैसे रहू, जब कि माता आततायी बन गयी है और आप उसके आततायीपन का समर्थन कर रहे हैं। मुझे जो शिक्षा मिली और मैंने जो वीरता पाई है, वह इस तरह का अन्याय सह लेने के लिये नही है। अगर अन्याय सहना है तो कायरता ही भली फिर वीरता कब काम आएगी? मुझे आश्चर्य तो यह है कि न्याय–सगत बात कहने वाले को आप चुप करना चाहते हैं और सरासर अन्याय करने वाली माता को आप कुछ नही कहते वरन् उसका साथ दे रहे ह! यह तो अन्यायी को दण्ड न देकर न्यायी को दण्ड देना हे। माता के सामने आप चाहे जितनी नम्रता धारण करे ओर उन्हे कुछ भी वचन दे पर यह असम्भव हे कि भरत राजा हो जाय। भरत को राज्य नही मिलेगा। होगा वही जो कुल की परिपाटी हे। कुलधर्म के विरुद्ध कोई बात नही हो सकती। मै आपसे प्रार्थना करता हू कि आप अब यहा न ठहरे। दिन निकल आया हे। राज्याभिषेक का समय हो रहा हे आप सिहासन को शीघ्र सुशोभित करे। अगर बात बढती हे तो बढने दीजिये। मे आपके साथ चल रहा हू ओर देखता हू कौन आपके राज्य मे विघ्न डालता हे?

मैं जानता हू इस षड्यत्र मे ओर लोग भी शामिल होगे। मैं अकेला ही उन सब की खबर लूगा। मैं अकेला ही सारी पृथ्वी पर तूफान खडा कर सकता हू। आप मेरे पराक्रम को जानते हैं ओर में आपकी बगल मे खडा हू। फिर आप सिहासन पर क्यो नही बैठते? जो लोग आपके राज्य का विरोध करेगे, वे सब मेरे धनुष और खड्ग के शिकार होगे। मेरी क्रोधाग्नि उन्हे भस्म कर देगी। चलिये, देर हो रही है।

आप दयालु हैं। सोचते होगे कि अपने सगे–सम्बन्धियो को किस प्रकार दण्ड देगे? मगर आपको कुछ नहीं करना होगा। सब–कुछ करने वाला आपका यह सेवक प्रस्तुत है। आप सिहासन पर बैठकर मुझे आदेश–भर दे दीजिये। फिर मैं सब को देख लूगा।

आप फिर सकोच मे पडे हैं? इतने गहरे विचार की आवश्यकता ही क्या है? आपका दास आपके सामने हैं। वह सबको ठिकाने लगा सकता है।

राज्य न त्यागने के लिये राम को अच्छा अवसर मिल रहा है। वह यह कह सकते थे मैं क्या करू? मैं तो राज्य छोड रहा था पर लक्ष्मण नही मानता। राम, लक्ष्मण को सिखाकर भी नही लाये थे। वह तो स्वय ही बिगड खडे हुए थे। मगर राम ने इस अवसर से लाभ नही उठाया।

आप अपनी स्त्री के साथ जगल मे जा रहे हो ओर लुटेरा आकर आप से कहे कि अपने कपडे उतार दो अन्यथा तुम्हारा सिर काटते हें तो आप क्या करेगे? आप कपडा दे देगे?

वीर पुरुष किसी भी दशा मे अपना अधिकार नही खोते। सच्चा वीर अपने अधिकार की रक्षा के लिये हसते–हसते प्राण दे सकता हे। लुटेरे से डरकर जो अपने कपडे दे देता है उसके लिये अपनी स्त्री की इज्जत बचाना भी कठिन हो जायगा। कायर को सभी अपना शिकार समझते हे।

लक्ष्मण कहते हे – हम वीर हे कायर नही जो अपना हक खो द। जो अपने हक के कपडे देने को तेयार हो जाता हे वह कायर हे। हम क्षत्रिय प्राण दे देगे पर अपने हक का राज्य नही देगे। न्याय की बात हम सब मानेंगे। मगर अन्याय की बात विधाता की भी नही मानेगे। आप माता को समझाने का प्रयत्न कर रहे हें पर नागिन पुचकारने से नहीं मानती। उसे मनाने का ओर ही उपाय हे। नागिन के विष के दात उखाडने पडते हें। में यह सब ठीक कर लूगा।

कदाचित् राम इस मौके पर आपसे सम्मति लेते तो आप उन्हे क्या सम्मति देते? आप शायद यही कहते कि राज्य पर आपका अधिकार है आपको एक औरत के कहने पर ध्यान नही देना चाहिये। आप राजसिहासन पर बैठिये कौन क्या बिगाड सकता है?

लक्ष्मण को प्रतिबोध

आज के जमाने मे यही बात सबको प्रिय लगती है। आजकल मार–काट को ही न्याय के कपडे पहनाये जाते हैं। पर राम लोकोत्तर पुरुष थे। उनकी विचार–शक्ति अलौलिक और गम्भीरता अथाह थी। उन्होने कुपित लक्ष्मण की सब बाते शातिपूर्वक सुनली। उन्होने सोचा – इस समय लक्ष्मण का जोश ठडा हो जाने देना ही उचित है। उसे अपने दिल का गुबार निकाल लेने देना चाहिये। जब लक्ष्मण अपनी बात कह चुके तो राम हसते हुए लक्ष्मण से कहने लगे – भैया लक्ष्मण, शात होकर मेरी बात सुन। मै तेरी असाधारण वीरता को खूब जानता हू। मगर तेरी वीरता शत्रुओ को जीतने के काम आनी चाहिये आत्मीयजनो के लिये वह नही है। ससार की मोह–ममता ने तुझे बहका दिया है। इसीलिये तू मेरी बात को तुच्छ और भूलभरी समझता है। शुद्ध–बुद्धि से मेरी बात सुन और विचार कर।

लक्ष्मण! तुम उत्तेजना के वश होकर अप्रिय बात कर रहे हो। शाति के साथ बात को तोलो तो वास्तविकता मालूम होगी। उत्तेजना की स्थिति मे बात की वास्तविकता का पता नही चलता! तुम किस पर क्रोध कर रहे हो, यह जानते हो? चचलता छोडो। मैं जो–कुछ कहता हू वह सुनो। शात होओ।

लक्ष्मण की बात उचित और न्याय–सगत थी। लेकिन वे अपने भाई के पति अत्यन्त विनीत थे। अतएव राम की बात सुनने के लिये वे शात हो गये।

जैन रामायण के अनुसार वन जाने का प्रस्ताव स्वय राम ने ही किया था ओर तुलसी–रामायण के अनुसार कैकेयी ने उनके वनवास का भी वर मागा। पद्मचरित मे कहा है –

मयि स्थिते समीपेऽस्मिन् लोके भास्करसम्मते।
आज्ञैश्वर्यमयी कान्तिर्भरतेन्दोर्न जायते।।

राम कहते हैं – लोक मे में सूर्य के समान समझा जाता हू ओर भरत चन्द्रमा के समान ह। सूर्य की मोजूदगी मे चन्द्रमा की काति फैलती नहीं फीकी रहती है अत अगर में अवध मे रहा तो भरत का ऐश्वर्य चमक नही सकता। अतएव–

अन्ते तस्या महारण्ये विध्याद्रौ मलयेऽथवा।
अन्यस्मिंत्चार्ण वस्यान्ते पश्य मात कृत पदम्।।

माता! मैं किसी महान् अरण्य मे, विन्ध्याचल या मलय पर्वत मे अथवा किसी समुद्र के निकट आश्रम बना कर रहूगा। मैं भरत के राज्य मे विघ्न नहीं डालूगा।

स्वेच्छापूर्वक वन–गमन के इस वर्णन से राम की महिमा शतगुणी बढ जाती है और कैकेयी के चरित्र मे कालिमा भी नही आती। वस्तुत जैन रामायण का यह विवरण बहुत ही महत्त्वपूर्ण है लेकिन वनगमन की मुख्य घटना दोनो जगह समान है।

इसी कारण राम, लक्ष्मण से कहते हैं – मेरे रहते भरत राज्य नही करेगे, अतएव मैं वन जाने के लिये तैयार हू, यह जानकर तुम व्यर्थ क्रोध कर रह हो। तुम समझते हो कि यह बात राम के विषय मे हो रही है, इसी कारण तुम इसका विरोध कर रहो हो। अगर यही बात तुम्हारे सम्बन्ध मे होती तो तुम क्या करते? इसी प्रकार बोलते या पिताजी की बात मान लेते? तुमने विचार नही किया कि पिताजी क्या राम के वैरी हैं जो इस प्रकार का व्यवहार कर रहे हैं? जिस धर्म का पालन करने के लिये पिताजी इतना कष्ट सहन कर रहे हैं और उन्हे जो अनिष्ट है उसे भी करने के लिये तैयार हो गये हैं, उस धर्म को हम लोग इस कुल मे उत्पन्न होकर के भी कैसे भुला सकते हैं? जिस धर्म को पिताजी पाल रहे है मै उसमे किस प्रकार बाधक हो सकता हू?

लक्ष्मण! तुमने जो निन्दा की वह ओर किसी की नहीं सिर्फ धर्म की निन्दा है। तुम धर्मज्ञ और धर्मनिष्ठ पिता के पुत्र होकर ऐसा अनुचित व्यवहार कर रहे हो! तुम उनके पुत्र होकर भी धर्म का घात कर रहे हो? गुरुजनो का आदेश मुकुटमणि की भाति शिरोधार्य होना चाहिये। उसे ठुकराना उचित नही हे। पिताजी जिस व्यवस्था के विचारमात्र से इतने व्यथित हो रहे हे धर्म के लिये वही व्यवस्था कर रहे हैं। तुम उसी व्यवस्था को टाल रहे हो? भेया तुम्हारी बुद्धि आज इतनी चचल क्यो हे?

अनुज! हमारे और तुम्हारे सिर पर पिताजी का कुछ ऋण हे या नही? पिताजी का हमारे ऊपर जो ऋण हे उसके सामने यह राज्य मानो तृण हे। उस ऋण के बदले यह तृण त्याग देना क्या कठिन हे? राज्य क्या चीज है? पितृ–ऋण चुकाने के लिये मे प्राण भी त्याग सकता हू। तुम अपने मन को काबू मे करो। फिर यह सोचो कि ज्येष्ठ पुत्र को राज्य मिलना अगर कुल की रीति हे तो पिता की आज्ञा का पालन करना क्या कुल की परम्परा नही है? अगर मन पर शासन कर लिया तो अयोध्या छोड सारे ससार का राज्य

अपना ही है। फिर इस तुच्छ राज्य के लिये इतनी चचलता धारण करके तुम कहते हो कि चलो सिहासन पर बैठो और मैं आततायी को दण्ड दिये बिना नही रहूगा।

सौमित्र! तुम समझते होगे कि राज्य न मिलने से आज भाई का गौरव घट गया है, लेकिन मैं कहता हू कि आज मुझे जो गौरव मिला है वह ससार मे कभी किसी को नही मिला। इस गौरव को पाने के लिये मुझे बधाई दो और मेरी बात पर विचार करके शान्त होओ। मेरे प्यारे भ्राता! आओ, आज हम हर्ष मनाएगे।

इतना कहकर राम ने लक्ष्मण को गले लगाने के लिये अपनी विशाल भुजाए फैला दी। राम उस समय लक्ष्मण को गले क्या लगा रहे थे, मानो त्रिलोकी की सपदा को गले लगा रहे थे। राम ने अगर राज्य ले लिया होता तो आज ससार उनके गुणो का गान न करता। मगर उन्होने राज्य का त्याग करके ससार को आदर्श दिखा दिया। उनके उच्च त्याग के कारण ही तो आज हम लोग उनका यशोगान करते हैं।

राम ने कहा – आओ लक्ष्मण! मेरे कठ से लग जाओ। इस तरह कहकर उन्होने लक्ष्मण को अपनी बाहो मे ले लिया। लक्ष्मण को अपनी अकवार मे ले लेने के बहाने मानो उन्होने ससार को अपनी गोद मे ले लिया।

राम की बात सुनकर लक्ष्मण का क्रोध शान्त हो गया उन्होने सोचा–

किमनेन विचारेण कृतेतानुचितेन मे।
ज्येष्ठस्तातश्च जानाति, साम्प्रतासाम्प्रत बहु।।

लक्ष्मण ने पहले आवेश मे आकर जो विचार किया था, वह उन्हे अनुचित जान पडा। वे सोचने लगे – खैर उक्त प्रकार का अनुचित विचार करने से क्या लाभ है? ज्येष्ठ भ्राता राम और पिताजी मुझसे अधिक समझदार है। मेरी अपेक्षा उचित–अनुचित का न्याय–अन्याय का ज्ञान उन्हे अधिक है। उन्होने जो निश्चय किया सो उचित ही होगा।

सितकीर्ति समुत्पत्ति र्विधातव्या हि न पितु ।
तूष्णीमेवानुगच्छामि ज्यायस साधुकारिणम्।।

हमे ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये जिससे पिताजी की उज्ज्वल कीर्ति इस भूमण्डल मे सर्वत्र फैले। ज्येष्ठ भ्राता जो–कुछ करते हैं वह कभी बुरा नही हो सकता। अतएव मुझे उन्ही का अनुसरण करना चाहिये। मैं उनके साथ–साथ वन को जाऊगा।

इस प्रकार राम और लक्ष्मण मे जो वार्तालाप हुआ उसमे राम के तत्त्व की विजय हुई। राम का उपदेश लक्ष्मण को लक्ष्य करके दिया गया है। मगर

वह सिर्फ लक्ष्मण के लिये नहीं हे। लक्ष्मण अब इस ससार मे नहीं है। उनके लिये ही उपदेश होता तो अनेक ग्रन्थो मे उसका उल्लेख करने की आवश्यकता ही न होती। वास्तव मे राम का अमर उपदेश सारे जगत् के लिये हे। जो लोग माया के जाल मे फसे हैं और अपने स्वार्थ को ही सबसे ऊपर समझते हैं उन्हे राम का यह उपदेश बहुत लाभदायक है।

लक्ष्मण राम के चरणो मे गिर गया। राम ने उन्हे प्रेम के साथ उठाकर फिर अपनी छाती से लगाया। सासारिक दृष्टि से लक्ष्मण के विचार सत्य थे मगर तात्त्विक दृष्टि से राम के विचार सत्य थे। अतएव लक्ष्मण उनसे कहने लगे – अब मैं आपका अनुचर – सेवक ही रहूगा ओर अपनी बुद्धि न दौडा कर आप जो कहेगे, वही करूगा।

लक्ष्मण का कथन सुनकर राम को सन्तोष हुआ। कैकेयी ने सोचा चलो, तूफान आया था, सो चला गया।

दशरथ को पुनः आश्वासन

इस प्रकार लक्ष्मण को शान्त हुआ देखकर राम और कैकेयी को प्रसन्नता हुई। दशरथ के मन मे लक्ष्मण के वचन सुनकर आशा का जो सचार हुआ था वह समाप्त हो गया। उन्होने सोचा था – लक्ष्मण मेरी बात सुधार रहा है। शायद मेरी आन्तरिक आशा सफल हो जाय। मगर जब लक्ष्मण शान्त हो गये तब दशरथ ने निराशा के साथ सोचा – राम ने बना–बनाया खेल फिर बिगाड दिया।

पिता को दुखी देखकर राम उनकी ओर मुडे। कहने लगे – तात! आपका मुख–कमल क्यो मुरझाया हुआ है? माताजी ने आपको उदासी का कारण मुझे बतला दिया है और हम दोनो मा–बेटे आपस मे समझ गये हें फिर आप उदास क्यो हें? पुत्र का कर्तव्य पिता को धर्म मे स्थिर करना भी हे बल्कि उसका यह सर्वोच्च कर्तव्य है। अतएव मे आपसे कुछ प्रार्थना करना चाहता हू।

तात! मैं यह प्रार्थना करना चाहता हू कि आपका मुझ पर इतना मोह क्यो हैं? धर्म के सामने में क्या चीज हू? असली वस्तु तो धर्म ही हे। थोडी देर के लिये मान लीजिये कि आपकी आन्तरिक अभिलाषा पूरी करने के लिए माताजी की बात न मानी जाय ओर भरत को राजा न बनाया जाय में स्वय राजा बन जाऊ तो उस अवस्था मे कितना द्रोह होगा? कदाचित माता और

भाई के साथ द्रोह न हुआ फिर भी धर्म के साथ द्रोह होगा ही। फिर इस तुच्छ बात के लिये धर्म–द्रोह क्यो करना चाहिये? मै आपका पुत्र हू, फिर भी ढिठाई करके आपसे यह निवेदन करने का दु स्साह करता हू। यो तो सभी लोग पिता–पुत्र का सम्बन्ध मानते है मगर मैं मानता हू कि मेरा और आपका सम्बन्ध सासारिक ही नही धार्मिक भी है। क्या मै आपकी आज्ञा का पालन न करू? अथवा माता को जो वचन दिया है उसे पूर्ण न होने दू? मैं आपके सत्य को भग नही होने दूगा। आपका वचन मेरा भी वचन है।

राम अपने अधिकार का राज्य दे करके भी पिता के वचन का पालन करने के लिये तैयार हुए है और पिता के वचन को अपना ही वचन मान रहे है। इस पर आप लोगो को विचार करना है, आप को अपना दिल टटोलना है। आज ससार मे कहाँ इतनी उदारता पितृभक्ति और नैतिकता है? आज के लोग अपने पिता के दस्तखत से भी मुकर जाते और वकील लोग कोई–न–कोई मार्ग निकाल कर उनकी सहायता करके अनैतिकता को उत्तेजना देते है। ऐसा करने वालो ने राम की कथा का महत्त्व नही समझा।

राम चाहते तो कह सकते थे कि राज्य आपकी निजी सम्पत्ति नही है। आपको उसका दान करने का अधिकार ही क्या है? और जब आपने कैकेयी को वचन दिया था तब मेरा जन्म भी नही हुआ था। फिर मैं आपके वचन के कारण राज्य से वचित कैसे हो सकता हू? लेकिन राम आधुनिक कृतघ्न लडको के समान नही थे। वे कहते है कि आपने जो दिया है उससे मे भी बधा हुआ हू। अब अगर वचन–भग होगा तो धर्म के प्रति द्रोह होगा। मेरा और आपका अस्तित्व धर्म पर ही टिका है। धर्म डूबा तो आप और हम भी डूबे बिना नही रहेगे। साथ ही अगर मै आपकी आज्ञा अस्वीकार करूगा तो यह जगत को उलटा पाठ पढाना होगा। ससार के लोग हसेगे और हमारे कुल की पवित्रता खडित हो जाएगी। ससार का समस्त वैभव नाशवान् है और धर्म अविनाशी है। नश्वर वैभव के लिये अविनाशी धर्म का उपहास होने देना उचित नहीहे।

साधारणतया देखा जाता है कि मतलब की बात मे लोग लोकापवाद की परवाह नही करते। मगर ज्ञानीजन इसका विचार भी करते हैं। सीता सर्वथा निर्दोष थी लेकिन लोकापवाद से बचने के लिये एक धोबी के कहने पर उन्हे वन मे भेजना पडा। जिन्होने इतना महान त्याग किया उन्होने जगत को लोकापवाद से बचने की शिक्षा कहकर नही करके दी है। सीता को वन मे छोड कर राम क्या कम दु खी हुए थे? मगर लोकापवाद से बचने के लिये उन्होने यह दु ख धैर्य के साथ सहन किया।

राम कहते है – पिताजी! अगर माता को दिया हुआ वचन पूरा न किया गया तो दुनिया कहेगी कि यह सब कपट की महिमा हे। में प्रतिज्ञा कर चुका हू कि भरत को राजगद्दी पर बिठलाऊगा। अब उस प्रतिज्ञा को भग करके यदि राज्य ले लू तो लोग यही समझेगे कि वह सब राम की पोपलीला अर्थात् कपटलीला थी। भीतर से वह भी राज्य पर कब्जा जमाना चाहता था। इस प्रकार जगत् मे धर्म पर अविश्वास फेल जाएगा ओर ससार रसातल मे चला जायेगा।

पिताजी! दिये वचन का पालन न करना कपट होगा। ऐसा करने से मा के प्रति अन्याय होगा ओर हमारे वश की यह मर्यादा नष्ट हो जाएगी–

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाहि पर वचन न जाई।।

राम, वश की रीति का पालन करने के लिये कहते हें। इसका यह अर्थ नही समझना चाहिये कि पिता अगर रोगी हे तो पुत्र को भी रोगी होना चाहिये। अगर पुत्र रोगी न हुआ तो कुल की रीति का भग हो गया। कुल की जो परम्परा उस कुल वालो के कल्याण के लिये पूर्वजो ने प्रचलित की हे जिसके सहारे पर उस कुल की उच्चता धार्मिकता एव नैतिकता टिकी रहती है और जिससे दूसरो को भी अच्छी शिक्षा मिलती हे वही परम्परा अनुकरणीय है। उसे भग नही होने देना चाहिये। उसे भग करना अपने कुल को कलक लगाना है।

राम ने फिर कहा – तात! आपने इस वश की मर्यादा का उल्लेख करके माता को वचन दिया था। अब अगर हम उस मर्यादा का पालन नही करते तो पापमार्ग को बढाने वाले ठहरते है। क्या हमारे लिये यही उचित होगा? आप यह न सोचे कि केकेयी ने रग मे भग कर दिया हे। माता का इसमे तनिक भी दोष नही हे। जब माता ने युद्ध मे आपकी सहायता की तो आपने वर दिया तो उसे मागने का उन्हे पूर्ण अधिकार हे। मे सत्य कहता हू कि इसमे माता का लेश मात्र भी दोष नही हे। आपको दु ख क्यो होता हे? क्या आप मुझमे ओर भरत मे अन्तर समझते हें? वास्तव मे जो राम हे वही भरत हे ओर जो भरत हे वही राम है। दाहिनी ओर बायी आख मे क्या फर्क हे? जो सोना दाहिनी आख से दिखाई देता हे वही बायी आख से भी दिखाई देता हे। बायी आख से वह लोहा नजर नही आता। इस प्रकार जब दो आखो मे अन्तर नही हे तो राम ओर भरत मे क्या अन्तर हो सकता हे? हम दोनो को एक ही समझिये। उठिये धर्म–पालन करने के समय दु खी होना आपका

शोभा नही देता। धर्म का अपमान मत होने दीजिये। उठकर भरत का राज्याभिषेक कीजिये जिससे आपके वचन की रक्षा हो माता की इच्छा सफल हो और मेरी साख कायम रह सके। भरत को राज्य मिलने पर मै इस उत्तरदायित्व से बचा रहूगा तो दूसरा कोई महत्त्वपूर्ण कार्य करूगा।

राम के इन विचारो मे कितनी सरलता और समता है! उन्होने अपने विचारो से विष को अमृत बना दिया। इस प्रकार ससार मे अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। इसी से कहा है–

न जाने ससारे किममृतमय कि विषमयम्?

राम के विचार सुनकर आप किस ओर रहोगे? अमृत की ओर या विष की ओर? स्वय अपने शत्रु न बनकर राम की वाणी पर विचार करो तो बेडा पार हो जायगा।

राम का कथन सुनकर दशरथ से न रहा गया। वे राम से कहने लगे – 'राम तुम्हारा महत्त्व आज वास्तविक रूप से प्रकट हुआ है। मुझे विश्वास हो गया है कि तुम साधारण मानव नही हो। तुमसे ससार का कोई महान् कल्याण होगा। तुम्हारे परमोच्च और उदारतर विचार ससार का पथ– प्रदर्शन करेगे। तुमने इस समय मुझे सकट से पार किया। वत्स! तुम जैसा पुत्र पाकर मैं धन्य हुआ और रघुकुल ऊचा उठ गया।

राम की वाणी की उपमा किस वस्तु से दी जाय? राम की तरह आप ही जहर को अमृत बनाना सीखो। अगर इतना न कर सको तो कम से कम इतना तो करो कि जहर मत बनाओ। जो अच्छा काम करता हो उसे पोत्साहन दो अगर न दे सको तो धिक्कार मत दो।

भरत के राज्याभिषेक की तैयारी

अन्त मे दशरथ ने मत्री को बुलवा कर भरत के राज्याभिषेक की तयारी करन का आदेश दिया। उन्होने कहा – मत्री जल्दी करो! जिससे मैं दीक्षा भी ले सकू ओर मेरा वचन भी पूरा हो जाय।

दशरथ अपने मत्री को यह आदेश दे रहे थे कि उसी समय खबर पाकर भरत वहा आ पहुचे। उन्होने दशरथ से कहा–पिताजी इस समय क्या ऐसा चल रहा है?

राम – जो चल रहा है अच्छा ही है। लो मैं तुम्हे सुनाता हू। पिताजी ने माता को एक युद्ध के समय वर दिया था। युद्ध मे पिता पर शत्रु टूट पडे

थे। माता ने कुशलता के साथ पिताजी की रक्षा की थी। माता की कृपा से ही पिता का जीवन रह सका था। उस समय पिताजी ने प्रसन्न होकर माता को वर देना स्वीकार किया था। माता ने वह वर अब माग लिया हे ओर पिताजी ने दे दिया है। बस, यही बात है।

भरत – मगर वह वर क्या हे? क्या में यह जानने का अधिकारी नही हू?

राम – क्यो नही भाई तुम अधिकारी क्यो नही हो। माता ने तुम्हारे लिये राज्य मागा है। पिताजी ने मत्री को आज्ञा दे दी हे कि भरत के राज्याभिषेक की तैयारी शीघ्र की जाय।

भरत ने मत्री को रोक कर कहा – ठहरो। जल्दी मत करो। मुझ से बिना पूछे ही राज्य कैसे! मैं राज्य का अधिकारी नही हू।

भरत ने दशरथ से कहा – पिताजी मुझे राज्य नही चाहिये। राज्य तो दु ख का घर है। में आपसे पहले ही कह चुका हू कि मुझे आपके साथ सयम ग्रहण करना है। आप स्वय जिस पथ पर अग्रसर होना चाहते है वह अगर सत्य पथ है तो मैं भी उसी पथ पर प्रयाण क्यो न करू? आप जिस राज्य को पाने की तैयारी कर रहे हैं, मुझे उससे वचित क्यो करते हैं ? ससार के भोगो पभोग मुझे नही रुचते। मै आपके साथ ही मुनि दीक्षा अगीकार करूगा। मैं त्रिलोक का राज्य चाहता हू। अवध के राज्य से मुझे सतोष नही होगा।

दशरथ ने कहा – भरत! तुम्हारे विचार बहुत ही सुन्दर हे। सयम का पालन करके अक्षय राज्य प्राप्त करना ही मनुष्य के जीवन का उद्देश्य होना ही चाहिये। लेकिन अच्छे कार्य के लिये भी अवसर देखा जाता हे। अतएव–

भज तावत्सुख पुत्र! सार मनुजजन्मन ।
नवेन वयसा कान्त वृद्ध सम्प्रव्रजिश्यसि।।

अर्थात् पुत्र! अभी तुम नवयुवक हो। प्रव्रज्या लेने की उतावली मत करो। योवनावस्था मे मनुष्य–जीवन के सार–भूत सुखो का भोग करके वृद्धावस्था मे प्रव्रज्या ग्रहण करना।

भरत – पिताजी क्यो मुझे वृथा मोह के जाल मे फसाते हैं? मोत बालक तरुण ओर वृद्ध मे भेद नही करती। कोन कह सकता हे कि बुढाप तक में जीवित रहूगा ही? अतएव–

अनुमन्यस्य मा तात नितान्त जन्मभीरुकम्।
करोमि विधिनारण्ये तपो निवृत्तिकारणम्।।

अर्थात हे तात! मै जन्म-मरण के भय से भीत हू। वन मे जाकर मोक्ष-पाप्ति के लिये विधिपूर्वक तप करने की मुझे अनुमति दीजिये।

दशरथ – पिय पुत्र! तुम्हारे उच्च विचार सुनकर मुझे प्रमोद होता है। वह पिता धन्य है जिसके पुत्र ऐसे धर्मशील और उदार हृदय हैं। मगर तुम्हे ज्ञात ही है कि तुम्हारी माता ने तुम्हारे लिये राज्य मागा है। अगर तुम राज्य स्वीकार न करके पव्रज्या अगीकार करोगे तो वह तुम्हारे वियोग-शोक मे अपना पाण दे देगी। क्या अपनी माता को इस पकार कष्ट पहुचाना पुत्र का कर्तव्य है?

राम – भ्राता! पिताजी ने उचित ही कहा है। अभी तुम्हारी उम्र तपस्या करने योग्य नही है। अतएव तुम राज्य स्वीकार कर लो और पिताजी की चन्द्रमा सरीखी निर्मल कीर्ति ससार मे फैलाओ! शोक के आवेग मे आकर अगर माता ने पाण त्याग दिये तो कितना अनिष्ट होगा? तुम सरीखे महाभाग पुत्र की मौजूदगी मे माता की यह दशा होगी तो ससार क्या कहेगा?

पिताजी की प्रतिज्ञा का पालन करने के लिये हम लोग अपना जीवन भी निछावर कर सकते हैं। ऐसी दशा मे तुम विवेकशाली होने पर भी पिताजी के सत्य की रक्षा करने के लिये राज्यलक्ष्मी ग्रहण नहीं करते? पिताजी की कीर्ति अक्षुण्ण रखने के लिये जो शरीर त्याग सकता है वह राज्य ग्रहण न करे यह आश्चर्य की बात है!

भरत! एक बात मैं स्पष्ट कर देता हू। तुम्हे मेरी ओर से किसी किस्म की आशका नही रखनी चाहिये। मै अयोध्या का परित्याग कर दूगा और तुम इच्छानुसार स्वतन्त्रतापूर्वक राज्य करना। मैं कहीं ऐसी जगह निवास करूगा कि किसी को पता भी नही चलेगा। मेरी ओर से तुम्हे कोई बाधा नही होगी।

गुरुजनो की आज्ञा मानकर गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए प्रजा की रक्षा करो। इस समय कुल की कीर्ति कायम रखने का यही उपाय हे।

भरत की अस्वीकृति

राम का कथन सुनकर भरत के हृदय मे उथल-पुथल होने लगी। वह कहने लगे – मे पहले ही समझ चुका हू कि ससार का ऐश्वर्य विपत्ति की जड है। इधर अयोध्या का राज्य मिलेगा उधर ज्येष्ठ भ्राता का वियोग होगा! जिस राज्य के मगलाचरण मे ही ऐसा घोर अनर्थ मौजूद हे आगे चलकर उससे क्या बुराइया पेदा नही होगी? मे राजा बनूगा और मेरे ज्येष्ठ भ्राता [illegible] मे भटकते फिरेगे? धिक्कार ह ऐसे राज्य को क्या यही कुल की मर्यादा

है? कुल की मर्यादा का लोप नही होने देना हे तो राम को ही राज्य सिहासन पर बैठाना चाहिये। राम ही राजा होने के योग्य हैं ओर वही अधिकारी हैं। मैं उनके पीछे छत्र लेकर खडा होऊगा, शत्रुघ्न उन पर चवर ढुलायेगा ओर लक्ष्मण उनके मन्त्री होगे। तभी अवध का राजसिहासन सुशोभित होगा।

यह बात तो जगत्–प्रसिद्ध है कि बडा भाई राजा होता है। फिर इस प्रसिद्ध बात के विरुद्ध गडबड क्यो मचाई जा रही हे। राम को राज्य देने की तैयारी हो चुकी है। सब जगह ढिढोरा पिट चुका हे और अब मुझे राज्य दिया जाय, यह भी कोई बात है।

इसके अतिरिक्त, मैंने कब राज्य की अभिलाषा की थी? माताजी को क्या पडी थी कि उन्होने मेरे लिये राज्य मागा?

राम विरोधी हृदय ते, प्रकट कोन विधि मोहि।

मुझे इस बात का बडा दुख हे कि मेरा जन्म रामविरोधी हृदय से हुआ है। यह मेरा दुर्भाग्य हे, लेकिन माता की बात मानकर कुल और धर्म की मर्यादा का उल्लघन करना किसी भी प्रकार उचित नही हे। कुल की मर्यादा का प्रत्येक परिस्थिति मे पालन होना चाहिये।

भरत की बात सनुकर लक्ष्मण प्रयत्न करके भी अपने आपको शात न रख सके। कहने लगे – देखिये, भरत भी वही कहता है जो मैंने कहा था। आखिर जो उचित है वह अनुचित केसे हो सकता है?

भरत फिर कहने लगे – माता पूजनीया अवश्य है पर पिता के पीछे। वश पिता से ही चलता हे। माता ने मुझे जन्म दिया हे परन्तु पिता के प्रति मेरा जो धर्म है उसे मैं नहीं भूल सकता। इसलिए राज्य तो राम को ही मिलेगा। अगर राम राजा न बनाए गये तो लोगो मे पिताजी की हसी होगी। लोग कहेगे, स्त्री की बातो मे आकर जो करना चाहिये था उससे उल्टा कर बैठे।

भरत की उक्तिया भी पोची नही हे। उसके कथन मे ओचित्य हे सत्य हे ओर विनम्रता भी हे। उसका तर्क सहज ही खडित नही किया जा सकता। महाराज दशरथ भरत की उक्ति सुनकर फिर दुविधा मे पड गये। सोचने लगे – यह फिर नया विघ्न उपस्थित हो गया? केकेयी राम ओर लक्ष्मण ने भरत को राज्य देना स्वीकार कर लिया तो भरत राज्य लेना स्वीकार नही करता। अब क्या करना चाहिये?

इस प्रकार विचार कर दशरथ ने कहा – वत्स भरत! क्या तुम मुझ प्रतिज्ञा से पतित करना चाहते हो? मे किसी साधारण कार्य से राम का राज्य

तुम्हे नही सौप रहा हू। मैं प्रतिज्ञा के बन्धन से बधकर ही ऐसा कर रहा हू। रघुकुल की यही रीति है कि प्राण चाहे जाय, पर प्रण न जाय। तुम्हारी मा मेरा सारथि है।

ग्रन्थकारो ने बुद्धि को आत्मा का सारथि बताया है। उन्होने शरीर को रथ और इन्द्रियो को घोडा कहा है। आत्मा शरीर रूपी रथ मे बैठा हुआ है। बुद्धि सारथी बनकर रथ को चला रही है और मुक्ति की ओर ले जाती है। मुक्ति की साधना के लिये ही शरीर–रथ मिला है। इस अनुपम रथ को पाकर भी अगर कोई मुक्ति की ओर जाने के बदले नरक के मार्ग पर चलता है तो वह रथ से विपरीत काम लेता है।

दशरथ कहते है – मेरा रथ और रथ के घोडे अस्तव्यस्त हो रहे थे। उस समय तुम्हारी माता ने सारथि बन कर मेरी रक्षा की थी। बुद्धि जब बिगड जाती है तो वह मोक्ष मे पहुचाने के बदले नरक मे पहुचा देती है, उसी तरह मेरे रथ के घोडे बिगड कर भाग रहे थे और रथ टूटने ही वाला था। मेरे रथ की धुरी टूट भी गई थी। उस समय तुम्हारी माता ने सारथि बन कर मेरी बडी सहायता की और मेरा रथ पार लगाया। उसी की बदौलत मैं शत्रुओ पर विजय प्राप्त कर सका था और अपने प्राणो की रक्षा कर सका था। भोग–विलास या कामान्धता के वश होकर वर नही दिया था। हम दोनो ही उस वचन मे बद्ध है। ऐसी स्थिति मे मेरा वचन–भग करना तुम्हारे लिये क्या उचित होगा?

भरत कहने लगे – वह सब ठीक है पर मै भी सूर्यवशी हू, इक्ष्वाकु कुल मे मैंने जन्म लिया है। मैं अपनी सयम लेने की प्रतिज्ञा किस प्रकार तोड सकता हू? मै माता से प्रार्थना करूगा कि इस वर के बदले मे और कुछ माग ले। अगर उन्हे राज्य ही मागना है तो लक्ष्मण या शत्रुघ्न के लिये मागे। मैं इस खटपट मे नही पडना चाहता। मे आपके साथ दीक्षा लूगा।

भरत का पक्का इरादा सुनकर राम को बडी चिन्ता हुई। उन्होने सोचा – भरत अड गया है। अब किस प्रकार बिगडती बात सुधारी जाय?

हालाकि राम के लिए यह बडा अच्छा मोका था वह कह सकते थे कि राज्य देने की मेरी इच्छा होने पर भी अगर भरत नही लेता तो मैं क्या करू? मगर राम जो–कुछ कह रहे थे सच्चे मन से कह रहे थे। उनके कथन मे तनिक भी दिखावा नही था। अतएव उन्होने भरत से कहा – भरत तुम यह क्या कर रहे हो? तुम राज्य के लोभी नही हो यह मै जानता हू। अगर तुम्हारे हृदय मे राज्य का लोभ होता तो तुम दोषी कहला सकते थे। मगर यह सोचकर राज्य स्वीकार करलो कि वृद्ध पिताजी के आत्मकल्याण मे विघ्न

नही होना चाहिये। तुम्हे राज्य देने मे मेरी पूर्ण सहमति हे। मे अपनी ओर से तुम्हे आश्वासन दे ही चुका हू। जेसे तुम, जेसे हम। हम मे ओर तुम मे क्या अन्तर हे? भाई, पिता के श्रेयस् मे विघ्न डालने वाला सुपुत्र नही कहलाता।

राम–चरित्र कितना पावन है। उसमे केसी सुन्दर ओर कल्याणकर शिक्षाए भरी हे। भेद–भाव के विरुद्ध यह कितना अच्छा आदर्श हे? इसी से कहते है–

शिक्षा दे रही जी हमको, रामायण अति प्यारी,
राज–तख्त को गेंद बना कर, खेलन लगे खिलाडी।
इधर राम उधर भरत ने, दोनो (ने) ठोकर मारी।। शिक्षा।।

राम और भरत के लिये राज्य भी एक खेल की चीज बन रही हे। गेद खेलने वाले गेद को ठोकर मार कर अपने सामने वाले की ओर भेजता है और सामने वाला भी इसी तरह ठोकर लगा कर दूसरे की ओर भेज देता है। गेद दोनो ओर से ठुकराई जाती हे ओर इसी मे खेल का मजा हे। अगर एक आदमी गेद पकड कर बेठ जाय ओर दूसरे को न दे तो खेल होगा ही नही। यहा राम ओर भरत राज्य रूपी गेद को ठुकरा रहे हे। राम कहते हे – भरत को राज्य लेना चाहिये ओर भरत कहते हैं – नही मुझे नही राम को राज्य अगीकार करना चाहिये।

बन्धुओ! राम ओर भरत के साथ अपनी तुलना करो। क्या इस प्रकार की उदारता तुम्हारे अन्त करण मे है? तुम तुच्छ से तुच्छ चीज को अपने अधिकार मे लेने के लिये भाई से झगडते तो नही हो? जिस देश मे राम ओर भरत का ऊचा आदर्श हे उस देश के निवासी भाइयो मे आपस का कलह होना बडे खेद की बात हे। ऐसा महान् आदर्श भारत को छोडकर अन्यत्र कहा मिल सकता हे?

राम कहते हे – पिताजी के दिये वचन का पालन करना हमारा आर तुम्हारा कर्तव्य हे। पिता की आज्ञा न मानना अनुचित हे। इसलिए हे भरत! तुम इन्कार मत करो। राज्य स्वीकार कर लो।

भरत – पिता की आज्ञा मानकर राज्य देने के कारण आप विनीत ठहरते हे ओर म आज्ञा न मानने से अविनीत सिद्ध होता हू। लेकिन आपकी बात कुछ ओर हे। पिता की आज्ञा मानने से आपको राज्य का त्याग करना पडता हे किन्तु राज्य लेकर म तो एकदम भिखारी बन जाऊगा। मुझे अपना हृदय ही कुचलना होगा। अतएव कृपा करके आप यह आग्रह मत कीजिय।

इस प्रकार कहते–कहते भरत की आखो मे आसू बहने लगे। उनका हृदय गद्गद हो गया। राम के चरण छूकर और हाथ जोडकर कहने लगे – भ्राता! आप मेरे पिता माता भ्राता और रक्षक हैं। मैं आपको पिता से अधिक समझता हू। मैं आपके सामने अधिक क्या कहू। सौ बात की एक बात यही है कि आपके होते मैं राजसिहासन पर नही बैठ सकता हू। मैं आपको उस पर बैठा देखना चाहता हू। आप ही दया करके उसे स्वीकार करे। माता ने वर माग लिया और पिता ने दे दिया। मैं राज्य पा चुका हू। अब मै अपना राज्य आपके चरणो मे अर्पित करता हू। मेरी यह तुच्छ भेट स्वीकार करके आप राजसिहासन को अलकृत कीजिये। राज्य तो आपको ही स्वीकार करना होगा। मैं राज्य नही करूगा।

भरत की बाते सुनकर कैकेयी हैरान थी। वह सोच रही थी, मेरा पुत्र भरत तो विचित्र मूर्ख है! मैं पति के सामने, राम–लक्ष्मण और अवध की प्रजा के सामने बुरी बनी मैंने इतना प्रपच किया अब यह कहता है कि मैं राज्य नही लूगा। यह लडका अब अभागा जान पडता है।

कैकेयी की आखे देखकर राम ने समझ लिया कि भरत की बाते माता को रुचिकर नही हैं। माता अब भी भरत को राजा बनाना चाहती है और भरत राज्य लेने को तैयार नही होता। बडी विचित्र परिस्थिति है। अब समस्या किस प्रकार हल की जाए?

राम की वनगमन–प्रतिज्ञा

जब कोई विकट समस्या सामने हो और उसके सुलझाने का उपाय न सूझता हो तब कोई–न–कोई उपाय खोज निकालना ही पडिताई है। राम ने इस समस्या का हल सोच लिया। उन्होने मन ही मन कहा ठीक तो है भरत से मे बडा हू। मेरे सामने वह राजसिहासन पर कैसे बैठ सकता है! और जब तक माता की इच्छा पूरी न हो तब तक वह भी किस प्रकार सतुष्ट हो सकती हे? भरत के राजा न होने पर उनके मागे वर का क्या फल हुआ? पिताजी के दिये वचन का भी कैसे पालन हो सकता है? मैंने जो स्वप्न देखा था उसके अनुसार जगत के कल्याण का अवसर आ गया है। यही अनुपम अवसर ह। यह सोच कर राम ने कहा – भरत! तुम्हारा कहना सही है। मैं तुम्हारी कठिनाई को समझता हू ओर उसे दूर करने का उपाय भी मैं किये देता हू।

राम ने दशरथ से कहा – पिताजी! भरत की बात ठीक है। मेरे रहते राज्य ले लेने से उसे कलक लगेगा। अतएव मुझे अभी वन जाने की आज्ञा दीजिये। मेरी अनुपस्थिति मे भरत राज्य लेगा तो उस पर कलक नहीं आएगा। माता का मनोरथ पूरा हो जायगा और आपका वचन भी रह जाएगा। इसमे तनिक भी सकोच मत कीजिये। इस उलझन को सुलझाने का और कोई इससे अच्छा उपाय नही है। इससे मेरा भी कल्याण होगा ओर मैं अपना महान कर्तव्य पूरा कर सकूगा।

भरत सोचने लगा – 'चौबेजी छब्बे बनने चले और दुबे ही रह गये'। मैं तो यह चाहता हू कि राम राज्य ग्रहण करे और राम स्वय वन जाने का प्रस्ताव उपस्थित करते हैं! कैसी मुसीबत है?

दशरथ सोचते हैं – 'धन्य राम! तेरे जैसा सपूत बेटा पाकर मैं निहाल हो गया। जिसका शरीर मक्खन–सा कोमल है वह जगलो मे भटकता फिरेगा और वह भी अपने भाई को राजा बनाने के लिये!

जिनकी लगन राम से लगी है। उनकी बात और है तथा जिनकी लगन हराम से है, उनकी बात और है। एक ही वस्तु को देखकर राम से भी लगन लग सकती है और हराम से भी। कहावत है–

राम नाम जपना, पराया माल अपना।।

इस तरह का जपना राम का जपना है या हराम का जपना है? जो लोग हराम के लिए राम से प्रीति करते हैं समय आने पर वे खराब भी हो जाते हैं। ज्यो ही उन्हे हराम नही मिला कि राम से उनका प्रेम टूटा।

कैकेयी को पहले राम पर प्रीति थी पर हराम से अर्थात राज्य से प्रीति होते ही राम की प्रीति टूट गई। जो हराम को ही सर्वस्व समझेगा वह राम की प्रीति से वचित हो जाएगा।

राम फिर कहने लगे – वास्तव मे भरत का कहना यथार्थ है। वह मेरे रहते राज्य नही ले सकता। मेरे लिये भी यह उचित नही होगा कि भरत को राज्य देकर मै घर मे बैठा रहू। राजा प्रजा की सेवा के बदले मे ही राज्य का टुकडा खा सकता है। अगर मैं प्रजा की सेवा किए बिना ही टुकडे खाऊगा तो वह हराम का खाना होगा। अतएव में अयोध्या मे न रह कर किसी वन मे जाता हू ओर वन–फल खाकर अपना निर्वाह करूगा। जो लोग पाप मे पडे हुए हें उन्हे पाप से बचाऊगा। भरत यहा का काम करेगे में जगल का काम करूगा। भरत को राज्य देकर में यहा रहा तो भरत पर प्रजा का ` नही उमडेगा ओर प्रजा मेरी ओर ही झुकी रहेगी।

राम के इस अद्भुत त्याग की बात ने दशरथ के हृदय को ऐसी गहरी ठेस पहुचाई कि वे उसे सहन न कर सके। घोर हार्दिक पीडा के कारण उन्हे मूर्च्छा आ गई। वे पृथ्वी पर गिर पडे। भरत अपने आसू न रोक सके। उनकी बुद्धि मानो निश्चेष्ट हो गई।

राम ने सोचा इसी अवसर पर मेरा चला जाना उचित है। पिताजी की मूर्च्छावस्था मे ही अगर मैं न चला गया तो इनका मोह दूर न होगा। जब तक मै यहा रहूगा कोई निर्णय न हो पाएगा।

किसी बालक की थाली मे माता ने भूल से रस की कटोरी रख दी। बालक का स्वास्थ्य देखते हुए रस खाना उसके लिये अहितकर है। मगर बालक का रस पर बहुत मोह है। वह थाली मे रस आने पर छोड नही सकता। ऐसी हालत मे माता क्या करती है? बालक जब इधर–उधर देखने लगता है तो चुपके से वह रस की कटोरी उठा लेती है। इसी तरह राम ने सोचा – पिता और भरत का मोह मुझे वन नही जाने देगा। अतएव इसी समय मेरा हट जाना योग्य है।

इसी प्रकार सोच कर राम वहा से चलने लगे। तब वहा जो सरदार आदि उपस्थित थे उन्होने कहा – आप पधारते तो हैं, मगर महाराज को समझा कर पधारिये। कही ऐसा न हो कि इसी दशा मे महाराज की मृत्यु हो जाय। उनके हृदय मे कोई साधारण चोट नही है।

सरदारो की बात सुनकर राम रुक गये। उन्होने दशरथ को उठाकर कहा – पिताजी आप इतने दु खी क्यो होते है? सत्पुरुष सत्य को पालने के समय कही मूर्च्छित होते हे? मेरा वन जाना मगलमय है या अमगलमय? वनवास मे हानि ही क्या है? वह तो परम सौभाग्य से मिलता है। फिर मैं तो धर्म का पालन करने के लिये सत्य की रक्षा के लिये वन जा रहा हू। इसमे अमगल क्या हे? आप प्रसन्नतापूर्वक मुझे आज्ञा दीजिये। चिन्ता मत कीजिये। जिस प्रकार क्षत्रिय अपने वीर पुत्र को युद्ध मे जाने की सहर्ष अनुमति देते है आर व्यापारी अपने पुत्र को व्यापार के निमित्त विदेश मे जाने की प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा देते हे उसी प्रकार आप प्रसन्न होकर मुझे वन मे जाने की अनुमति दीजिये।

दशरथ की मूर्च्छा हटी और राम ने सोचा – 'मै यहा बना रहा तो [illegible] पिताजी फिर मोहवश मूर्च्छित हो जाए। यह सोचकर राम वहा से [illegible] दिय।

राम वन–गमन

(द्वितीय–भाग)

अयोध्या में हलचल

राजमहल मे जो घटनाए घटी थीं सारे नगर मे उनकी खबर पहुचते देर न लगी। बिजली के वेग की तरह घर–घर समाचार पहुच गये कि रानी कैकेयी ने वर मागा है, इस कारण भरत को राज्य दिया जा रहा है और राम वन जा रहे हैं।

यह कठोर निर्णय सुनने के लिए कोई तैयार न था। अवध की प्रजा राम को प्राणो से अधिक प्यार करती थी। उनके राज्याभिषेक की तैयारी के सवाद ने प्रजा मे एक अनोखी हलचल मचा दी थी। बालक वृद्ध सभी के हृदय हर्ष–विभोर हो रहे थे। घर–घर मे मगल–गान हो रहा था और उत्सव मनाया जा रहा था। सभी लोग राम के राज्याभिषेक को देखकर अपने नेत्र सफल करने के लिए उत्कठित थे। अभिषेक–मुहूर्त की विकलता के साथ प्रतीक्षा कर रहे थे।

ऐसे समय मे राम के वनवास के समाचार से प्रजा की क्या दशा हुई? यह कहना कठिन है। जिसने सुना उसी का दिल बैठ गया मानो अचानक बिजली गिर पडी हो। अवध मे आनन्द के स्थान पर कोलाहल सर्वत्र हाहाकार मच गया। लोग कहने लगे – 'हाय! यह क्या हो गया? आज मानो अवध की प्रजा का सर्वस्व लुट गया! अयोध्या अनाथ होने वाली हे। जेसे किसी क्रूर ने अयोध्या का कलेजा निकाल कर फेक दिया।

अवध मे एक सिरे से दूसरे सिरे तक घोर शोक की लहर दोड गई। जिसने जहा सुना वह वहीं सिर धुनने लगा। सब के मुह सूख गये। आखो से आसुओ की वर्षा होने लगी। ऐसा जान पडता था मानो सारे ससार का करुण रस सिमट कर अयोध्या मे जमा हो गया।

कुछ लोग कहने लगे हाय – देव! तू क्या इसी अवसर की बाट जो रहा था? तूने सब बना–बनाया काम अन्त मे बिगाड दिया। ससार की दशा बडी ही विषम है। यहा सोची हुई वात नष्ट हो जाती हे ओर अनसोची हा जाती हे। कहा तो राम के राज्य की बात सोच रहे थे ओर कहा उसक वन–गमन का हृदय–विदारक दृश्य देखना पडेगा। मनुष्य की शक्तिया कितनी परिमित हें। उसके हाथ मे क्या हे? कोन जानता हे कब किसका क्या होन वाला हे?

कुछ लोग कैकेयी को कोसने लगे। एक ने कहा – कैकेयी वास्तव मे अवध का अभिशाप है। उसने अवध के राजपरिवार को घोर मुसीबत मे डाल दिया है। अब तक जो राजकुल सुख–शाति का आगार था, उसे उसने अशाति का घर बना दिया है। उसने सब प्रकार की शोभा से सम्पन्न राज–परिवार के मनोहर उद्यान को अपने हृदय की विकराल ज्वालाओ से भस्म कर दिया है वीरान बना दिया है और भयानक श्मशान के रूप मे परिणत कर दिया है। कैकेयी ने अवध की प्रजा के साथ घोर द्रोह किया है। उसने प्रजा की आत्मा का हनन करके अपनी पैशाचिकता प्रकट की है।

किसी ने कहा – यह प्रपच रचकर कैकेयी ने अपने पैर पर आप ही कुल्हाडा मार लिया है। कोई मूर्ख अपनी आखो से अपनी ही आखे देखने के लिए आखे निकाल ले और फिर पश्चात्ताप करे कि हाय, मैं अपनी आखे कैसे देखू? तो ऐसे मूर्ख की मूर्खता जैसे असाधारण है, कैकेयी की मूर्खता भी इसी प्रकार असाधारण है। वह जिस डाली पर बैठी थी, उसने उसी को काट डाला है। राम उसे पाणो के समान प्रिय थे। किसी क्षणिक आवेग मे उसने यह भयकर भूल कर डाली है। इस भूल के लिए उसे जीवन–भर पछताना पडेगा। इस भयकर पाप की बदौलत वह स्वय शाति प्राप्त नही कर सकेगी। आखिर रानी को क्या सूझा कि उसने ऐसी कुटिलता की? कहावत है –

स्त्रियाश्चरित्र पुरुषस्य भाग्यम् देवो न जानाति कुतो मनुष्य?

तिरिया–चरित्र बडा गहन होता है। उसका पता पाना सहज नही। कदाचित् काच मे पडने वाला प्रतिबिम्ब पकड मे आ जाये मगर स्त्री–चरित्र नही जाना जा सकता। आग मे क्या नही जल जाता? समुद्र मे क्या नहीं समा सकता? स्त्री क्या नही कर सकती?

कोई–कोई कहने लगे – रानी को दोष देते हो पर राजा की बुद्धि कहा चली गई? राजा अगर स्त्री के वश मे न होते तो यह दशा क्यो होती? कैकेयी राम की सोतेली माता है मगर राजा तो सोतेले बाप नही थे। कैकेयी ने भरत का पक्ष लिया मगर राजा के लिए तो राम ओर भरत सरीखे थे फिर उन्होने क्यो विवेक भुला दिया? एक औरत की बात मानकर इतना बडा अन्याय करने पर जो उतारू हो गया है उस राजा की बुद्धि नही बिगडी यह कौन कह सकता? राजा को प्रजा की इच्छा का भी तो खयाल करना चाहिये था।

लोगो म कुछ समझदार थे कहने लगे – भाई चाहे जो कहो पर राजा को दोष देना अन्याय है। राजा दशरथ परम धर्मात्मा है। उनका सम्पूर्ण

जीवन न्याय और धर्म मे व्यतीत हुआ है। वे अविवेकी तो नहीं हें। उन्होने रानी की रथ–सचालन की कुशलता से प्रसन्न होकर उसे वर देने का वचन दिया था। अब उस वचन का पालन करना उनका कर्तव्य हे। धर्म का पालन प्रत्येक अवस्था मे करना ही चाहिये। धर्म के लिये हरिशचन्द्र ने कितने कष्ट सहे थे? राजा दशरथ को राम प्राणो से अधिक प्रिय है। उन्हे वन मे भेजकर वे क्या प्रसन्न होगे? उनकी वेदना उन्ही से पूछो। उनका कलेजा फट रहा होगा। मगर वे धर्म के बन्धन मे बधे हुए हे। उन्हे दोष देना अनुचित हे। कोई कुछ भी कहे पुत्रवियोग की दारुण व्यथा सह कर भी अपने धर्म से न डिगने वाले राजा दशरथ प्रशसा के ही पात्र है।

राजनीति मे अपना दखल रखने वाले कोई कहते – इस षडयन्त्र मे भरत का भी हाथ अवश्य होगा। भरत की सहमति के बिना रानी को ऐसा वर मागने का हौसला ही नही हो सकता था।

यह आलोचना सुनकर दूसरा कान को हाथ लगाकर और दातो तले जीभ दबाकर कहता – ऐसा कहने वाले का सब सुकृत और पुण्य नष्ट हो जायेगा। भरत सत स्वभाव के हें। वे राम के द्रोही त्रिकाल मे भी नही हो सकते। भरत को कलक लगाना अपने–आप को कलकित करना है।

इस प्रकार तरह–तरह की आलोचनाए सुनकर किसी ने कहा – वृथा गाल बजाने से क्या लाभ हैं? बीमारी किसी भी कारण से हुई हो मिटेगी वह उचित उपचार करने से ही। कारणो की मीमासा मे ही समय नष्ट करने से बीमारी बढकर असाध्य हो जाती है। बुद्धिमान् मनुष्य बीमारी के असाध्य होने से पहले ही उसका उपचार करते हे। किसी को दोष देने से क्या हाथ आएगा? रानी केकेयी ने वर मागा हे। बिगडी को बनाना अब उन्ही के हाथ मे है। किसी उपाय से अब केकेयी को समझाना उचित हे। स्त्रियो का काम स्त्रियो से ही भली–भाति हो सकता हे। स्त्री ही स्त्री को समझा सकती हे। अतएव केकेयी को समझाने के लिए कुछ बुद्धिमती स्त्रियो को भेजना चाहिए। रानी के कारण अगर बना काम बिगड गया तो बिगडा काम बन भी सकताहे।

कैकेयी के पास स्त्रियो का प्रतिनिधि–मण्डल

आखिर सर्वसम्मति से यह निश्चत हुआ कि अयोध्या की चुनी हुई कुछ बुद्धिमती स्त्रिया केकेयी को समझाने के लिए भेजी जाए। ऐसी स्त्रिया का एक प्रतिनिधि–मण्डल वनाया गया। यद्यपि जाने वाली स्त्रियॉ जानती थी कि जो केकेयी राम से न समझी महाराज से न समझी ओर अपने पेट क

पुत्र भरत से भी न समझी उसे हमारा समझा सकना बहुत टेढी खीर है तथापि हिम्मत नही हारना चाहिए और अपना कर्तव्य अदा करना चाहिए। यह सोचकर प्रतिनिधि स्त्रिया कैकेयी के पास गई। उनमे कई स्त्रिया बहुत बुद्धिमती थी। साधारण गाव मे भी बुद्धिमती नारिया मिल सकती हैं तो अयोध्या मे, राम की जन्म–भूमि मे और जहा सीता आकर बसी थी वहा बुद्धिमती स्त्रियो का होना साधारण बात है।

स्त्रियो ने सोचा – रानी चाहे समझे या न समझे पर अपनी गाठ की अकल गवाना ठीक नही है। अगर हम सब अलग–अलग बाते करने लगेगे तो किसी भी बात का फैसला नही हो पाएगा। इसके अतिरिक्त ऐसा करने से हम बुद्धिहीना समझी जाएगी। अतएव हम मे से कोई चुनी हुई स्त्रिया ही बात करे। शातिपूर्वक बात करने से ही कोई तत्त्व निकल सकता है।

इस प्रकार निश्चिय करके नारी मण्डली कैकेयी के निकट पहुची। इस मडली मे जो विशेष बुद्धिमती और कैकेयी की सखी भी थी, वे ही बातचीत करने के लिए नियत की गई थी। वे ही कैकेयी से बाते करनी लगी।

कोई आदमी समझानेवाले की बात माने या न माने, मगर समझाने वाले को अपनी गाठ की अकल नही गवानी चाहिए। मतलब यह है कि जिसे समझाया जा रहा है वह कदाचित् न समझे तो भी समझाने वाले को अपना धैर्य और अपनी शाति नही खोनी चाहिए। अगर समझाने वाला चिढ जाएगा तो वह अपनी गाठ की बुद्धि गवा बैठेगा।

समझाने वाली स्त्रिया समझाने का ढग जानती थीं। वे पहले–पहल कैकेयी के शील की सराहना करने लगी। एक ने कहा – महारानीजी का शील ओर स्नेह ऐसा है कि मुझे आज तक कभी असतुष्ट होने का अवसर नहीं मिला। हम आज भी इसी आशा से आई हैं। महारानीजी हमे असतुष्ट नही करेगी। विश्वास है महारानीजी हमारी प्रार्थना अस्वीकार नही करेगी।

दूसरी ने कहा – हा आपके ऊपर महारानीजी का बहुत स्नेह है। आप महारानीजी के स्वभाव को जानती ही हो मगर ओर सब भी इनकी सुशीलता की प्रशसा करते हैं। महारानी कौशल्या और सुमित्रा भी इनके शील की बडाई करती है। स्वय महाराजा भी इनके शील की प्रशसा करते हुए कहते है कि इन्ही ने मेरे जीवन की रक्षा की है।

इस प्रकार स्त्रिया आपस मे बातचीत करके कैकेयी को चढाने का प्रयत्न करने लगी। मगर कैकेयी को उनकी बाते जहर–सी कड़ुवी लगती थीं। उसे अमृत से मीठे वचन विष की तरह कटुक क्यो लगते थे? ससार की यह विपरीत दशा देखकर ही ज्ञानी कहते है–

न जाने ससारे किममृतमय कि विषमयम्।

केकेयी मन ही मन खीझने लगी। वह सोचने लगी – इस समय ये यहा क्यो आई हैं? अगर सभ्यता का खयाल न होता तो मैं इन्हे दासियो से धक्के दिलवाकर निकलवा देती।

स्त्रियो की बाते सुनकर भी केकेयी के मुह पर कोप बना रहा। मगर स्त्रिया चतुर थीं। उन्होने सोचा – यह माने, चाहे न माने हमे तो पूरा प्रयत्न करके अपना कर्तव्य पालना ही है। यह सोचकर एक बोली – 'महारानीजी अक्सर कहा करती थी कि राम मुझे भरत से भी ज्यादा प्रिय हे। जब उनके सामने कोई भरत की प्रशसा करता तो ये कहती थीं कि मेरे सामने कोई भरत का नाम मत लो, मुझे राम जितने प्यारे हैं, उतने भरत भी नहीं हैं। एक के इस कथन का सब ने समर्थन किया। फिर दूसरी बोली – लेकिन आज यह बात क्यो नहीं दिखाई देती? अगर ऐसे धर्मात्मा राजा की रानी भी सत्य को छोड देगी तो सत्य का पालन कोन करेगा? ससार मे यह बात प्रसिद्ध हो चुकी हे कि कैकेयी भरत की अपेक्षा राम को ज्यादा प्यार करती है। लोग सोतेले बालक के विषय मे आपका उदाहरण दिया करते हैं कि सोतेले बेटे से प्रेम ऐसा होना चाहिए जैसे महारानी कैकेयी का राम पर हे। हमने आप के मुख से जब–जब राम की प्रशसा सुनी तब–तब यही समझा कि ये राम के प्रति सहज स्नेह रखती हैं। जो–कुछ इन्होने कहा हे बनावटी नही हे।

सहज स्नेह वह है जो कभी टूट नहीं सकता। मछली का जल के प्रति सहज स्नेह है। जल से अलग करके मछली को कितने ही चेन मे रखा जाय, पर वह तडफती ही रहती हे।

दूसरी बोली – तुमने रानीजी का प्रेम सहज समझा था। तुम कहती थी कि राम जल और कैकेयी मछली हे। लेकिन तुम्हारी कल्पना ठीक केसे हे? अगर महारानीजी का राम के प्रति सहज स्नेह हे तो आज किस अपराध से राम वन मे जा रहे हे? राम अपना राज्य भरत को देकर आज वन जाने को भी तैयार हैं मगर इनका सहज स्नेह केसा हे जो राम को वन जाने देने को तेयार हे।

तीसरी ने कहा – महारानीजी का राम के प्रति स्नेह कम नही हा सकता। सोतो मे आपस मे कोई झगडा हो गया हो तो कह नही सकती।

चोथी बोली – नही ससार उलट जाय पर इस परिवार मे सोतो म कभी झगडा नही हो सकता। यहा सोतभाव की कभी गध तक नहीं आई। सब रानिया एक–प्राण हैं। आपस मे लेश मात्र भी विरोध नही हे।

पाचवी ने कहा – अगर सब का सब पर प्रेम है, तो राम का क्या दोष है जिससे उन्हे वन भेजा जा रहा है? अगर महारानी कौशल्या ने कुछ बिगाडा है, तो मैं अभी उनके पास जाती हू और पूछती हू। उनका अपराध होगा तो वे उसके लिये पश्चात्ताप किये बिना न रहेगी। कदाचित् उन्होने कोई अपराध किया भी हो, तो उनके बदले राम को दण्ड क्यो दिया जा रहा है ? आज नगर मे उत्सव मनाया जा रहा है कि राम को राज्य मिलेगा लेकिन राम के वन जाने पर नगर पर वज्रपात होगा या नही? यह बात तो निश्चित है कि अगर राम वन गये तो सीता भी यहा नही रहेगी। और राम तथा सीता को वन जाते देखकर लक्ष्मण क्या राजमहल मे रह सकेगे? जब ये तीन रत्न लुट जाएगे तो अयोध्या दरिद्र सूनी ओर भयानक हो जाएगी। महाराजा तो दीक्षा ले ही रहे हैं। इस स्थिति मे भरत को क्या चैन पडेगा? क्या वे सुखी रह सकेगे? मैं तो कहती हू, अगर ऐसा हुआ तो महारानी कैकेयी को भी बुरी तरह पछताना पडेगा। इनके हाथ कुछ नही लगेगा, जिन्दगी दूभर हो जाएगी।

इस पकार आपस मे बातचीत हो रही थी, तब एक स्त्री ने कहा – अपनी–अपनी कल्पना के घोडे दोडाने से क्या लाभ है? महारानीजी सामने हैं। आपसे ही पूछा जाय कि वास्तव मे बात क्या है? महारानीजी आप फरमाइए। अवध की प्रजा को और राजकुल को कष्ट मे मत डालिये। राम को वन भेजने मे किसी का कल्याण नही है।

कैकेयी की आखे लाल हो गई। वह बोली – मैंने कब कहा है कि राम वन चले जाए? वह अपनी इच्छा से जा रहे हैं तो रोके क्यो रूके? राम तुम्हारे लिये सभी–कुछ हैं भरत कुछ भी नहीं। क्या भरत कही से भीख मागता आया हे? क्या वह राजा का पुत्र नही है? अगर उसे राज्य मिलता है तो प्रजा पर वज्रपात क्यो हो रहा है? प्रजा मे इतना पक्षपात क्यो है? यह सब किसकी करामात है कि प्रजा मे यह भेदभाव उत्पन्न हुआ?

केकेयी का रुख देखकर आई हुई स्त्रियो को ज्ञात हो गया कि अब आगे बात करना वृथा हे। बात बढाने से कुछ लाभ न होगा। केकेयी को कुमति ने घेर लिया है। अभी नही कुछ दिन बाद उसे सुमति सूझेगी।

सब स्त्रिया निराशा के साथ राजमहल से बाहर आ गई। बाहर बहुत–से लोग उनकी प्रतीक्षा मे खडे थे। उन्हे उदास देखकर सभी ने समझ लिया कि काम सुधरा नही हे। उन्होने आकर कहा – अयोध्या के अभाग्य का अन्त आता अभी नजर नही आता। रीते चूल्हे मे फूक देने से मुह मे राख ही आती ह। कैकेयी को समझाने मे भी यही हुआ।

राम का सन्तोष

राम को मालूम हुआ कि नगर की प्रतिष्ठित स्त्रिया माता को समझाने आई थी, पर वह नही मानी। यह जानकर राम ने कहा – मेरा भाग्य अच्छा है। इसी से माता किसी के बहकावे मे नहीं आई और अपनी बात पर दृढ रही हैं। वन जाने मे ही मुझे आनन्द है और इसी मे कल्याण हे। अगर माता फिसल जाती तो राज्य की डोरी मेरे गले मे पड जाती।

कल्पना कीजिए एक हाथी खम्भे से बधा हुआ है। वह जगल मे जाना चाहता है। इसी समय अचानक खम्भा टूट जाता है तो हाथी को कितनी खुशी होगी? कहा जा सकता है कि हाथी राजा के पास रहता तो गन्ना आदि उत्तम वस्तुए उसे खाने को मिलती। जगल मे क्या धरा है? मगर जगल के आनन्द को हाथी जानता है। उससे पूछो वह जगल मे जाने को क्यो व्याकुल रहता है?

राम इसी भाति कहते है – अच्छा हुआ माता मानी नहीं। अब मैं जाकर आत्मनिर्भर होकर अपना विकास कर सकूगा।

ससार विषमताओ का अखाडा है। इन विषमताओ को देखकर ज्ञानी जनो को बोध प्राप्त होता है। कहा राज्याभिषेक और कहा वन–गमन! कितनी विषम घटनाए है। पर उनके घटने मे विलम्ब नही लगा। वास्तव मे ससार मे अनघड घाट घडा जाता है और घडा हुआ घाट टूट जाता है।

राम के साथ लक्ष्मण भी हो लिए। लक्ष्मण को यद्यपि बडा असन्तोष था फिर भी उन्होने रामचन्द्र के विचार के विरुद्ध एक शब्द भी नही कहने का निर्णय कर लिया था। उन्होने सोचा था वैसे तो रामचन्द्रजी के राज्य को लेने का किस मे साहस है परन्तु राम ने धर्म की जो मर्यादा बतलाई हे ओर जिसका वे पालन कर रहे हैं, उसके विरुद्ध मुझे कुछ भी नही कहना चाहिये।

राम प्रसन्न होते हुए कौशल्या के पास आये। राम ओर लक्ष्मण को देखकर कोशल्या प्रसन्न हुई। वह सोचने लगी – मेने राम को इतना प्रसन्न कभी नही देखा था। शायद राज्य मिलने के कारण यह प्रसन्नता हे। राज्य–प्राप्ति के विचार से प्रसन्न होना स्वाभाविक हे। पर लक्ष्मण क्यो उदास हे? राम को राज्य मिलने से तो लक्ष्मण उदास हो ही नहीं सकता। तव इसकी उदासी का क्या कारण होगा?

राम को स्नेहभरी आखो से देखकर कोशल्या ने उन्हे उसी तरह गोद मे बेठा लिया जेसे मा किसी छोटे बालक को बिठलाती हे। फिर उसने राम का सिर चूम लिया। कोशल्या के आनन्द का पार न रहा माना अकिचन क

हाथ मे अचानक खजाना आ गया। फिर कौशल्या ने कहा – अभिषेक के मुहूर्त मे अब कितनी देरी है? राम उत्तर मे कुछ भी न बोले। तब कौशल्या ने कहा – तुम्हारा न बोलना ठीक है। भले आदमी सम्पत्ति मिलने के समय गम्भीर ही रहते हैं। अच्छी बात है, जल्दी स्नान कर लो और जलपान करके तैयार हो जाओ। अरे लक्ष्मण! तू आज उदास क्यो दिखाई देता है? हर्ष के अवसर पर तेरा यह क्या डौल है?

राम कहने लगे – माता तेरा प्रेम–समुद्र अगाध है। मगर तू उल्टा समझ रही है। मैं एक पार्थना करने आया हू। तुम्हारे लिए जैसा मैं हू वैसा ही भरत है और जैसा भरत है वैसा ही मैं हू। यह बात तुम्हारे मुख से मैं कई बार सुन चुका हू।

कौशल्या – वत्स, इसमे नवीन बात क्या है? मैंने चारो बेटो मे कब भेदभाव किया है?

राम – मा मैं जो–कुछ आगे कहना चाहता हू, वह सुनकर तुम्हे रज न हो इसीलिए मैने यह बात कही है। अगर मेरी बात सुनकर तुम्हे रज होगा तो समझा जायगा कि तुम्हारी बात कहने–भर की ही है। वास्तव मे तुम मुझे और भरत को एक नजर से नही देखती।

कौशल्या – आज तू इस प्रकार की बाते क्यो कह रहा है?

राम – मा कारण तो अभी मालूम हो ही जायेगा। मैं तुमसे आशीर्वाद लेने आया हू।

कौशल्या – बेटा मैं क्यो, मेरे शरीर का रोम–रोम तुझे आशीर्वाद देता है कि तू सूर्यवश के सिहासन पर बैठकर राज्य को सुख–शाति दे। तेरा राज्य ऐसा ही हो कि लोग उसे धर्मराज्य कहने लगे और तेरा उज्ज्वल यश सुनकर मे अपनी कोख धन्य समझू। धर्मराज्य करके तुम जगत् को आनदित करो।

माता का आशीर्वाद सुनकर राम किचित् विषादभरी मुस्कराहट के साथ बोले – माता तुमने समझा नही! मैं वनवास के लिए आशीर्वाद लेने आया हू।

कोशल्या को जैसे भारी धक्का लगा। वह लक्ष्मण की उदासी का कारण अब समझी। आश्चर्य ओर घबराहट के साथ कोशल्या ने कहा – राम तुम और वनवास क्यो? मगल मे इस अमगल – प्रस्ताव का क्या कारण हे? क्या तुमने अपने पिताजी का कोई अपराध किया है? अथवा जेसे सूर्य निकलने के समय राहु आडे आ जाता हे उसी तरह तुम्हारी राज्य–प्राप्ति मे

किसी ने विघ्न डाला हे? बात क्या हे, साफ–साफ क्यो नही कहते?

राम – मा, में ऐसे किसी कारण से वन नही जा रहा हू। मे जिस कारण वन जाता हू, उसकी बदोलत आप भी धन्य मानी जाएगी। मगर में अपराध करके वन जाता तो आप धन्य नही समझी जा सकतीं।

कौशल्या – तो कहो न वन जाने का क्या कारण है?

राम – आपने पिताजी की सेवा अवश्य की है, मगर आपकी अपेक्षा कैकेयी माता ने अधिक सेवा की है। जब मेरा जन्म भी न हुआ होगा, तब एक बार पिताजी पर शत्रुओ ने युद्ध मे हमला कर दिया था। उस समय माता कैकेयी पिताजी की रक्षा न करती तो उनका जीवन शायद ही रहता। पिता का सारथी मारा गया था। उनके घोडे भाग रहे थे। रथ की धुरी भी टूट गई थी। उस समय माता केकेयी ने घोडो की रास सभाली और रथ की धुरी कसी। इन्होने कुशलता के साथ रथ चलाया ओर पिताजी शत्रुओ को परास्त करने मे समर्थ हो सके।

कौशल्या – हा, यह घटना ऐसी ही हुई थी। मुझे मालूम है।।

राम – तो मैं माताजी के इस महान कार्य का पुरस्कार देने वन जा रहा हू।

कौशल्या – यह कैसे? उस महान कार्य के लिए तो महाराज उसी समय वरदान दे चुके है।

राम – वरदान देने का वचन दे चुके थे मगर उस समय वर दिया नही था। अब वह वर माता ने माग लिया है।

कौशल्या – उचित ही है। उसे वर मिलना ही चाहिए।

राम – तो माता कैकेयी ने यह वर माग लिया हे कि राज्य भरत को दे दिया जाय।

कौशल्या – इसमे हर्ज की कोई बात नही। मेरे लिए राम ओर भरत दो नही, एक ही हें। पर तुम्हारे वन जाने का क्या कारण हे? तुम प्रसन्न होकर भरत की सहायता करना। वन जाने की क्या आवश्यकता हे?

राम – में किसी अपराध के कारण वन नही जाता हू, स्वेच्छा से ही मेंने यह निर्णय किया हे। सूर्यवश की रीति हे कि बडा भाई राज्य करे ओर छोटा उसकी सेवा करे। भरत अड गया था कि में राज्य नही लूगा राम ही राज्य करेगे। उनकी सब बाते भ्रातृभाव से सनी हुई थी। मगर ऐसे प्रसग पर मेरा क्या कर्तव्य है? भरत के राजा हो जाने पर भी अगर में यही रहा तो प्रजा मेरी ही ओर आकर्षित होगी भरत की ओर नही। ओर जब प्रजा का आकर्षण

मेरी ओर ही रहा तो भरत को राज्य देना क्या कहलाया? इसलिए मैने भरत को समझाया है कि तुम राज्य करो और मैं वनवास करके अपना तथा दूसरो का कल्याण करूगा। इसी निश्चय के अनुसार मै वन जा रहा हू। माता, मुझे आशीर्वाद दो। मैं जगल मे मगल करने जा रहा हू। प्रसन्न होकर आज्ञा दो।

राम माता से आशीर्वाद क्यो माग रहे हैं? क्या माता के शब्द मे कोई करामात होती है? जो रामचन्द्र पुरुषोत्तम कहलाते है उन्हे अपनी भोली माता के आशीर्वाद की क्या आवश्यकता थी? फिर भी वे माता के आशीर्वाद की इच्छा करते है। माता तो आपकी भी होगी। क्या आप राम की तरह माता का आदर करते हैं? आजकल कोई–कोई सपूत तो ऐसे होते हैं कि नीति की सीख देने के कारण भी अपनी माता का सिर फोडने को तैयार हो जाते हैं। कभी–कभी औरत की बातो मे आकर माता का अपमान कर बैठते हैं। राम को माता पर बडी आस्था थी। वे सोचते थे – मा अगर आशीर्वाद दे देगी कि जाओ जगल मे आनन्द से रहो तो जगल मे भी मैं आनन्द से रहूगा। राम का यह आदर्श भारत को क्या शिक्षा देता है? ऐसा अद्भुत और आदर्श चरित्र भारत को छोड अन्यत्र कहा मिल सकता है? नेपोलियन के लिए भी कहा जाता है कि वह माता का बडा भक्त था। वह कहा करता था – 'तराजू के एक पलडे मे सारे ससार का प्रेम रखू और दूसरे पलडे मे मातृ–प्रेम रखू तो मेरा मातृ–प्रेम ही भारी ठहरेगा।' उसका मातृ–प्रेम तो कदाचित् राज्यसुख के लिए भी हो सकता है मगर राम तो उस सुख का त्याग कर रहे हैं।

राम कहते है – माता! आप अपने भोले स्वभाव और पुत्र–स्नेह मे पडकर इस आनन्द मे विघ्न डालने का विचार भी मत करना। आप जगल के कष्टो का ध्यान करके भय पाओगी लेकिन आप साहस रखिए और इस मगल–समय मे मुझे आशीर्वाद दीजिए। आपकी दृष्टि मे भरत और राम समान हैं और माता कैकेयी का वरदान भी आप उचित समझती हैं। ऐसी स्थिति मे साहस रखकर मुझे आज्ञा दीजिए। भरत को आप मेरे ही समान समझती हैं और उसकी इज्जत बढाने के लिए मेरा वन जाना आवश्यक है।

कहते है लोह–चुम्बक अगर घडी के पास रख दिया जाय तो घडी की गति बन्द हो जाती है। यो तो चुम्बक भी कीमती माना जाता है किन्तु जब उससे घडी की गति रुक जाती हे तो उसे घडी से दूर रखना ही उचित हे। राम कहते है – इसी प्रकार मेरे रहने से भरत का प्रभाव रुक जायेगा ओर [illegible] अभाव मे राज्य का भली–भाति सचालन नही होगा। अतएव मेरा [illegible] ही योग्य है। माता! आप अपनी आखो से आसू तो पोछ डालो ओर

मुझे विदा दो। हर्ष के समय विषाद मत करो। ससार का ऐसा ही स्वरूप है। सयोग–वियोग के प्रसग आते ही रहते है। इन प्रसगो के आने पर हर्ष–विषाद न करने मे ही भलाई है।

राम ने बडी सरलता और मिठास के साथ यह बात कही। उनके शब्दो मे कोमलता कूट–कूट कर भरी थी, तथापि कौशल्या को वह अगार–सी लगी। उनका हृदय इन वचन–बाणो से बिध गया। कौशल्या को राम के वन जाने की बात सुनकर दु ख हुआ इसमे किसका अपराध है? कोई कहेगा कैकेयी का अपराध है। मगर कैकेयी तो उन्हे नही भेज रही। फिर यह अपराध उसके सिर पर कैसे थोपा जा सकता है? इसलिए कहा है–

न जाने संसारे किममृतमय कि विषमयम्?

ससार की विचित्रता बतलाने के लिए ही यह कथा है। राम की बात से कौशल्या को दु ख होने मे अपराध अज्ञान का है, और किसी का नहीं। कौशल्या मातृसुलभ सुतवत्सलता के कारण राम की बात का यथार्थ स्वरूप नही समझ सकी। इसी से उन्हे दु ख हुआ। लेकिन जब उन्होने अज्ञान पर विजय पा ली और राम की बात का सच्चा स्वरूप समझ लिया तो बाजी बदल गई।

कौशल्या की व्यथा

पहले कौशल्या ने वन के भयानक स्वरूप का स्मरण किया ओर राम की सुकुमारता का विचार किया। कहते हें उस समय राम की उम्र सत्ताईस वर्ष की थी। कौशल्या ने राम की उम्र का विचार करके सोचा क्या यह अवस्था वन जाने के योग्य हे? राजमहल मे सुमनसेज पर सोने वाला सुकुमार राम वन की ककरीली पथरीली ओर कटकमयी भूमि पर केसे सोएगा? कहा यहा के षटरस भोजन और कहा वन के फल! केसे वन मे इसका निर्वाह होगा? किस प्रकार सर्दी गरमी ओर वर्षा के कष्ट इससे सहे जाएगे? मे राम का वियोग केसे सह सकूगी? प्राण चले जाने पर यह निष्प्राण शरीर केसे रहेगा?

इस प्रकार के विचारो से व्यथित होकर कोशल्या मूर्च्छा खाकर गिर पडी। राम आदि ने शीतोपचार करके उन्हे सचेष्ट किया। सचेष्ट होकर आसू बहाती हुई वह कहने लगी – हाय मे क्यो जीवित रही? पुत्र–वियोग का यह दारुण दु ख सहने की अपेक्षा मरना ही भला था। मर जाती तो वियाग की ज्वालाओ मे तिल–तिल करके जलने से बच जाती। मेरा हृदय केसा वज्र–कठोर हे कि पति दीक्षा ले रहे हे पुत्र वन को जा रहा हे ओर म जी रही हू।

कौशल्या की मार्मिक व्यथा का प्रभाव राम पर पडे बिना न रहा। वे स्वय व्यथित हो उठे। सोचने लगे – अयोध्या की महारानी प्रतापी दशरथ की पत्नी और राम की माता होकर भी इन्हे कितनी वेदना है? मेरी माता इतनी शोकातुर! मगर इनमे इतना मोह क्यो है? वह माता का मोह और सताप मिटाने के लिए वचन रूपी जल छिडकने लगे। कहने लगे – माता! अभी आप धर्म की बात कहती थी और पिताजी के लिये वरदान को उचित बतलाती थी और अभी–अभी आपकी यह दशा? बुद्धिमती और ज्ञानशीला नारी की यह दशा नही होनी चाहिए। यह कायर स्त्रियो को शोभा देता है–राम की माता को नही। इतनी कायरता देखकर मेरा चित्त भी विह्वल हो रहा है। जिस माता से मेरा जन्म हुआ है उसे इस तरह की कायरता शोभा नही देती। आप मेरे लिए दु ख मना रही है और मै प्रसन्नतापूर्वक स्वेच्छा से वन जा रहा हू। फिर आपको शोक क्यो होता है। सिहनी एक ही पुत्र जनती है, मगर ऐसा जनती है कि उसे किसी भी समय उसके लिए चिन्ता नही करनी पडती। सिहनी गुफा मे रहती है और उसका बच्चा जगल मे फिरता रहता है। क्या वह उसके लिए चिन्ता करती है? वह जानती है कि मैंने सिह जना है। यह अपनी रक्षा आप ही कर लेगा। माता! जब सिहनी अपने बच्चे की चिन्ता नही करती तो आप मेरी चिन्ता क्यो करती है? आपकी चिन्ता से तो यह आशय निकलता है कि राम कायर है और आप कायर की जननी हैं! आप मेरे वन जाने से घबराती है पर वन मे जाने से ही मेरी महिमा बढ सकती है। अनेक राजा लोग राज्य छोडकर वन को गये है। फिर मै सदा के लिए नही जा रहा हू। कभी–न–कभी लौट कर आपके दर्शन करूगा ही। आप मुझे जगत् का कल्याण करने वाला समझती हो मगर आपकी कायरता से तो बात उलटी सिद्ध होती हे।

मेने पिताजी का कोई अपराध नही किया हे। उनका मुझ पर अपरिमित ऋण है। उनके वचन की रक्षा करने के हेतु भरत को राज्य देकर म वन जा रहा हू। पिताजी पर जो कर्ज हे वह मुझ पर ही है। मै पिताजी का ऋण न चुकाऊ तो पुत्र कैसा? आपके पति और पुत्र दोनो ऋण से हलके हो रहे है फिर आप इतनी व्यथित क्यो होती है?

राम के ये वचन कोशल्या के मोह को बाण की तरह लगे। उन्होने सोचा – राम ठीक ही तो कहता हे। जब पुत्र धर्म का पालन करने के लिये उद्यत हो रहा हो तब माता के शोक का क्या कारण है? ऐसा करना माता के लिए दूषण ह। स्त्री–धर्म के अनुसार पति ने जो वचन दिया है वह स्त्री ने भी दिया ह। फिर मुझे शोक क्यो करना चाहिए?

आज्ञा प्रदान

इस प्रकार विचार कर कोशल्या ने कहा – वत्स! में तुम्हारा कहना समझ गई। मैं आज्ञा देती हू, तुम धर्म पालने के लिए वन को जा सकते हो। मै आशीर्वाद देती हू कि वन तुम्हारे लिए मगलमय हो। तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो। तुम अर्थ की सिद्धि ओर पुनरागमन के लिये जाओ।

पक्ष सिद्ध हो लक्ष्य विद्ध हो राम! नाम हो तेरा।
धर्म सिद्ध हो, मर्म ऋद्ध हो सब तेरे तू मेरा।।

पुत्र! अभी तक तू नाम से राम है, अब सच्चा राम बन। अब तेरा नाम सार्थक होगा। तू जगत् के कल्याण मे अपना कल्याण और जगत् की उन्नति मे अपनी उन्नति मानता है। तेरा पक्ष सिद्ध हो तू विघ्न आने पर भी अपने धैर्य से विचलित न होकर अपना लक्ष्य पूर्ण करे।

रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति राम।

जिसे ससार आदर्श मानता हे जो धर्मात्माओ का आधार हे जिसमे योगीजन निवास करते है वह 'राम' कहलाता है।

ससार अशाति और नाना प्रकार के दु खो का क्रीडास्थल हे। यहा कोन ऐसा पुरुष है जिसने अशाति की काली छाया न देखी हो जो दु खो का निशाना न बना हो? महापुरुष वह हे जो अपनी आत्मा को ससार से अलिप्त रखता है और दूसरो के दु ख दूर करता है। राम ऐसा करके ही सब को प्रिय हुए हैं।

राम घर पर ही रहते तो भरत को कोई हानि न पहुचाते। उन्हे घर रहकर अपना कल्याण करने का उपाय भी मालूम था जेसे कि भगवान महावीर बिना तप किये ही केवल ध्यान मात्र से अपना कल्याण कर सकते थे। लेकिन राम अगर वन न जाते ओर भगवान् महावीर तप न करते तो आपको वह तत्त्व कहा से मिलता जो उनसे मिला हे? उस दशा मे आप यही कहते कि घर बेठ कर जो हो सकता हे वही बस हे। उससे अधिक तो राम ने ओर महावीर ने भी नही किया? आप इस प्रकार विचार न करे इसलिये राम वन को गए थे।

साधारण लोग धर्मवृद्धि का अर्थ धन–सम्पदा का मिलना मानते ह। कहावत हे – अमुक के पास इतना धन हे, इसलिए रामजी राजी हे। किन्तु धन की वृद्धि धर्म की वृद्धि नही हे। धर्म की वृद्धि कुछ ओर ही वस्तु हे। सच्ची धर्मवृद्धि वह हे जिसके साथ मर्म–ऋद्धि भी हो। मर्म की जानकारी होना ही धर्म की वृद्धि हे। कोशल्या पहले तो रो रही थी पर अव वह भी राम का

विदाई दे रही है। इसका कारण यह है कि अब उन्होने मर्म को जान लिया है। मर्म को जान लेने की ऋद्धि कम नही है। कौशल्या के यहा राजकीय वैभव की तनिक भी कमी नही थी फिर भी राम के वन–गमन की बात सुनकर वह रोने लगी थी। लेकिन मर्म तक पहुच जाने पर राम का वन–गमन भी उसे कष्ट नही पहुचा सका। अब देखना चाहिए, कौन–सी ऋद्धि बडी है? धन–सम्पदा की ऋद्धि बडी है या मर्म जानने की ऋद्धि बडी है?

एक आदमी ससार सबधी समस्त भोग–विलासो की सामग्री प्राप्त होने पर भी रोता है और दूसरा पास मे कुछ भी न होने पर भी घास के बिछौने पर सोता हुआ भी हसता है। इस विचित्रता का क्या कारण है? इसका एकमात्र कारण यही है कि पहला आदमी मर्म को नही जानता और दूसरा मर्म को जानता है। मर्म को जानने वाला प्रत्येक परिस्थिति मे सतुष्ट और सुखी रहेगा। ससार का ताप उनकी अन्तरात्मा तक पहुच नही सकता। इसके विपरीत मर्म को न जानने वाला सब–कुछ प्राप्त होने पर भी रोता है। इस प्रकार धन–सम्पत्ति की ऋद्धि की अपेक्षा मर्म जानने की ऋद्धि बहुत बडी है।

कौशल्या राम से कहती है – हे पुत्र! तुझे मर्म–ऋद्धि प्राप्त हो – तू मर्म को जान जाए और दूसरो को भी मर्म समझा सके! मेरा आशीर्वाद है कि ससार के समस्त प्राणी तेरे हो और तू मेरा हो।

अहा! कितना सुन्दर आशीर्वाद है! मा अपने बेटे को सिखलाती है कि इस विशाल विश्व का प्रत्येक प्राणी तेरा अपना हो। त सबको अपना आत्मीय समझ और तब तू मेरा होगा। लेकिन आज क्या होता है?

मात कहे मेरा पूत सपूता। बहिन कहे मेरा भैया।।
घर की जोरू यो कहे। सब से बडा रुपैया।।

बेटा चाहे अधर्म करे अनीति करे झूठ–कपट का सेवन करे अगर वह रुपये ले आता है तो अच्छा बेटा है नही तो नही। ऐसा मानने वाले लोग वास्तव मे मा–बाप नही किन्तु अपनी सन्तान के शत्रु हैं। ससार मे जहा पुत्र को पाप करते देखकर प्रसन्न होने वाले मा–बाप मोजूद हैं वही ऐसे मा–बाप भी मिल सकते हे जो पुत्र की धार्मिकता की बात सुनकर ही प्रसन्न होते है। पुत्र जब कहता है – आज मेरे ऊपर ऐसा सकट आ गया था। मै अपने शत्रु से इस प्रकार बदला ले सकता था फिर भी मैने धर्म नही छोडा मैंने अपने शत्रु की आज इस प्रकार सहायता की। ऐसी बाते सुनकर प्रसन्न होने वाली [illegible] आज कितनी है? ऐसी माता ही जगत को आनन्द देने वाली है।

सीता का अन्तर्द्वन्द्व

राम और कौशल्या की बात सीता भी सुन रही थी। वह नीची दृष्टि किये, सलज्ज भाव से वहीं खडी थी। माता और पुत्र का वार्तालाप सुनकर उसके हृदय मे कौन जाने कैसा तूफान आया होगा। सीता की सास उसके पति को वन जाने के लिए आशीर्वाद दे रही हैं यह देखकर सीता को प्रसन्न होना चाहिए था या दुखी? आज ऐसी बात हो तो बहू कहेगी – यह कैसी अभागिनी सास है जो अपने बेटे को ही वन मे भेज देने के लिये तैयार हो गई है! मैं तो समझती थी कि यह वन जाने से रोकेगी पर यह तो उलटा आशीर्वाद दे रही है! मगर सीता ने ऐसा नहीं सोचा। सीता मे कुछ विशेषताए थीं और उन्हीं विशेषताओ के कारण राम से भी पहले उसका नाम लिया जाता है। पर आज सीता के आदर्श को अपने हृदय मे उतारने वाली स्त्रिया कितनी मिलेगी? फिर भी भारतवर्ष का सौभाग्य है कि यहा के लोग सीता के चरित्र को बुरा नहीं समझते। बुरे से बुरा आचरण करने वाली नारी भी सीता के चरित्र को अच्छा समझती है।

सीता मन ही मन कहती है – आज प्राणनाथ वन को जाते हैं। क्या मेरा इतना पुण्य है कि मैं भी उनके चरणो मे आश्रय पा सकू?

पति को 'प्राणनाथ' कहने वाली स्त्रिया तो बहुत मिल सकती हैं मगर इसका मर्म सीता जैसी विरल स्त्री ही जानती है। पति का वन जाना सीता के लिए सुख की बात थी या दु ख की? यो तो पत्नी को छोडकर पति का जाना पत्नी के लिए दु ख की बात ही है पर सीता को दु ख का अनुभव नहीं हो रहा है। उसकी एकमात्र चिन्ता यह हे कि क्या मेरा इतना पुण्य हे कि मैं भी अपने पतिदेव की सेवा मे रह सकू? सीता के पास विचार की ऐसी सुन्दर सम्पत्ति थी। यह सम्पत्ति सभी को सुलभ हे। जो चाहे उसे अपना सकता हे। अपनी सेवा धर्म को दे सकता है। जो ऐसा करेगा वही सुकृतशाली होगा।

सीता सोचती है – मेरे स्वामी देवर को राज्य देकर वन जा रहे हे। वे माता की इच्छा ओर पिता की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए वन जाते हैं लेकिन हे सीता! तेरा भी कुछ सुकृत हे या नही? क्या तेरा इतना सुकृत हे कि तेरा ओर प्राणनाथ का साथ हो सके? तूने प्राणनाथ के गले मे वरमाला डाली हे पति के साथ विवाह किया है– उनके चरणो मे अपने को अर्पित कर दिया हे इतने दिन उनके साथ ससार का सुख भोगा हे तो क्या तेरा इतना सुकृत नही है कि वन मे जाकर तू उनका साथ दे सके?

सीता सोचती है – 'मे राम के साथ भोग–विलास करने के लिए नहीं ब्याही गई हू। मेरा विवाह राम के धर्म के साथ हुआ हे। ऐसी दशा म क्या

अकेले राम ही वन जाकर धर्म करेगे? क्या मैं उस धर्म मे सहयोग देने से वचित रहूगी? अगर मैं शरीर सहित प्राणनाथ के साथ न रह सकी तो मेरे प्राण अवश्य ही उनके साथ रहेगे। मुझमे इतना साहस है कि अपने प्राणो को शरीर से अलग कर सकती हू। अगर राजमहल के कारागर मे मुझे कैद किया गया तो निश्चित रूप से मेरा निर्जीव शरीर ही कैद होगा। प्राण तो प्राणनाथ के पास उड कर पहुचे बिना नही रहेगे।

प्राणनाथ को वन जाने की अनुमति मिल गई है। मुझे अभी प्राप्त करनी होगी। सासजी की अनुमति लिए बिना मेरा जाना उचित नही है। सासूजी से मै अनुमति लूगी। जब उन्होने पुत्र को अनुमति दे दी है तो पुत्रवधू को भी देगी ही।

मनुष्य को अपना चरित्र सुधारने के लिए किसी उत्कृष्ट चरित्र का अवलम्बन लेना पडता है। जैसे दुर्बलता की दशा मे लकडी का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है और आख कमजोर होने पर चश्मे की सहायता ली जाती है इसी तरह अपना चरित्र सुधारने के लिए किसी महापुरुष के चरित्र का सहारा लिया जाता है। लकडी लेना या चश्मा लगाना कोई गर्व की बात नही है बल्कि कमजोरी का लक्षण है। उसी प्रकार चरित्र का आश्रय लेना भी एक प्रकार की कमजोरी ही है। फिर भी काम न चल सकने पर लकडी और चश्मा रखना बुराई मे नही गिना जाता। इसी तरह आत्मा किसी की सहायता के बिना ही आप ही अपना कल्याण कर सके तो अच्छा ही है। अगर इतना सामर्थ्य न हो तो किसी आदर्श चरित्र का आश्रय लेना बुरा नहीं है। जो ज्यादा पढा–लिखा नही है और जिसे ज्यादा अवकाश भी नही मिलता वह अगर सीता–राम के चरित्र को अपने हृदय मे उतार ले तो उसे वही लाभ मिल सकता है जो महापरुषो को मिलता है शास्त्र के अक्षर चश्मा लगाने वाला भी देखता हे और जिसे चश्मा लगाने की आवश्यकता नही वह भी देखता है। काई कैसे भी देखे देखता तो शास्त्र के अक्षर है? और उन्हे देख कर लाभ उठाता है। वह लाभ दोनो उठा सकते हैं। इसी प्रकार चरित्र का अवलम्बन लेकर साधारण मनुष्य भी वही लाभ उठा सकता हे जो महापुरुष को प्राप्त होता है।

सीता सोचती है – प्राणनाथ का वन जाना मेरे लिए गौरव की बात है। उनके विचार इतने ऊचे और उनकी भावना इतनी पवित्र है इससे प्रकट है कि उनमे परमात्मिक गुण प्रगट हो रहे हे। मेने विवाह के समय इन्हे दूसरे रूप मे देखा था आज दूसर ही रूप मे देख रही हू।

सीता का उच्च चरित्र

सीता के चरित्र को किस प्रकार देखना चाहिए यह बात कवि ने बतलाई है। वह कहता हे – पति ही व्रत–नियम हे ऐसा व्रत वही स्त्री लेती है जिसके अन्त करण मे पति के प्रति पूर्ण प्रेम होता है। यह कार्य तभी होता है, जब प्रेम हो। धर्म का आचरण भी प्रेम से किया जाता हे। आपका प्रेम कच्चा है या सच्चा है – यह परीक्षा करनी हो तो पतिव्रता के प्रेम के साथ अपने प्रेम की तुलना कर देखो। भक्ति के विषय मे पतिव्रता का उदाहरण दिया जाता है। कवि कहता हे – पतिव्रताओ मे भी सीता सरीखी पतिव्रता दूसरी शायद ही हुई हो। सीता के पतिव्रत से, पति–प्रेम से अपना प्रेम तोलो। सीता ने उच्च आचरण करके सती–शिरोमणि की पदवी पाई है। सीता सरीखी दो–चार सतिया अगर ससार मे हो तो ससार का उद्धार हो जाय। कहावत है – एक सती और नगर सारा। सुभद्रा अकेली थी पर उसने क्या कर दिखाया था? उसने सारे नगर का दु ख दूर कर दिया था।

सब स्त्रिया सीता नही बन सकती इससे कोई यह नतीजा न निकाले कि जब सीता सरीखी बनना कठिन है तो फिर उस ओर प्रयत्न ही क्यो किया जाय? जहा पहुच नही सकते वहा पहुचने के लिये दो–चार कदम बढाने की भी क्या आवश्यकता है।? ऐसा विचार करने से लाभ के बदले हानि ही होगी। आप खाते है पीते हे, पहनते है ओढते हे। मगर आपसे अच्छा खाने–पीने ओर पहनने–ओढने वाले भी हे, या नही? फिर आप क्या यह सब करना छोड देते हैं? अक्षर मोती जेसे सुन्दर लिखने चाहिए मगर ऐसा न लिख सकने वाला क्या अक्षर लिखना ही छोड देता है? इसी तरह सीता–सी सती बनना अगर कठिन हे तो क्या सतीत्व ही छोड देना उचित हे? सीता की समता न करने पर भी सती बनने का उद्योग छोडना नही चाहिये। निरन्तर अभ्यास करने ओर सीता का आदर्श सामने रखने से कभी सीता के समान हो जाना सम्भव हो तो सकता हे।

सती स्त्रियो मे ऊची होती हे लेकिन नीच स्त्री केसी होती हे? यह भी कवि ने बतलाया हे। कवि कहता हे – खाने–पीने ओर पहनने–ओढने क समय प्राणनाथ–प्राणनाथ करने वाली ओर समय पडने पर विपरीत आचरण करने वाली स्त्री नीच कहलाती हे। ऊपर से पतिव्रता का दिखावा करना ओर भीतर कुछ ओर रखना नीचता हे। इस प्रकार की नीचता का कभी–न–कभी भण्डाफोड हो ही जाता हे। कदाचित भण्डाफोड न हो तो भी उसक कर्म

अपना फल देने से कभी नही चूकते। नीच स्त्रिया भीतर–बाहर कितनी भिन्नता रखती है यह बात एक कहानी द्वारा समझाई जाती है –

एक ठाकुर था। वह अपनी स्त्री की अपने मित्रो के सामने बहुत पशसा किया करता था। वह कहा करता था –ससार मे सती स्त्रिया तो ओर भी मिल सकती है पर मेरी स्त्री जैसी सती दूसरी नही है। कभी–कभी वह सीता अजना आदि से अपनी स्त्री की तुलना करता और उसे उनसे भी श्रेष्ठ कहता। उसके मित्रो मे कोई सच्चे समालोचक भी थे।

एक बार एक समालोचक ने कहा – ठाकुर साहब! आप भोले हें ओर स्त्री के चरित्र को जानते नही हैं। इसी कारण आप ऐसा कहते हैं। तिरिया–चरित को समझ लेना साधारण बात नही है।

ठाकुर ने अपना भोलापन नही समझा। वह अपनी पत्नी का बखान करता ही रहा। तब उस समालोचक ने कहा – कभी आपने परीक्षा की है या नही?

ठाकुर – परीक्षा करने की आवश्यकता ही नही है। मेरी स्त्री मुझसे इतना पेम करती है जितना मछली पानी से करती है। जैसे मछली बिना पानी जीवित नही रह सकती उसी प्रकार मेरी स्त्री मेरे बिना जीवित नही रह सकती।

समालोचक – आपकी बातो से जाहिर होता है कि आप बहुत भोले हे। आप जब परीक्षा करके देखेगे तब सचाई मालूम होगी।

ठाकुर – अच्छी बात है कहो किस तरह परीक्षा की जाय?

समालोचक – आज आप अपनी स्त्री से कहिये कि मुझे पाच–सात दिन के लिए राजकीय काम से बाहर जाना है। यह कह कर आप बाहर चले जाना ओर फिर छिपकर घर मे बैठे रहना। उस समय मालूम होगा कि आप की स्त्री का आप पर कैसा प्रेम है! आप अपने पीछे ही स्त्री की परीक्षा कर सकते है मोजूदगी मे नही।

ठाकुर ने अपने मित्र की बात मान ली। वह अपनी स्त्री के पास गया स्त्री से उसने कहा – तुम्हे छोडने को जी तो नही चाहता मगर लाचारी है। कुछ दिनो के लिए तुम्हे छोडकर बाहर जाना पडेगा। राजा का हुक्म माने बिना छुटकारा नही।

ठकुरानी ने बहुत चिन्ता ओर आश्चर्य के साथ कहा – क्या हुक्म [illegible] कोनसा हुक्म मानना पडेगा?

ठाकुर – मुझे पाच–सात दिन के लिए बाहर जाना हे।

ठकुरानी – पाच–सात दिन ! बाप रे ! इतने दिन तुम्हारे बिना कैसे निकलेगे? मुझे तो भोजन भी नही रुचेगा।

ठाकुर – कुछ भी हो, जाना तो पडेगा ही।

ठकुरानी – इतने दिनो मे तो मैं छटपटा कर मर ही जाऊगी। आप राजा से कहकर किसी दूसरे को अपने बदले नहीं भेज सकते?

ठाकुर – लेकिन ऐसा करना ठीक नही होगा। लोग कहेगे, स्त्री के कहने मे लगा है। क्या मैं यह कहूगा कि मुझसे स्त्री का प्रेम नहीं छूटता? ऐसा कहना तो बुरा होगा।

ठकुरानी – हा, ऐसा कहना तो ठीक नहीं होगा। खैर, जो होगा देखा जाएगा।

इतना कहकर ठकुरानी आसू बहाने लगी। उसने अपनी दासी से कहा – दासी! जा, कुछ खाने पीने के लिए बना दे, जो साथ मे ले जाया जा सके।

ठकुरानी की मोह पैदा करने वाली बाते सुनकर ठाकुर सोचने लगा – मेरे ऊपर इसका कितना प्रेम हे?

ठाकुर घोडी पर सवार होकर कोस–दो–कोस गया। घोडी ठिकाने बाधकर वह लौट आया और छिपकर घर मे बैठ गया।

दिन व्यतीत हो गया। रात हो गई। ठकुरानी ने दासी से कहा – 'ठाकुर गये गाम, म्हने नीं भावे धान।' अभी रात ज्यादा है। जा पास के अपने खेत से दस–पाच साठे ले आ, जिससे रात व्यतीत हो। दासी ने सोचा – 'ठीक है। मुझे भी हिस्सा मिलेगा। वह गई और गन्ने तोड लाई। ठकुरानी गन्ना चूसने लगी।

ठाकुर छिपा–छिपा देख रहा था। उसने सोचा – मेरे वियोग के कारण इसे अन्न नही भाता। मुझ पर इसका कितना गाढा प्रेम हे।

ठकुरानी पहर रात तक गन्ना चूसती रही । गन्ना समाप्त हो जाने पर वह दासी से बोली – अभी रात बहुत हे। गन्ना चूसने से भूख लग गई हे। थोडे नरम–गरम बाफले तो बना डाल! देख, घी जरा अच्छा लगाना!

दासी ने सोचा – चलो ठीक हे। मुझे भी मिलेगे। दासी ने बाफल बनाये और खूब घी मिलाया। ठकुरानी ने बाफले खाए। खाने के थोडी देर बाद वह कहने लगी – दासी! बाफले तूने बनाये तो ठीक, पर मुझे कुछ अच्छे नही लगे। यह खाना कुछ भारी भी हे। थोडी नरम–गरम खिचडी बना डाल।

दासी ने वही किया। खिचडी खाकर ठकुरानी बोली – तीन पहर रात बीत गई। अभी एक पहर और बाकी है। थोडी लाई (धानी) सेक ला। उसे चबाते–चबाते रात बिताये। दासी लाई सेक लाई। ठकुरानी खाने लगी।

ठाकुर छिपा–छिपा सब देख–सुन रहा था। वह सोचने लगा – पहली ही रात मे यह हाल है तो आगे क्या–क्या नही हो सकता! अब इससे आगे परीक्षा न करना ही अच्छा है। यह सोचकर वह अपने घोडे के पास लौट आया। घोडे पर सवार होकर घर आ पहुचा।

दासी ने ठकुरानी को समाचार दिया – 'हुक्म' पधार आये है। ठकुरानी ने कहा– 'हुक्म' पधार आये ! अच्छा हुआ।

ठाकुर से वह बोली – अच्छा हुआ आप पधार आये, मेरी तकदीर अच्छी है। आखिर सच्चा प्रेम अपना प्रभाव दिखलाता ही है।

ठाकुर – तुम्हारी तकदीर अच्छी थी इसी से मैं आज बच गया। बडे सकट मे पड गया था।

ठकुरानी – ऐ क्या सकट आ पडा था?

ठाकुर – घोडे के सामने एक भयकर साप आ गया था। मैं आगे बढता तो साप काट खाता। मैं पीछे की ओर भाग गया इसी से बच गया।

ठकुरानी – आह! साप कितना बडा था?

ठाकुर – अपने पास के खेत के गन्ने जितना बडा भयानक साप था।

ठकुरानी – वह फन तो नहीं फैलाता था?

ठाकुर – फन का क्या पूछना है! उसका फन बाफले जैसा बडा था।

ठकुरानी – वह दौडता भी था?

ठाकुर – हा दौडता क्यो नहीं था! ऐसा दौडता था जैसे खिचडी मे घी!

ठकुरानी – वह फुकार भी मारता होगा?

ठाकुर – हा ऐसी जोर की फुकार मारता था जैसे कडेले मे पडी हुई धानी सेकने के समय फूटती है।

ठाकुर की बाते सुनकर ठकुरानी सोचने लगी – ये चारो बाते मुझ पर ही घटित हो रही है। फिर भी उसने कहा – चलो मेरे भाग्य अच्छे थे कि आप उस नाग से बचकर घर लौट आये।

ठाकुर – ठकुरानी समझो। मैं उस नाग से तो बच निकला मगर तुम सरीखी नागिन से बचना कठिन है।

ठकुरानी – क्या में नागिन हू! अरे वाप रे! में नागिन हो गई? भगवान जानता है सब देव जानते हैं। मैंने क्या किया जो मुझे नागिन बनाते हैं?

ठाकुर – में नहीं बनाता, तुम स्वय वन रही हो। में अपने मित्रो के सामने तुम्हारी तारीफ बघारता था, लेकिन सब व्यर्थ हुआ।

ठकुरानी – तो बताते क्यो नहीं मैंने ऐसा क्या किया हे? में आपके बिना जी नहीं सकती और आप लाछित कर रहे हैं।

ठाकुर – बस, रहने दो। मैं अब वह नहीं, जो तुम्हारी मीठी बातो मे आ जाऊ। तुम मुझसे कहा करती थी – तुम्हारे वियोग मे मुझे खाना नहीं भाता और रात–भर खाने का कचूमर निकाल दिया!

ठकुरानी की पोल खुल गई। साराश यह हे कि ससार मे इस ठकुरानी के समान पति से कपट करने वाली स्त्रिया भी हैं और पतिव्रताए भी हैं। पति के प्रति निष्कपट भाव से अनन्य प्रेम रखने वाली स्त्रिया भी मिल सकती हैं और मायाविनी भी मिल सकती हैं। ससार मे अच्छाई भी हे ओर बुराई भी है। प्रश्न यह है कि हमे क्या ग्रहण करना चाहिए? किसको अपनाने से हमारा जीवन उन्नत और पवित्र बन सकता है?

आज अगर कोई स्त्री सीता नहीं बन सकती तो भी लक्ष्य तो वही रखना चाहिए। अगर कोई अच्छे अक्षर नही लिख सकता तो साधारण ही लिखे। लिखना छोड बेठने से काम कैसे चलेगा? यही बात पुरुषो के लिए कही जा सकती है। पुरुषो के सामने महान् आत्मा राम का आदर्श हे। उन्हे राम की तरह उदार गभीर मातृ–पितृ–सेवक प्रेमी ओर धार्मिक बनना हे।

सीता पति–प्रेम के शीतल जल मे स्नान कर रही हे। सीता मे केसा पति–प्रेम था यह बात इसी से प्रकट हो जात हे कि क्या जेन ओर क्या अजेन सब ने अपनी शक्ति–भर सीता की गुण–गाथा गाई हे। मेहदी का रग चमडी पर चढ जाता हे ओर कुछ दिनो तक वह उतारे बिना नही उतर सकता। मगर सीता का पति–प्रेम इससे भी गहरा था। सीता का प्रेम इतना – अन्तरग था कि वह चमडी उतारने पर भी नही उतर सकता था ओर भी वह आजीवन के लिए था थोडे दिनो के लिए नही।

कवियो ने कहा हे कि सीता राम के रग मे रग गई थी। पर राम म अब कोन–सा नवीन रग आया हे? जिसमे सीता रग गई हे?

जिस समय सीता के स्वयवर–मडप मे सव राजाआ का पराक्रम हार गया था, सब राजा निस्तेज हो गये थे ओर जब सव राजाओ के सामने राम ने अपना पराक्रम दिखलाया था उस समय राम के रस म सीता का रचना

ठीक था उस समय के रग मे स्वार्थ था। इसलिए उस समय के लिये कवि ने यह नही कहा कि सीता राम के रग मे रग गई। मगर इस समय राम ने सब वस्त्र उतार दिये है, वल्कल वस्त्र धारण किये है, फिर सीता राम के रग मे क्यो रगी है? अपने पति के असाधारण त्याग को देखकर और ससार के कल्याण के लिए उन्हे वनवास जाने को उद्यत देखकर सीता के प्रेम मे वृद्धि ही हुई। वह राम के लोकोत्तर गुणो पर मुग्ध हो गई। इसी से कवि ने कहा है कि सीता राम के रग मे सराबोर हो गई।

इस समय सीता की एकमात्र चिन्ता यही थी कि जैसे प्राणनाथ को वन जाने की अनुमति मिल गई है, वैसे ही मुझे मिल सकेगी या नही?

वास्तव मे वही स्त्री पति–प्रेम मे अनुरक्त कहलाती है जो पति के धर्म–कार्य मे सहायक होती है। गहने–कपडे पाने के लिये और दूसरे भोग–विलास करने के लिये तो सभी स्त्रीया प्रीति प्रदर्शित करती हैं मगर सकट के समय पति के कधे से कधा भिडाकर चलने वाली स्त्री सराहनीय है। गिरते हुये पति को उठाने वाली और उठे हुए पति को आगे बढाने वाली स्त्री पतिपरायणा कहलाती है।

कौशल्या और सीता

रामचन्द्र ने मा कौशल्या को प्रणाम किया और विदा लेने लगे। तब पास ही खडी सीता भी कौशल्या के पैरो मे गिर पडी। सीता को पैरो मे गिरी देख कौशल्या समझ गई कि सीता उस पींजरे से बाहर जाना चाहती है जिसे राम ने तोडा है।

फिर कौशल्या ने सीता से कहा – बहू, तुम चचल क्यो हो?

सीता – माता! ऐसे समय चचलता होना स्वाभाविक ही है। आपके चरणो की सेवा करने की मेरी बडी साध थी। वह मन–की–मन मे ही रह गई। कौन जाने अब कब आपके दर्शन होगे।

कौशल्या – क्या तुम भी वन जाने का मनोरथ कर रही हो?

सीता–हा माता! यही निश्चय है। जिनके पीछे यहा आई हू, जब वे ही वन जा रहे है तो मै यहा किस प्रकार रहूगी? जब पति वन मे हो तो पत्नी राजभवन मे रहकर उनकी अर्धांगिनी कैसे कहला सकती है?

सीता की बात से कौशल्या की आखे भर गई। राम तो ठीक, पर यह राजकुमारी सीता वन मे कैसे रहेगी? फिर सीता सरीखी गुणवती वधू के वियोग से सासू को शोक होना स्वाभाविक था। कौशल्या ने सीता का हाथ

पकड कर अपनी ओर खींच कर उसे वालक की तरह अपनी गोद मे ले लिया। अपनी आखो से वह सीता पर इस तरह अश्रुजल गिराने लगी जेसे उसका अभिषेक कर रही हो। थोडी देर वाद कोशल्या ने कहा – पुत्री क्या तू भी मुझे छोड जाएगी? तू भी मुझे अपना वियोग देगी? राम को अपना धर्म पालना है, उन्हे अपने पिता के वचन की रक्षा करनी हे इसलिए वे वन को जाते हें। पर तुम क्यो जाती हो? तुम पर क्या ऋण है?

सीता इस प्रश्न का क्या उत्तेर देती? वह यही उत्तर दे सकती थी कि में राम के रग मे रगी हू। पति जिस ऋण को चुकाने के लिए वन को जाते हैं, वह क्या अकेले उन्हीं पर है? नहीं वह मुझ पर भी हे। जब मैं उनकी अर्धांगिनी हू, तो पति पर चढा ऋण पत्नी पर भी हे। पर सीता ने कोई उत्तर नही दिया। वह मौन रही।

कौशल्या समझा–बुझा कर सीता का राम–रग उतारना चाहती है पर वह सीता जो ठहरी। रग उतर जाता तो सीता सीता ही नहीं रहती। दूसरी कोई स्त्री होती तो वह इस अवसर से लाभ उठाती। वह कहती – में क्या करू, मैं तो जाने को तैयार थी मगर सासूजी नहीं जाने देतीं। सास की आज्ञा मानना भी तो बहू का धर्म हे! पर सीता ऐसी स्त्रियो मे नहीं थी।

कोशल्या ने सीता से कहा – बहू! विदेश प्रियकर नही हे। प्रवास अत्यन्त कष्टकर होता हे, फिर वन का प्रवास तो ओर भी अधिक कष्टमय हे। तू किसी दिन पैदल नही चली। अव काटो से परिपूर्ण पथ पर तू केसे चल सकेगी? तेरे सुकुमार पेर ककरो ओर काटो का आधात केसे सहेगे?

आप सीता को कोई गुडिया न समझे जो चार कदम भी पेदल नही चल सकती। उसके चरित्र पर विचार करने से स्पष्ट मालूम हो जाता हे कि वह सुख के समय पति के पीछे रही थी ओर दु ख मे पति के आगे रही थी। अतएव उन्हे कायर नही समझना चाहिए।

सब ही बाजे लश्करी – सब ही लश्कर जाय।
सेल धमाका जो सहै सो जागीरी खाय।।
गलियारा फिरता फिरे बाध ढाल तलवार।
सूरा तब ही जानिये रण बाजे झकार।।

स्त्रिया कहती हें – हमे कायर तव समझना जव हम दु ख पडने पर आगे न रहे। पति के आगे रहने वाली स्त्रिया भारत मे कम नहीं हुई हें। सलूवर की रानी ने तो पति से पहले ही अपना सिर द दिया था। उसने कहा था – आपको मेरे शरीर पर मोह हे तो पहले मेरा ही सिर ल लो। 'जो वीरागना

हसती–हसती अपना सिर दे सकती है, उसे कायर कहने का साहस कौन कर सकता है? वीरागना कहती है – हम सुख के समय ही कायर और सुकुमार हैं। सुख के समय ही सवारी पर बैठ कर चलती हैं। लेकिन दु ख के समय हम पति से आगे रहती हैं। पति जो कष्ट उठाता है, उससे अधिक कष्ट उठाने के लिए हम तैयार रहती है। अगरबत्ती की सुगन्ध जलने पर ही मालूम होती है।

लोग स्त्री को 'अबला' कहते हैं, पर वास्तव मे स्त्री अबला है अथवा उसे अबला कहने वाले पुरुष ही निर्बल हैं, यह कौन जाने? खेद की बात यह है कि स्त्रिया भी अपने को अबला समझ बैठी हैं। वास्तव मे स्त्री अबला नही, सबला है पबला है। आज भी जो काम स्त्रिया कर सकती हैं, वह पुरुष नहीं कर सकते हैं या बडी कठिनाई से कर सकते हैं। कहावत है – 'बाप राजा और मा भिखारिन।' राजा बाप को भी अपने बेटे के पालने मे कठिनाई होगी पर भिखारिन मॉ सहज ही लडके को पाल सकती है। ऐसा होते हुए भी लोग अपनी माता को निर्बल समझते हैं। माता को निर्बल समझने वाले यह क्यो नहीं समझते कि माता निर्बल होती तो वे स्वय कैसे सबल हो सकते थे?

कौशल्या सीता को कोमलागी समझ कर वन जाने से रोकना चाहती है। वह कहती है – हे राम मैं तुमसे और सीता से कहती हू कि सीता वन के योग्य नही है। मैंने सीता को अमृत की जडी की तरह पाला है। वह वन रूपी विषकटक मे जाने के योग्य नही है। यह राजा जनक के घर पल कर मेरे घर आई है। जिसने जमीन पर पैर तक नही रखा, वह वन मे पैदल कैसे चलेगी? यह किरातेकिशोरी अर्थात् भील की लडकी नही है और न तापस नारी है जो वन मे रह सके। दाख का कीडा पत्थर मे नही रह सकता। वह मेरी नयन–पुतली है जो तनिक भी आघात नहीं सह सकती।'

कौशल्या का कथन चाहे ममता के स्रोत से निकला हो मगर सीता के लिए वह परीक्षा है। अब सीता के रामरस की कसौटी हो रही है।

अगर आपको अच्छा खाना–पीना मिले तो आप रामरस को मीठा मानेगे? कही रामरस की बदौलत जगल मे भटकने का मौका आ जाय और कंकर–पत्थर वाली जमीन पर सोना पडे तो आपको वही खारा लगने लगेगा। [illegible] सीता जिसे राम–रस को छोडकर ससार का ओर कोई भी रस रुचिकर नही है। उसके लिए राम–रस मे जो अद्भुत मिठास है वह अमृत मे भी नही। पर राम–रस इसके लिए सदेव एक–रस है भवन मे भी मीठा और वन मे भी मीठा।

कौशल्या कहती है – जगल बडा दुर्गम प्रदेश है। यहा थोडी दूर जाने पर भी जल की झारी वाली दासी साथ रहती है वहा दासी कहा? वहा तो प्यास लगने पर पानी मिलना भी कठिन हे। जव गरम हवा चलेगी ओर ऊपर से धूप गिरेगी, तब मुह सूख जाएगा। उस समय पानी कहा सुलभ होगा? जगल मे पडाव नही है कि पानी मिल सके। इस प्रकार तू प्यास के मारे मरेगी और राम की परेशानी बढ जायेगी। यहा तुझे मेवा–मिष्टान्न मिलता है, वहा कडुवे–खट्टे फल भी सुलभ नही होगे। सीता तू भूख–प्यास आदि का यह भयकर कष्ट सहन कर सकेगी?

कौशल्या आगे कहती है – जगल मे बेहद सर्दी–गरमी पडती है। मुनि के लिए कहा जाता है –

शीत पडे कपि मद झरे, दाझै सब बनराय।
ताल तरगिनि के निकट, ठाडे ध्यान लगाय।
वे गुरु मेरे उर बसो।

इस प्रकार जिनकल्पी महात्माओ का उदाहरण देकर कौशल्या कहती है – वन मे कभी–कभी ऐसा पाला पडता है कि बन्दर का भी मद झर जाता है और वन का वन जल कर सूख जाता है। वहा न महल है न गरम कपडे है और न सिगडी का ताप है। चलते–चलते रात हो गई वही बसेरा करना पडता है। यही नही जगल मे भयानक हिसक जानवर भी होते हैं। रीछ, चीता, बाघ, सिह वगैरह के भयकर शब्दो को तू केसे सुन सकेगी? तूने कभी कठोर शब्द तो सुना ही नही है।

सीता सासूजी की सब बाते सुनकर तनिक भी विचलित नही हुई। उसने सोचा कि यह तो मेरे रामरस की परीक्षा हो रही हे। अगर इसमे मे उत्तीर्ण हुई तो मेरा मनोरथ पूरा हो जायगा।

सीता के शरीर पर हाथ फेर कर कोशल्या कहने लगी – दखती नही तेरा शरीर फूल–सा कोमल हे। तू बचपन से कोमल शेया पर सोई हे। लेकिन वन मे शय्या कहा? धरती पर सोने मे तुझे कितना कष्ट होगा? उस समय राम के लिए तू भार हो जाएगी। परदश मे स्त्रिया पुरुषो के लिए भार–रूप हो जाती हैं। फिर यह तो वन का प्रवास हे। स्त्रिया घर म ही शोभा देती है। जगल भटकना उनके बूते की वात नही हे।

माता कोशल्या की बात का राम ने भी समर्थन किया। वे मुस्करात हुए वोले – माता आप ठीक कहती हे वास्तव मे जानकी वन जाने याग्य नही हे।

माता के सामने जानकी के विषय मे कुछ कहते हुए राम लज्जित तो हुए लेकिन आपत्तिकाल मे सर्वथा चुप भी नही रह सकते थे। माता–पिता की मर्यादा की रक्षा करना आदर्श पुत्र का कर्तव्य है। किन्तु विकट प्रसग पर उस मर्यादा को कुछ सकीर्ण करना ही पडता है। जो काम साधारण अवसर पर अच्छा नही समझा जाता वही विशिष्ट अवसर पर बुरा भी नही माना जाता। विवाह के समय वर सबके समक्ष वधू का पाणिग्रहण करता है, पर दूसरे समय मे ऐसा करना मर्यादाहीनता समझा जाता है।

राम सीता से कहने लगे – सुकुमारी! वैसे तो मै तुम्हे विलग नही करना चाहता मगर मैं मातृभक्त हू। अतएव मैं कहता हू कि तुम्हे घर पर रहकर माता की सेवा करनी चाहिये। मैं तुम्हे जितना समझ पाया हू, उसके आधार पर कह सकता हू कि तुम शक्ति और सरस्वती हो। मै तुम्हारी शक्ति को जानता हू इसलिए तुम घर पर रहो। मेरे वियोग के कारण माता जब दु खी हो तो उन्हे सात्वना देकर शात करना। मुझ पर पिता का ऋण है, इसलिए मेरा वन जाना आवश्यक है। तुम्हारे ऊपर कोई ऋण नही है, अतएव तुम्हारा जाना आवश्यक नही। इसके अतिरिक्त मेरी इच्छा भी यही है कि तुम घर रहोगी तो स्वय सुखी रहोगी और माता भी सुखी रह सकेगी। अगर तुम मेरी सेवा के लिए वन जाना चाहती हो तो माता की सेवा होने पर मै अपनी सेवा मान लूगा। इतने पर हठ करोगी तो कष्ट ही उठाना पडेगा। हठ करने वाले को सदा कष्ट ही भोगना पडता है। इसलिए तुम मेरी और माता की बात मान जाओ। वनवास कोई साधारण बात नहीं है। वन मे बडे–घोर कष्ट है। हमारा शरीर वज्र के समान है। वैरियो के सामने युद्ध करके हम मजबूत हो गए। लेकिन तुमने कभी घर से बाहर पैर भी रखा है? अगर नही, तो मेरी समता मत करो। वन मे भूख–प्यास सर्दी–गरमी आदि के दु ख अभी माता बतला चुकी है। मे अपने साथ एक भी पैसा नही ले जा रहा हू कि उससे कोई प्रबन्ध कर सकूगा। राजा का कोई काम न करना फिर भी राज्य की सम्पत्ति का उपयोग करना मे उचित नही समझता। इसलिए मैं राज्य का एक भी पैसा नही ले जा रहा हू। इस स्थिति मे तुम्हारा चलना सुविधाजनक न होगा।

मैने वल्कल वस्त्र पहने है। वन मे जाकर मे अपने जीवन की रक्षा के लिए सात्त्विक साधन काम मे लूगा। मे वन–फल खाकर भूमि पर सोऊगा। वृक्ष की छाया ही मेरा घर होगी या कोई पर्णकुटी बना कर कही रहूगा। तुम ये सब कष्ट सह नही सकोगी।

राम और सीता

राम बडी दुविधा मे पडे हैं। एक ओर सीता के प्रति ममता के कारण उसके कष्टो की कल्पना करके और माता को अकेली न छोड जाने के उद्देश्य से वह सीता को साथ नहीं ले जाना चाहते, दूसरी ओर सीता की पति–परायणता देख और पति–वियोग उसके लिए असह्य होगा यह सोचकर वे उसे छोड जाना भी नही चाहते। फिर भी वे यह चाहते हैं कि सीता वन के कष्टो के विषय मे धोखे मे न रहे। इसीलिये उन्होने सारे कष्टो को सीता के सामने रख दिया।

यही बात शास्त्रो मे पाई जाती है। जब कोई पुत्र दीक्षा लेने की इच्छा से माता–पिता के सामने आता, और उनसे दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा चाहता था तो माता–पिता दीक्षा के विरोधी न होने पर भी दीक्षा के कष्टो को विस्तार के साथ पुत्र के सामने प्रकट कर देते थे। इसका उद्देश्य यह होता था कि पुत्र किसी प्रकार के भ्रम मे न रहे। उसे बाद मे पछतावा न करना पडे कि हाय, मैं क्यो इस मुसीबत मे पड गया? ऐसा जानता तो मे साधु बनता ही क्यो? माता–पिता ऐसा न करे तो माता या पिता के नाते उनका जो कर्तव्य है, उससे वे गिर जाए । इस कारण माता–पिता सयम–जीवन की सब कठिनाइया पहले ही समझा देते थे। सब बाते पहले समझ कर सयम लेने वाला धोखे मे नही रहता और बिना धोखे के सयम लेने मे ही उसका महत्त्व है। 'एक घडी की गोचरी और सात घडी का राज्य' इस प्रकार की लुभावनी बाते कहकर सयम की ओर आकर्षित करने से मनुष्य आगे चलकर ठीक सयम नही पाल सकता।

दीक्षार्थी की माता उसे समझाती थी – अभी तो भूख लगते ही भोजन मिल जाता है ओर इच्छानुसार मिल जाता हे मगर सयम लेने पर भूख–प्यास की पीडा सहनी होगी ओर अरुचिकर आहार से भी जीवन यात्रा का निर्वाह करना पडेगा। भोजन कभी मिलेगा कभी नही मिलेगा। मिलेगा भी तो कभी समय पर नही मिलेगा। अगर ऐसे कष्ट सहन करने की क्षमता हो तो सयम ग्रहण करो अन्यथा मत ग्रहण करो। इस प्रकार सयम लेने वाले की माता पहले ही चेतावनी दे देती थी। कोशल्या भी सीता को वन म होने वाले कष्ट समझा रही हे।

सीता–राम ने भी बडा व्युत्सर्ग या वलिदान किया हे। कहा जाता हे कि बलिदान के बिना देवी की पूजा नही होती और हम भी यही कहत हैं कि त्याग–प्रत्याख्यान के विना आत्मा का कल्याण नही होता। मगर देखना

यह है कि बलिदान किसका करना है? अधिक से अधिक मूर्च्छा या ममता का त्याग करने वाले ही अपनी आत्मा के कल्याण के साथ जगत् का कल्याण करने मे समर्थ हो सके हैं। अतएव अन्त करण मे घुसी हुई ममता ही बलिदान करने योग्य है। ऐसा बलिदान करने वाले महात्मा ही देश और धर्म का भला कर सकते हैं।

राम और कौशल्या ने सीता को घर रहने के लिए समझाया। उनकी बाते सुनकर सीता सोचने लगी—यह एक विकट प्रसग है। अगर मैं इस समय लज्जा के कारण चुप रह जाऊगी और घर ही बैठी रहूगी तो यह मेरे लिए स्त्री—धर्म का नाश करना होगा। इस प्रकार विचार कर और मनोबल को दृढ करके सीता ने राम से कहा—प्रभो! आपने और माता जी ने वन के कष्टो के विषय मे जो कुछ कहा है वह सब ठीक। आपने वन के कष्ट बतला दिये, सो भी अच्छा ही किया। लेकिन मैं हौंस की मारी वन को नही जा रही हू आप विश्वास कीजिए कि मैं वन के कष्टो से भयभीत नही होती बल्कि यह कष्ट सुनकर वन के पति मेरी उत्सुकता अधिक बढ गई है। मुझे अपने साहस और धैर्य की परीक्षा देनी है और मै उस परीक्षा मे अवश्य ही सफल होऊगी।

सुख मे तो आ—आकर घेरे। दुख मे सब मुह फेरे।।
देखेगा अब कौन उसे। मरना होगा बस मौन उसे।।

मैं सुख के समय आपके साथ रही हू तो क्या दु ख के समय किनारा काट जाऊ? सुख के साथी को दु ख मे भी साथ होना चाहिए। जो ऐसा नही करता वह सच्चा साथी नही स्वार्थी है। आप वन के कष्ट बतला कर मुझे वन जाने से रोक रहे है मगर क्या मैं आपके सुख की ही साथिन हू? क्या मुझे स्वार्थपरायण बनना चाहिए? नही में दु ख मे आप से आगे रहने वाली हू।

राम का ऐसा पक्का रग सीता पर चढा था कि स्वय राम के छुटाये भी न छूटा। राम सीता को वन जाने से रोकना चाहते थे पर सीता नही रुकी। वास्तव मे राम रग वह है जो राम के धोने से भी नही धुलता।

सीता कहती है — प्राणनाथ! जान पडता है आज आप मेरी ममता मे पड गये है। मेरे मोह मे पडकर आपने जो—कुछ कहा है उसका मतलब यह है कि मै अपने धर्म कर्म का ओर अपनी विशेषता का परित्याग कर दू। यद्यपि आपके वचन शीतल ओर मधुर है लेकिन चकोरी के लिए चन्द्रमा की किरण भी दाह उत्पन्न करने वाली हो जाती है। वह तो जल से ही प्रसन्न रहती है। स्त्री का सर्वस्व पति है। पति ही स्त्री की गति है। सुख—दु ख मे समान रह कर पति का अनुसरण करना ही पतिव्रता स्त्री का कर्तव्य है। मे इसी

कर्तव्य का पालन करना चाहती हू। अगर में अपने कर्तव्य से च्युत हो गई तो लोग मुझे घृणा के साथ स्मरण करेगे। इससे मेरा गोरव नष्ट हो जायगा। इसके अतिरिक्त आप जिस गौरव को लेकर ओर जिस महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिए वन–गमन कर रहे हैं, क्या उस गोरवपूर्ण काम मे मुझे शरीक नहीं करेगे। क्या आप अकेले ही रहेगे? ऐसा मत कीजिए। मुझे भी उसका थोडा–सा भाग दीजिए। अगर मुझे शामिल नहीं करते तो मुझे अर्धांगिनी कहने का क्या अर्थ है? हा, अगर मेरा वन जाना अपमान की बात हो तो भले ही मुझे मत ले चलिए। अगर गोरव की बात हे तो मुझे घर ही मे रहने की सलाह क्यो देते हैं? आपका आधा अग घर ही रह जाएगा तो आप वन मे विजय कैसे पा सकेगे? आधे अग से किसी को विजय नही मिलती।

आप वन मे भय ही भय बतलाते हैं मगर आप के साथ मुझे तो वन मे जय ही जय दिखाई देती है। कदाचित् भय भी वहा होगा मगर भय पर विजय पा लेना कोई कठिन नही है ओर ऐसी विजय मे ही सुख का वास हे।

कदाचित् आप सोचते होगे कि सीता मे आत्मबल नहीं हे इस कारण वन उसके लिए कष्टकर होगा लेकिन अवसर मिलने पर में अपना बल दिखलाऊगी। स्त्री के लिए जितने भी व्रत नियम और धर्म हैं उनमे से किसी से भी चूक जाऊ तो मे जनक की पुत्री नही। अधिक क्या कहू, बस इतना ही निवेदन करना चाहती हू कि मे आपकी अर्धांगिनी हू, सुख–दु ख की साथिन हू। मुझे अलग मत कीजिए। वन के जो कष्ट आप सह लेगे वे में भी सह लूगी। कोमलता कठोरता के सहारे ओर कठोरता कोमलता के सहारे रहती हैं। डाली के बिना पत्ती ओर पत्ती के बिना डाली नही रह सकती। दोनो का अस्तित्व सापेक्ष है। में माताजी से भी यही प्रार्थना करती हू कि मुझे नि सकोच होकर आज्ञा दे। 'स्त्री के हृदय को स्त्री जल्दी ओर खूब अच्छी तरह समझ सकती हे। उनसे ज्यादा निवेदन करने की आवश्यकता ही नही।

अब लोगो को सोचना चाहिए कि जिस चीज मे राम नही हैं वह सुखप्रद होने पर भी ग्राह्य हे या नही? ओर जिसमे सब दु ख हे मगर राम हे तो ग्राह्य है या नही? जिसमे राम नही हे, वह चीज अगर छूट रही हो तो उसे छोडना चाहिए या नही? ऐसे प्रसग पर क्या करना चाहिए? यह बात सीता से सीखने योग्य हे। कामदेव श्रावक से देव ने कहा था – अपना धर्म छाड दे नही तो तन के टुकडे टुकडे कर दूगा। फिर भी कामदेव अटल रहा। उसने सोचा – तन जाता हे तो जाय जिसमे राम हे – धर्म हे – उसे नही छाडूगा।

हनुमानजी वानर–वशी क्षत्रिय थे वानर नहीं थे। वानर–वशी होने के कारण वे वानर के रूप मे प्रसिद्ध हो गये हैं। कहते हैं, एक बार उन्हे सीता ने एक हार दिया। हनुमानजी उस हार को पत्थर पर पटक कर फोडने लगे। यह देखकर लोग कहने लगे – अरे, हनुमानजी यह क्या कर रहे हैं? हनुमानजी से हार फोडने का कारण पूछा गया। उन्होने बतलाया – मैं देखना चाहता हू कि इसमे राम है या नहीं। अगर राम हो तो यह मेरे काम का है। इसमे राम न हुए तो मेरे किस काम का है? हनुमानजी का यह उत्तर सुनकर लोग चकित रह गये। वे सोचने लगे – हनुमानजी की राम के प्रति कैसी निष्ठा है। कैसी अपूर्व भक्ति है। सचमुच हनुमानजी रामभक्तो मे शिरोमणि हैं।

सीता सोचती है – जहा राम है, वहा सभी सुख हैं। जहा राम नही, वहा दु ख ही दु ख हैं। राम स्वय सुखमय हैं। उनके वियोग मे सुख कहा है?

सीता ने राम से कहा – आप वन मे सताप कहते हैं पर वहा पाप तो नही है? जहा पाप न हो, वह सताप, सताप नही है, वह तो आत्मशुद्धि करने वाला तप है। आप भूख–प्यास का कष्ट बतलाते हैं लेकिन स्त्रिया इन कष्टो को कष्ट ही नहीं गिनती। अगर हम भूख–प्यास से डरती तो पुरुषो से अधिक उपवास न करती। भूख सहने मे स्त्रिया पक्की होती हैं।

सीता की बाते सुनकर कौशल्या सोचने लगी – सीता साधारण स्त्री नही है। इसका तेज निराला है। यह साक्षात् शक्ति है। राम और सीता मिलकर जगत् का कल्याण करेगे। जगत् मे नया आदर्श रखने के लिए इनका जन्म हुआ है। अतएव सीता को राम के साथ जाने का अनुमति देना ही ठीक है।

आज भारत की प्रजा आचार–विचार मे शिथिल होती जाती है। जिस श्रेष्ठ आचार–विचार पर भारत की श्रेष्ठता निर्भर है, उसे त्याग देना हमारे लिए हितकर न होगा अतएव भारतीय जनता को अपनी शिथिलता दूर करने के लिए राम और सीता के चरित्र पर दृष्टिपात करना चाहिए। अब तो सभी का आचार–विचार शिथिल पड गया है यह देखकर किसी को अपने आचार–विचार मे शिथिलता नही घुसने देनी चाहिए। लखपति विरला होता है और गरीब बहुत–से होते हैं। लेकिन लखपति यह नहीं सोचता कि बहुत–से लोग गरीब हैं तो मै अकेला ही क्यो लखपति रहू। अगर कोई राजा है तो वह नही सोचता कि दूसरे राजा नही हैं तो मै अकेला ही क्यो राजा रहूं? ऐसे प्रसग पर तो लोग सोचते है – अपना–अपना भाग्य है। जब निर्धन बनने मे दूसरे का अनुसरण नही किया जाता तो आचार–विचार की शिथिलता का क्यो अनुसरण करना चाहिये? आचरणहीनता का अनुकरण करने से पतन होता है।

अतएव हमारी दृष्टि उस ओर नही वरन् श्रेष्ठ आचरण करने वालो की ओर जानी चाहिये। ऐसा करने से जीवन उन्नत और पवित्र बनेगा। एक कवि ने कहा है–

निज पूर्वजो के चरित का, जिसको नहीं अभिमान है।
उस जाति का जीना जगत् मे मित्र! मरण समान है।।
रखता सदा जो पूर्वजों के, सद्‌गुणो का ध्यान है।
उस जाति का निश्चय समझ लो शीघ्र ही उत्थान है।।

जिस जाति या समाज के हृदय मे अपने पूर्वजो के प्रति गौरव का भाव नही है, उनकी वीरता, धीरता, दानशीलता और शील–सम्पन्नता के प्रति आदर नहीं हे, जो अपने पूर्वजो के सद्‌गुणो का तिरस्कार करता है। समझना चाहिए कि उस जाति एव उस समाज का पतन दूर नही है। जिस जाति की अवनति होनी होती है, उसके साहित्य का पतन पहले होता है। जिसको अपनी उन्नति की चिन्ता होगी, वह अपने साहित्य को गिरने नहीं देगा। वह अपने साहित्य मे अपने आदर्श पूर्वजो की गोरवगाथा को अभिमान के साथ स्थान देगा और इस प्रकार अपनी जाति के समक्ष नवीन प्रेरणा उपस्थित कर देगा। इस प्रकार जो जाति अपने पूर्वजो का ध्यान रखेगी वह उन्नत होती चली जाएगी। एक विद्वान का कहना हे कि चाहे लाखो मनुष्य मर जावे लेकिन देश का साहित्य और हमारे पूर्वजो का गौरव यदि बना रहे तो हमारा कोई कुछ भी नही बिगाड सकता।

लोग राम का चरित्र क्यो सुनते हें? यह चरित्र इतना प्यारा क्यो लगता हे? इसका एकमात्र कारण यही हे कि इससे आत्म–सन्तोष के साथ प्रेरणा मिलती हे। अगर ऐसा चरित्र हमारे हृदय मे बना रहे तो हम उन्नत हो सकते हें। अतएव राम के इस चरित्र को कोई केवल मनोरजन का साधन न माने। इसे जीवन–जागृति का प्रेरक समझ कर ओर इसे सम्मुख रखकर अपना जीवन उन्नत बनाना चाहिये। इतनी सूचना कर देने के बाद फिर प्रकृत विषय पर आना उचित हे।

सीता की बातो से प्रभावित होकर कोशल्या ने सीता को आशीर्वाद दिया–वेटी जब तक गगा ओर यमुना की धारा बहती रहे तब तक तेरा सोभाग्य अखण्ड रहे। मेने समझ लिया कि तू मेरी ही नही सारे ससार की हे। तेरा चरित्र देखकर ससार की स्त्रिया सती बनेगी ओर इस प्रकार तरा अहिवात (सौभाग्य) अखण्ड रहेगा। सीते! तेरे लिए राजभवन ओर गहन वन समान हो – तू वन मे भी मगल से पूरित हो।

सीता अपनी सास का आशीर्वाद पाकर कितनी प्रसन्न हुई यह कहना कठिन है। आशीर्वाद देते समय कौशल्या के हृदय की क्या अवस्था हुई होगी यह तो कौशल्या ही जानती है या सर्वज्ञ भगवान् जानते है।

राम और सीता के भावो के चरित्र सम्मिश्रण की अवस्था मे कौशल्या के पैरो मे गिर पडे। कौशल्या ने अपने हृदय के अनमोल मोती उन पर बिखेर दिये और विदाई दी।

राम के साथ लक्ष्मण भी!

माता से विदा होकर राम सीता के साथ रवाना होने लगे। उस समय लक्ष्मण पास मे ही खडे थे। राम को जाते देख लक्ष्मण ने उन्हे प्रणाम किया। राम ने उन्हे छाती से लगा लिया। सिर पर प्यार का हाथ फेर कर राम कहने लगे – 'वत्स ! चिंतित न होना। आनन्द मे रहना। विलम्ब हो रहा है। विदा दो मै जाऊ।

लक्ष्मण – पभो! विदा किसे कहते हैं यह तो मुझे मालूम ही नही ।

राम – इतने दिन मेरे साथ रहकर भी और इतना सब सुनकर भी तुम नही जान पाये? भैया मै तेरा हृदय जानता हू। मैं यह भी जानता हू कि तेरा हृदय मेरे वियोग से फट रहा है। पर यह तो नियति का विधान है। यह अदृश्य की प्रबल प्रेरणा है। इसमे कोई परिवर्तन नही हो सकता। अब दूसरी बात सोचने के लिए एक भी क्षण नही है। प्रिय लक्ष्मण! मुझे जाने दो।.तुम यहा रहकर माता–पिता और प्रजा की सेवा करना। यहा रहकर मैं जो सेवा करता था उसका भार अब तुम्हारे कन्धो पर हे। मेरे जाने के बाद कोई यह न कहने पावे कि राम के न होने से यह काम बिगड गया है! इसलिए मैं तुम्हे यहा रख जाता हू। तुम पजापालन मे भरत की सहायता करना। तुम भरत के सहायक रहोगे तो पजा शाति का अनुभव करेगी।

लक्ष्मण – भाता! आपने नीति की सीख दी हे। लेकिन नीति ओर धर्म की बात तो वही समझ पाता ओर पालता है जो बलवान होता है। मै बालक की तरह आपकी छाया मे पला हू और आपका अनुचर हू। मेरे लिए नीति धर्म या चाहे सो कहिए आप ही हे। आपको छोडकर ओर कुछ भी मेरे लिए सर्वेश्वर नही हे। आप मुझ पर जो भार डाल रहे हे वह मेरी शक्ति से परे है। मै उस भार से दब जाऊगा। मेरे लिए राम ही ससार हे। राम को छोडकर मै और कुछ नही जानता।

यह कहते–कहते लक्ष्मण का कठ भर आया। वे राम के पेरो मे गिर पडे और पैर पकड कर कहने लगे – में दास हू ओर आप स्वामी है। मैंने उत्तर–प्रत्युत्तर करना छोड दिया हे। जब से आपने मुझे समझाया, में मोन हू। मैंने दास भाव ग्रहण कर रखा हे। अव आप मुझे अलग रहने को कहते हें सो इस पर मेरा कोई वश नहीं हे। लेकिन आपका यह कहना पानी से मछली को अलग करने के लिए कहने के समान हे। मछली पानी से जुदा की जा सकती हे मगर वह जुदाई सह नही सकती। आप मुझे अपने से जुदा कर सकते हैं मगर मैं जुदा रह नही सकता। शरीर नही, तो आत्मा ही आपके साथ रहेगी।

लक्ष्मण ने जब से राम का त्याग–वेराग्य देखा था, तभी से सबके साथ की प्रीति तोडकर उन्होने राम मे ही समग्र प्रीति केन्द्रित कर ली थी। इसी कारण लक्ष्मण जगत् के बडे–से–बडे मूल्यवान वेभव को भी ठुकरा सकते थे, मगर राम–चरणो से दूर नही हो सकते थे।

राम से प्रीति तो ओर लोग भी करते हें पर उसकी परीक्षा समय आने पर ही होती है। आप यो तो राम से प्रेम करते हें पर दूकान पर बैठ कर उन्हे भूल तो नही जाते? उस समय आपको राम की अपेक्षा दाम बडा तो नही मालूम होता? जिसने राम को बडा समझा होगा वह राजपाट को तुच्छ ही समझेगा।

स्त्रियो को अगर सीता का चरित्र प्रिय लगेगा तो वे पहले पति–प्रेम के जल मे स्नान करेगी। पति–प्रेम के जल मे किस प्रकार स्नान किया जाता हे। यह बात सीता के चरित्र से समझ मे आ सकती हे। राम से पहले सीता का नाम लिया जाता हे। सीता ने यदि पति–प्रेम के जल मे स्नान न किया होता ओर राजभवन मे ही वह रह जाती तो उसका नाम आदर के साथ कोन लेता?

राम–रावण युद्ध के समय लक्ष्मण को जब शक्तिबाण लगा था ओर लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये थे तब तुलसीदास के कथनानुसार सजीवनी बूटी लाई गई थी। लेकिन जेन रामायण का वर्णन कुछ भिन्न हे। विशल्या नाम की एक सती थी। वह थी तो कुमारी पर लक्ष्मण पर उसका अत्यधिक प्रेम था। राम को मालूम हुआ कि विशल्या के स्नान का जल लाये तो लक्ष्मण का लगी हुई शक्ति भाग जाएगी। लोक मे पानी तो गगा आदि का भी पवित्र माना जाता हे, लेकिन विशल्या के स्नान के जल मे ही क्या ऐसी शक्ति थी कि उससे देविक शक्ति भी नही ठहर सकती थी? शक्ति वास्तव म जल म नही विशल्या

के सत्य और शील मे थी। उसी के सत्य शील की शक्ति जल मे आती थी। अगर जल मे शक्ति होती तो विशल्या के स्नान के जल की क्या आवश्यकता थी? फिर तो कोई भी जल लक्ष्मण को लगी शक्ति को दूर कर सकता था।

हनुमानजी विशल्या के स्नान का जल लेने गए। उन्होने विशल्या से कहा – बहिन अपने स्नान का जल दो।

विशल्या – मेरे स्नान के जल की क्यो आवश्यकता हुई?

हनुमान – लक्ष्मण को शक्ति लगी है। तुम्हारे स्नान के जल से उन्हे जीवित करना है।

विशल्या सोचने लगी – मुझे तो अपने इस सामर्थ्य का पता नहीं है। फिर भी जब राम ने जल चाहा है तो मुझ मे शक्ति होगी ही। मगर जिन्हे मैं हृदय से पति मानती हू, उनके लिए स्नान का जल कैसे भेजूं? मैं स्वय क्यो न चली जाऊ?

इस प्रकार सोचकर विशल्या स्वय गई। उसके हाथ का स्पर्श होते ही शक्ति भाग गई और लक्ष्मण जीवित हो गये ।

विशल्या मे यह शक्ति उसके सतीत्व के कारण ही थी। जो स्त्री सतीत्व की आराधना करेगी, वह अचिन्तनीय सामर्थ्य से युक्त बन जायेगी। अतएव सीता के चरित्र को केवल सुनने की वस्तु न समझ कर आचरण की वस्तु समझना चाहिए। इस प्रकार राम और सीता के चरित्र का अनुकरण करने वाले नर और नारी अपने कल्याण के साथ जगत् का कल्याण कर सकेगे।

लक्ष्मण फिर कहते है – अग्रज! मैं आपके साथ ही चलूगा। 'विदा' शब्द ही मुझे भयकर लगता है। ससार मे एक का नाता अनेक के साथ होता है। मगर मेरा नाता तो सिर्फ राम के साथ है। मैं राम का ही भक्त हू। क्या आप नही जानते कि मेरे हृदय मे लेश मात्र भी अभिमान नहीं है? मेरे दिल मे पाप नही है। फिर दीनबन्धु होकर भी आप अपने बन्धु को तज देगे! अगर आप यह न जानते हो कि आप के चले जाने पर ओर लक्ष्मण को साथ न ले जाने पर भी लक्ष्मण कुशलपूर्वक रह सकेगा तो आप छोड जाइए। यदि आप जानते हो कि प्राण चले जाने पर लक्ष्मण का शरीर नही टिकेगा तो साथ रखिए। आप मुझे अवध मे रहने को कहते हैं किन्तु आपके अभाव मे श्मशान बने अवध मे रह कर मै क्या करूगा? अवध के प्राण तो आप ही हैं। आपके चले जाने पर यह निष्प्राण है। मै इस निष्प्राण अवध मे क्या इसका प्रेतकर्म करने के लिए रहूगा?

ससार का स्वरूप समझकर उससे विरक्त हो जाने वाला पुरुष मानता है मानो ससार मे आग लगी हुई है। उसी प्रकार लक्ष्मण कहते हैं अवध मे मानो आग लगी हुई है। ऐसा कहकर लक्ष्मण रामविहीन स्थान की निन्दा कर रहे हैं। परस्त्री–गमन का त्यागी पुरुष परस्त्री की ओर परपुरुष का त्याग करने वाली स्त्री परपुरुष की निंदा करे तो कोई बुराई नही है। इसी प्रकार रामविहीन अवध की निन्दा करते हुए लक्ष्मण अपनी भावना की एक – निष्ठता का परिचय दे रहे हैं।

लक्ष्मण ने कहा – मैं पामर और तुच्छ हू। मुझे छोडकर आपका वन जाना मुझे दोषी बनाना है। आप मुझे दोषी मत बनाइये।

लक्ष्मण अगर घर पर रहते तो उन्हे कौन दोषी बनाता था? घर पर रह कर वे माता–पिता की सेवा करते और राज्य की व्यवस्था मे भी सहायता पहुचा सकते थे। उन्हे दोषी कौन कह सकता था? लेकिन उनका तर्क दूसरा है। लक्ष्मण का कथन यह है कि स्वामी की सेवा मे उपस्थित रहना सेवक का कर्तव्य है। सेवा का विशेष अवसर आने पर स्वामी से जुदा हो जाना सेवक का दोष है। इस दोष से बचने के लिए लक्ष्मण राम के साथ ही वन जाने को उद्यत हैं।

अरणक श्रावक का जहाज एक देव डुबाने को तैयार था। जहाज के दूसरे मुसाफिर अरणक से कह रहे थे कि हम सभी डूबे जा रहे है। आप जरा–सा हठ छोड दे तो हमारी जाने बच जाए। आप हठ न छोडेगे तो हमारी मौत सामने है। लोगो के इस प्रकार कहने पर भी क्या अरणक ने धर्म छोड दिया था? अरणक ने स्पष्ट शब्दो मे कहा था–

जहाज डूबे तो साया किसका? मै क्या जहाज अपनी बोरू
अहो मेरी जान धर्म न छोडू। तन भी छोडू, धन भी छोडू,
प्राण कहो तो अब छोडू।। धर्म न छोडू।।

अरणक कहता है – हे देव! तुम ओर मेरे ये साथी मुझसे धर्म छोडने के लिए कहते हैं। साथी कहते हैं कि तुम धर्म न छोडोगे तो हम भी डूब मरेगे ओर धर्म छोड दोगे तो बच जाएगे। तुम भी कहते हो कि धर्म छोड दो अन्यथा जहाज डुबाता हू। लेकिन जहाज धर्म से तिरता है, पाप से तो वह डूब सकता है, तिर नही सकता। तुम्हारे दिल मे पाप न होता तो जहाज डुबाते क्या? इसी से स्पष्ट है कि जहाज धर्म से नही, पाप से डूबता है। जो पाप निष्कारण ही दूसरो का जहाज डुबाता है मैं उसे केसे ग्रहण कर सकता हू? धर्म रक्षा करता है तो रक्षा के लिए धर्म का परित्याग केसे किया जा सकता है?

अरणक की इस दृढता से देव का भी गर्व मिट गया। वह निरभिमान होकर अरणक के पैरो मे गिरा और कहने लगा – 'आप वास्तव मे धन्य हैं। मैं आपकी धर्मनिष्ठा की परीक्षा कर रहा था। आप धर्म मे बहुत दृढ साबित हुए।

रामायण मे कहा है – रावण सीता से कहने लगा कि तुम मुझे स्वीकार कर लो वरना मैं राम–लक्ष्मण आदि को यमलोक भेज दूगा। सीता दयालु थी या पापिनी थी? वह दयालु होने पर भी अपने धर्म पर क्यो दृढ रही? धर्म पर दृढ रहने के कारण नाश किसका हुआ? यमलोक मे कौन पहुचा? धर्म पर दृढ रहने वाला कभी नष्ट नही होता।

लक्ष्मण कहते है – मैंने आपको ही धर्म और नीति मान लिया है। जब आप ही मुझसे बिछुड जाएगे तो मेरे पास धर्म और नीति कैसे रहेगे? मुझे आपकी बतलाई हुई नीति भी उतनी प्रिय नही है जितने आप स्वय प्रिय हैं। जो अनन्य भाव से आपके चरणो मे भक्ति रखता है, उसको भी आप त्याग कर जाएगे?

करुणासिन्धु राम ने लक्ष्मण की प्रीति देखकर उन्हे छाती से लगा लिया। भावावेश मे उनका भी हृदय गद्‌गद हो गया। वे बोले – 'लक्ष्मण! तुम्हारी परीक्षा हो गई। तुम्हे पाकर मैं निहाल हो गया। लोग कहते हैं कि राम ने राज्य छोडा है पर तुम्हारे जैसा बन्धु पाकर मेरा राज्य त्यागना भी सार्थक हो गया। तुम्हारी तुलना मे राज्य तुच्छ – अतितुच्छ है। अब तुम्हे भी माताजी से अनुमति लेनी चाहिए। समय अधिक नहीं है।

राम की इस स्वीकृति से लक्ष्मण को इतना आनन्द हुआ, जितना अधे को आखे मिलने पर होता है। राम के साथ वन जाने का सुअवसर पाकर वह जेसे कृतार्थ हो गए। लक्ष्मण की यह अवस्था देखकर देवता प्रसन्न हुए होगे या दुखी हुए होगे – कौन जाने! लक्ष्मण की करुणा देखकर एक बार तो देवता भी काप उठे होगे।

कवियो ने लक्ष्मण के कथन को प्रभावशाली शब्दो मे व्यक्त किया हे। वास्तव मे लक्ष्मण की भक्ति को शब्दो मे प्रकट करना कठिन है। हृदय की कोई भी गहरी मनोभावना शब्दो की पकड मे नही आती।

लक्ष्मण बडे बलवान थे। वे सारे ससार का सामना कर सकते थे। सारा ससार कदाचित उनके विरोध मे खडा हो जाय तो भी वे घबराने वाले नही थे। लेकिन राम के विरह की कल्पना से उनमे घबराहट पैदा हो गई। वीरता के साथ राम के प्रति उनकी इतनी गहरी निष्ठा थी।

लक्ष्मण अगर घर पर रहते तो ससार के सभी सुख उन के सामने प्रस्तुत थे। कमी किस बात की थी? उत्तम से उत्तम भोजन मिलता श्रेष्ठ से श्रेष्ठ रथ आदि सवारिया मिलतीं, सुमन–शय्या पर सोते ओर सभी प्रकार के प्रमोद के साधन मिलते। इसके विपरीत वन जाने मे क्या सुख था? जगली फल–फूल खाकर पेट भरना पैदल भटकना, ककर–कटकभरी जमीन पर सोना और अनेक प्रकार की मुसीबते झेलना लक्ष्मण इन सब बातो से अपरिचित नही थे। फिर भी राम मे अलोकिक आकर्षण था कि वे उससे विवश होकर राम के साथ जाने को उद्यत हैं? राम की सेवा करने की साध ही उन्हे वन की ओर खींच रही थी।

सुमित्रा की स्वीकृति

लक्ष्मण मन–ही–मन प्रसन्न होते हुए माता के पास पहुचे और माता को प्रणाम करके सामने खडे हो गए। वे बोले – माता मैं राम के साथ वन जाने के लिए आपकी आज्ञा लेने आया हू।

लक्ष्मण का यह वाक्य सुनकर माता सुमित्रा एक बार घबरा उठी। जैसे कुल्हाडे से काटने पर कल्पलता गिर जाती हे उसी प्रकार वह भी मूर्च्छा खाकर गिर पडी। लक्ष्मण यह देखकर बडी चिन्ता मे पड गए। वे सोचने लगे कि कही स्नेह के वश मे आकर माता मनाही न कर दे। लेकिन सुमित्रा होश मे आने पर सोचने लगी – 'हाय! मेरी बहन केकेयी ने यह केसा वर मागा कि राम जैसे आदर्श पुत्र को वन जाना पड रहा हे। उसने किये–कराये पर पानी फेर दिया। समस्त अवधवासियो की आशा मिट्टी मे मिल गई। हाय राम! तुम क्यो सकट मे पड गए? मगर यह मेरी परीक्षा का अवसर हे। इस अवसर पर मुझे केकेयी की बुद्धि लेनी चाहिए या कोशल्या की?

आखिर सुमित्रा ने अपना कर्तव्य तत्काल निश्चित कर लिया। मीठी वाणी मे उन्होने लक्ष्मण से कहा – वत्स! जिससे राम को ओर तुम्हे सुख हो वही करो। मैं तुम्हारे कर्तव्यपालन मे तनिक भी बाधक नही होना चाहती। थोडे मे इतना ही कहती हू कि – 'इतने दिनो तक में तुम्हारी माता ओर महाराज (दशरथ) तुम्हारे पिता थे। मगर आज से सीता तुम्हारी माता ओर राम पिता हुए। तुमने राम के साथ वन जाने का विचार किया हे यह तुम्हारा नया जन्म हे। में तेरी पुण्य–सम्पत्ति का क्या बखान करू? तू राम के रग मे गहरा रग गया हे यह कम सोभाग्य की बात नहीं है? पुत्र! तूने राजमहल त्याग कर

राम की सेवा के लिए वन जाने का विचार करके मेरी कूख को प्रशस्त बना दिया है। तेरी बुद्धि अच्छी है, फिर भी मै कुछ शिक्षा देना चाहती हू। वत्स! अप्रमत्त भाव से राम की सेवा करना। उन्ही को अपना पिता ओर जानकी को अपनी माता समझना। मै तुझे राम की गोद मे बिठलाती हू।'

क्या आप भी राम की गोद मे बैठना चाहते हैं? राम की गोद मे बैठने के लिए तो सभी तैयार हो जाएगे, पर देखना चाहिये कि राम की गोद मे बैठने की पात्रता किस प्रकार आती है–

राम झरोखे बैठकर, सब का मुजरा लेय।
जाकी जैसी चाकरी, ताको वैसा देय।।

छल–कपट करने वाले और मिथ्या भाषण करने वाले राम की गोद मे कैसे बैठ सकते है?

लक्ष्मण की माता कहती है – 'राम की गोद मे बैठ जाने के बाद तुम्हे कोई कष्ट नही हो सकता। पुत्र! अयोध्या वही है जहा राम हैं। जहा सूर्य है, वही दिन है। जब राम ही अयोध्या छोड रहे हैं तो यहा तुम्हारा क्या काम है? इसलिये तुम आनन्द के साथ जाओ। माता, पिता गुरु, देव बन्धु और सखा को प्राण के समान समझ कर उनकी सेवा करना, यह नीति का विधान है। तुम राम को ही सब–कुछ समझना और सर्वतोभाव से उन्ही की सेवा मे रत रहना।

'वत्स! जननी के उदर से जन्म लेने की सार्थकता राम की सेवा करने मे ही है। यह तुम्हे अपने जीवन का बहुमूल्य लाभ मिला है। पुत्र! तू बडभागी हुआ। तेरे पीछे मै भी भाग्यशालिनी हुई। सब प्रकार के छल–कपट छोडकर तेरा चित्त राम मे लगा है इससे मैं तुझ पर बलि–बलि जाती हू। मैं उसी स्त्री को पुत्रवती समझती हू जिसका पुत्र सेवाभावी, त्यागी, परोपकारी, न्याय–धर्म से युक्त और सदाचारी हो। जिसके पुत्र मे ये गुण नही होते उस स्त्री का पुत्र जनना वृथा है।

बेटा सभी स्त्रिया चाहती हैं लेकिन बेटा केसा होना चाहिये? यह बात कोई बिरली ही समझती है। कहावत है–

जननी जने तो ऐसा जन कै दाता कै सूर।
नही तो रहजे बाझडी मती गवाजै नूर।।

बहिने पुत्र को चाहती है पर यह नही जानना चाहती कि पुत्र कैसा होना चाहिए? पुत्र उत्पन्न हो जाने पर उसे सुसस्कारी बनाने की कितनी जिम्मेदारी आ जाती है इस बात पर ध्यान न देने से उनका पुत्र उत्पन्न करना [illegible] हो जाता है।

माता सुमित्रा कहती हैं – लखन! तेरा भाग्य उदय करने के लिए ही राम वन जा रहे हैं। वह अयोध्या मे रहते तो सेवा करने वालो की कमी न रहती। वन मे की जाने वाली सेवा मूल्यवान् सिद्ध होगी। सेवक की परीक्षा सकट के समय पर ही होती है। राम वन न जाते तो तेरी परीक्षा कैसी होती?

माता के हृदय मे पुत्र ओर राम के वियोग की व्यथा कितनी गहरी होगी, इसका अनुमान करना कठिन हे। लेकिन उसने धैर्य नही छोडा। वह लक्ष्मण से कहने लगी – वत्स! राग द्वेष ओर मोह त्याग करके राम और सीता की सेवा करना! राम के साथ रह कर सब विकार तज देना। जब राम और सीता तेरे साथ हैं तो वन तुझे कष्टदायक नही हो सकता। हे वत्स! मेरा आशीर्वाद है कि तुम दोनो भाई सूर्य और चन्द्र की भाति जगत का अन्धकार मिटाओ। प्रकाश फैलाओ। तुम्हारी कीर्ति अमर हो।

राम का वन–प्रस्थान

राम के वनवास की बात सुनकर अयोध्या मे किस प्रकार शोक की लहर दौड गई थी और किस प्रकार की आलोचना–प्रत्यालोचना होने लगी थी, इसका कुछ दिग्दर्शन पहले करा दिया गया है। अब राम को वन जाने के लिए उद्यत देखकर और यह जानकर कि उनके साथ सीता ओर लक्ष्मण भी वन जा रहे हें, जनता के धैर्य का बाध टूट गया। लोग अत्यन्त व्याकुल व्यथित, विह्वल हो गये। जब राम, लक्ष्मण और सीता ही अयोध्या मे न रहे तो अयोध्या सूनी ही समझो। अयोध्या की आत्मा जहा नही है वहा अयोध्या ही कहा? लोग विषाद से भरे हुए ऐसे मालूम होते जेसे इनका सर्वस्व अभी–अभी आखो से देखते–देखते लुट गया हो। किसी को सूझ नही पडता कि इस समय क्या करना चाहिये? राम स्वेच्छा से वन जा रहे हे यही सबसे बडी कठिनाई हे। अगर वे स्वेच्छा से न जाते होते तो किसकी ताकत थी जो उन्हे वन मे भेज सके। आबालवृद्ध जनता का हार्दिक प्रेम ओर समर्थन जिसे प्राप्त हो उसे कोन निर्वासित कर सकता हे? यह सोचकर लोग रह जाते थे।

देखते–देखते अयोध्या की समस्त जनता राजमहल की ओर उमड पडी। नर–नारी बालक–वृद्ध, जिसे देखो वही शोक की गहरी छाया लिए दशरथ के भवन ही ओर चला जा रहा है। थोडी ही देर मे महल प्रजा से घिर गया। स्त्रिया अलग और पुरुष अलग हो गए। स्त्रियो ने सीता को घेर लिया ओर पुरुषो ने राम को।

सौम्यवदना जानकी को देख कर अधिकाश स्त्रिया अपना रुदन न रोक सकी। कहने लगी – आह! सुकुमारी सीता, किस स्थिति मे रहने वाली और आज किस स्थिति मे जा रही है! अदृश्य, तू कितना निष्ठुर है!

स्त्रियो मे जो गम्भीर और पक्के जी की थी उन्होने कहा – रोती क्यो हो? रोता वह है जो निराशावादी होता है। आशावादी कभी नही रोता। अगर कोई व्यक्ति व्यापार के निमित्त विदेश जाता है तो उसके लिये रोया नही जाता क्योकि उसके लौट कर आने की आशा है। जानकी जा रही है, यह ठीक है पर यह भी तो देखना चाहिए कि वह क्यो जा रही है? जानकी को न राजा भेज रहे है न रानी कैकेयी भेज रही है। जानकी को कोई कलक भी नही लगा है कि कलक की मारी वन जाती हो। ऐसा होने पर भी जानकी के जाने का हमे गुण लेना चाहिये। इनके चरित्र से हमे बहुत सीख लेनी चाहिये। रोने से नही शिक्षा लेने से ही हमारा कल्याण होगा और हमारे ऐसा करने से जानकी का वन जाना भी सार्थक हो जाएगा। इनका गुण गाओ बहिन कि इन्होने अपने साधारण त्यागमय चरित्र के द्वारा स्त्री–समाज के सामने ऐसा उज्ज्वलतर आदर्श उपस्थित कर दिया है जो युग–युग तक नारी का पथ–प्रदर्शन करेगा। पथ–भ्रष्ट स्त्रियो के लिए यह महान् उत्सर्ग बडे काम का सिद्ध होगा।

एक हम है जिन्हे वन का नाम लेते ही बुखार चढ आता है और दूसरी यह सुकुमारी राजकुमारी है जो वन की विपदाओ को तुच्छ समझ कर अपने पति का अनुगमन करके वन को जा रही है। इन्होने ससुराल और मायके को उजागर कर दिया।

सीता के कष्टो की कल्पना करके रोना वृथा है। जिसे कष्ट सहना है वह रोती नही। उसका ध्यान अपने धर्म की ओर हो और तुम रोती हो! तुम भी अपने कर्तव्य की ओर दृष्टि दौडाओ।

इसी बीच दूसरी स्त्री ने कहा – हाय! केकेयी का कलेजा कितना कठोर है! यह दृश्य देख कर तो पत्थर पिघल सकता है! वह नही पसीजती!

तीसरी ने कहा – फिर वही बात तुम कहती हो! सीता वन मे जाकर स्त्रियो को अबला कहने वाले पुरुषो को एक प्रकार से चुनोती दे रही हे। सीता ने सिद्ध किया है कि स्त्रिया शक्ति हे। इनका वन जाना हमारे लिए अनमोल शिक्षा है।

साथी स्त्री – ठीक कहती हो बहिन पर हृदय नही मानता। जी चाहता है सीता के साथ ही रहे – लौट कर घर न जाए।

पाचवी स्त्री – ऐसा सोचना वृथा है। सीता के चरित्र से जो शिक्षा मिल रही है उसे ग्रहण न करके सीता को ग्रहण करना भी व्यर्थ होगा। असली तत्त्व तो सीता द्वारा प्रदर्शित पथ है। उसी पथ पर हमे चलना चाहिए।

सीता का पथ कौन–सा है? कैसा है? इसका उत्तर देना कठिन है। पूरी तरह उस पथ का वर्णन नही किया जा सकता। एक कवि ने कहा है–

बैना आपणो बणव घणा मोल रो करा।
पैली आगली सत्या रा, पग लागणी करा।। बैना।
पति–प्रेम रा पवित्र, नीर माय सापडा।
पीर सासरा रा बखाण रा, सुवेषश पैरला।।
मेहदी राचणी विचार घरे काम आदरा।।बैना।

बुद्धिमती, धैर्य वाली और सती के माहात्म्य को समझने वाली स्त्रिया सीता के वियोग मे रोने वाली स्त्रियो से कहती हैं हम भी सीता का मार्ग पकडे और अपना बहुमूल्य बनाव करे। इसके लिए सबसे पहले पति–प्रेम के जल मे स्नान करना पडेगा। साधारण जल ऊपर का मैल दूर करता है और वह भी सदा के लिए नही किन्तु–

शील स्नान सदा शुचि ।

शील का स्नान सदा के लिए पवित्र कर देता है। इसलिए पति–प्रेम के जल मे स्नान करो और निश्चय करके स्नान करो कि चाहे आग मे जलना पडे, मगर पति–प्रेम से कभी विमुख न होगी। इस प्रकार का स्नान करके फिर सीताजी जैसा वेश धारण करो। सीताजी ने क्या वेष लिया है? ससुराल और पीहर की प्रशसा करने का जो वेश उन्होने पहना है वह वेष हमे भी अपनाना है। सीताजी अब तक मूल्यवान् वस्त्र ओर आभूषण पहनती रही हैं मगर उनकी प्रशसा उन वस्त्राभूषणो के कारण नही हुई हे। उनकी प्रशसा तो उनके इन कार्यो से हे जो ससुराल ओर मायके का यश उज्ज्वल बनाने के लिए वे अब कर रही हैं। स्त्रियो को मेहदी लगाने का बहुत शोक होता हे। मगर हमे मेहदी भी वेसी ही लगानी चाहिए जैसी जानकी ने लगाई हे। सीता जब राम को वरने के लिये आई होगी तो हाथो–पेरो मे मेहदी लगाई होगी। पर आज उनकी मेहदी देखो! पति के अनुराग की लालिमा से उनका हृदय अनुरक्त हो रहा है। असल मे स्त्री का हृदय पति–प्रेम मे रगा होना चाहिए खाली चमडी रगने से क्या होता हे? हृदय का अनुराग ही हिलोरे मार रहा हे ओर उन्ही हिलोरो मे सीता वन की ओर बही चली जा रही हे। सीता ने सोचा होगा – घर पर रहकर दास–दासियो के कारण पति की पुनीत सेवा करने का

अवसर नही मिलता, वन मे अच्छा अवसर मिलेगा। इस प्रकार सीता पति की सेवा के लिए वन जा रही है तो क्या हम घर पर रहकर भी पति की सेवा नही कर सकती?

प्राचीन काल का दाम्पत्य सम्बन्ध कैसा आदर्श था? पत्नी अपने–आप को पति मे विलीन कर देती थी और पति उसे अपनी अर्धांगिनी, अपनी शक्ति, अपनी सखी और अपनी हृदय–स्वामिनी समझता था। एक पति था, दूसरी पत्नी थी पुरुष स्वामी और स्त्री स्वामिनी थी। एक का दूसरे के प्रति समर्पण का भाव था। वहा अधिकारो की माग नही थी, सिर्फ समर्पण का भाव था। जहा दो हृदय मिल कर एक हो जाते है वहा एक को हक मागने का और दूसरे को हक देने का प्रश्न ही उपस्थित नही होता। ऐसा आदर्श दाम्पत्य–सम्बन्ध किसी समय भारतवर्ष मे था। आज विदेशो के अनुकरण पर यहा दाम्पत्य सम्बन्ध नाम मात्र का है, भारत मे भी विकृति आ गई है। नतीजा यह हुआ है कि पति–पत्नी का अद्वैत भाव नष्ट होता जा रहा है और राजकीय कानूनो के सहारे समानाधिकार की स्थापना की जा रही है। आज की पढी–लिखी स्त्री कहती है–

अगरेजी पढ गई सैया रोटी नही पकाऊंगी।।

शिक्षा का परिणाम यह निकला है। पहले की स्त्रिया प्राय सब काम अपने हाथो से करती थी। आजकल सभी काम नौकरो द्वारा कराये जाते है। परिणाम यह हुआ कि डाक्टरो की बाढ आ गई और स्त्रियो को डाकिन–भूत लगने लगे। स्त्रियो के निकम्मी रहने के कारण हिस्टीरिया' आदि रोग होते हे ओर डाकिन–भूत के नाम पर लोग ठगाई करते हैं। अगर स्त्री को सही मार्ग पर चलना है तो इन सब बुराइयो को छोडना पडेगा।

कई एक भोली बहिने हाथ से पीसने मे पाप लगना समझती हैं और दूसरे से पिसवा लेने मे पाप से बच जाने की कल्पना करती हैं। पीसने मे आरम्भ तो होता ही है लेकिन अपने हाथ से यतना ओर विवेक के साथ काम किया जाय तो बहुत–से निरर्थक पापो से बचाव भी हो सकता है। शक्ति होते हुए दूसरे से काम कराना एक प्रकार की कायरता हे ओर कहना चाहिए कि अपनी शक्ति का विनाश करना है। इस प्रकार का परावलम्बी जीवन बिताना अपनी शक्ति की घोर अवहेलना करना हे।

पग धरिता सन्तोषनवर्‌या ने करा।
हिया कठ मे खरा हार नोसर्‌या धरा।।
लोग दोई ने सुधारवा रा चूडला करा।
भा[illegible] राखणो बडा रो सिर बोर गृथला।।वेना।।

बुद्धिमती स्त्रिया कहती हे – 'जिस प्रकार सीता ने पेर के आभूषण उतार दिये है, उसी प्रकार अगर हम भी दिखावे के लिये पेर के गहने उतार दे तो इससे कोई लाभ नही होगा। पेर के आभूषण पेर मे भले ही पडे रहे मगर एक शिक्षा याद रखनी चाहिए। अगर सीता मे धेर्य ओर सतोष न होता तो वह वन मे जाने को तैयार न होती। सीता मे कितना धेर्य ओर कितना सतोष है कि वह वन की विपदाओ की अवगणना करके ओर राजकीय वेभव को ठुकरा करके पति के पीछे–पीछे चली जा रही हे। हमे सीता के चरित्र से इस धैर्य और सतोष की शिक्षा लेनी हे। ये गुण न हुए तो आभूषणो को धिक्कार हैं।

जहा ज्यादा गहने हैं, वहा धेर्य की ओर सन्तोष की उतनी ही कमी है। वन–वासिनी भीलनी पीतल के गहने पहनती है और रूखा–सूखा भोजन करती है, फिर भी उसके चेहरे पर जैसी प्रसन्नता ओर स्वस्थता दिखाई देगी बडे घर की महिलाओ मे वह शायद ही कहीं दृष्टिगोचर हो। भीलनी जिस दिन बालक को जन्म देती है, उसी दिन उसे झोपडी मे रखकर लकडी बेचने चल देती है। यह सब किसका प्रताप हे? सन्तोष और धेर्य की जिन्दगी साक्षात वरदान है। असन्तोष, अधीरता जीवन का अभिशाप हे।

बुद्धिमती स्त्रिया कहती है – सीता ने क्षमा का नोलडा हार पहन रखा हे। ऐसा ही हार हमे पहनना चाहिए। यद्यपि केकेयी की वर–याचना के फलस्वरूप उनके पति को ओर उनको वन जाना पड रहा हे फिर भी उनके चेहरे पर रोष का लेषमात्र भी कोई चिह्न नही दिखाई देता। उनकी मुद्रा कितनी शात ओर गम्भीर हे। अगर उनमे धेर्य न होता तो वह तुम्हारी तरह रोने लगती। अगर वह अपनी आख टेढी करके कह देती कि मेरे पति का राज्य लेने वाला कोन है तो किसका साहस था कि वह राज्य ले सके? सारी अयोध्या उनके पीछे थी। लक्ष्मण उनके परम सहायक ओर वे अकेले ही सब के लिए काफी थे। सीता चाहती तो मिथिला से फोज मगवा सकती थी। लेकिन नही सीता ने क्षमा का हार पहन रखा हे। ऐसा हार हमे भी पहनना चाहिए।

सीता के हाथ मे आज केवल मगल–चूडी के अतिरिक्त ओर कुछ भी नही हे। मगर उन्होने अपने हाथो मे इस लोक ओर परलोक को सुधारने का चूडा पहन रखा हे। ऐसा ही चूडा हमे भी पहनना चाहिए। उभयलोक के सुधार का मगलमय चूडा न पहना तो न मालूम अगले जन्म मे केसी बुरी गति मिलेगी।

आजकल मारवाड मे आभूषण पहनने की प्रथा बहुत बढी है। बोर तो अनार हो गया है। बोर तो बोर (बेर) के बराबर ही हो सकता है, पर बढते–बढते वह अनार से भी बाजी मार रहा है। जेवरो की वृद्धि के साथ ही विकार मे भी प्राय वृद्धि होने लगती है।

बुद्धिमती स्त्रिया कहती हैं – सीता ने गुरुजनो का आज्ञापालन रूपी बोर अपने मस्तक पर धारण किया है। ऐसा ही बोर स्त्रियो को धारण करना चाहिए। उन्होने कैकेयी जैसी सास का भी मान रखा है। अगर हम जरा–सी बात पर भी बडो का अपमान करे तो हमारा यह बोर पहनना वृथा हो जायेगा।

अच्छी सीख ने करणफूल, कान रा करा।
झूठा बारला बनाव देख क्यो वृथा लडा।।
हिया माय अमोल खान खोल पैरला।
सब बाहर का बनाव, वा पै वारणा करा।।

बहिनो! सीता ने मणि जडे कर्णफूल त्याग कर उत्तम शिक्षा के जो कर्णफूल पहने है उन्हे ही हमे पहनना चाहिए। सीता विदेहपुत्री है और विदेह आत्मज्ञानी है। सीता ने उन्ही की शिक्षा ग्रहण की है। चलो अपन भी शिक्षा रूपी कर्णफूल पहनने का निश्चय करे। अगर शिक्षा के कर्णफूल न पहने तो इन दिखावटी कर्णफूलो का पहनना वृथा हो जाएगा। बाहर का बनाव सच्चा होता तो सीताजी उसका त्याग क्यो करती? बाहरी बनाव का त्याग करके और भीतरी बनाव को धारण करके आज वह कितनी भव्य, कितनी सौम्य और कितनी श्रद्धास्पद हो गई है! सीता को देखते हुए भी हम उनका अनुकरण न कर सकी और बाहरी बनाव के लिये ही झगडती रही तो हमारा यह सौभाग्य भी निरर्थक हो जायगा। बाहर के श्रृगार को जो नही छोड सकती कदाचित न छोडे मगर उसी को सब–कुछ समझ लेना बडी नासमझी है। हमारी अन्तरात्मा मे शील और सतोष का जो खजाना भरा पडा है उसी को प्रकट करने की आवश्यकता है। उस पर अधिकार कर लिया जाय तो बाहरी आभूषण चाहे हो चाहे न हो फिर इनका कोई मूल्य नही है।

इस प्रकार सीता का सच्चा अनुकरण करने से हमारा मगल होगा। हमे मोह त्याग कर ज्ञान की दृष्टि से सीता का स्वरूप देखना चाहिए।

सीता जब वनवास के लिए निकली थी उस समय के लिए कवि ने जो कल्पना की है वह इस प्रकार है – केकेयी की कुबुद्धि के कारण अयोध्या मे आग–सी लग गई थी। सब ओर हाय–हाय की ध्वनि ही सुनाई देती थी। नगर की स्त्रिया उस आग मे जल रही थी। स्त्रिया सोचती थी कि

कैकेयी राजरानी के रूप मे क्यो जन्मी जिसने ऐसी आग लगा दी! केकेयी की करतूत से सब स्त्रिया लज्जित हो रही थी। उनकी आख से आसू ऐसे निकल रहे थे जेसे केकेयी की लगाई आग से पिघल कर चर्बी बाहर निकल रही हो। मगर सीता का शात रूप देखकर स्त्रियो को ज्ञान हुआ। वे विचार करने लगी – जब इस आग की केन्द्र बनी हुई सीता स्वय ही आग से सतप्त नही हैं, वह प्रसन्न और शात हैं तो हम क्यो दु खी हो? अगर कैकेयी आग की प्रचण्ड ज्वाला है तो सीता गगा की शीतल धारा है। इस धारा मे अवगाहन करने पर ज्वाला का असर नही रह सकता।

स्त्रियो मे जो कोलाहल मचा हुआ था और कैकेयी को कोसा जा रहा था वह सीता को देखकर शात हो गया। होली के दिन गालियॉ गाई जा रही हो और किसी के उपदेश से गालिया गाना बन्द हो जाय तथा उनकी जगह भक्ति के भजन गाये जाने लगे तो कैसा सात्त्विक परिवर्तन मालूम होगा। इसी प्रकार का परिवर्तन सीता को शात और प्रसन्न देखकर स्त्रियो की उस भीड मे हो गया। स्त्रिया कहने लगी – सीता कैकेयी का उपकार मान रही है तो हम उन्हे अनुकरणीय समझती हुई भी उनके विचारो का अनुकरण न करे यह मूर्खता होगी। इस प्रकार शाति तो हो गई लेकिन स्त्री–स्वभाव मे जो स्वाभाविक कोमलता है उसके कारण बहुतो के आसू बहते ही जा रहे है। बहुत–सी फूल–सी सुकुमारी स्त्रिया सीता के सामने दोनो ओर खडी होकर आसुओ से उनकी अर्चना करने लगी।

सीता, राम और लक्ष्मण जिस मार्ग से जा रहे थे उसके दोनो ओर पुरनारियो ओर पुरकन्याओ की कतारे खडी हो गईं। उनके नयन–कमलो के आसू रूपी फूल सीता–राम को विदाई दे रहे थे।

कोई कहता था – वज्रहृदया केकेयी ने राम का राज्य छीन लिया मगर हमारे हृदय पर उनका जो राज्य हे, देखे उसे कोन छीन सकता हे?

बहुत–से नर नारी कहते थे – जहा राम रहेगे जहा सीता ओर लक्ष्मण रहेगे वही हम भी रहेगे। हम इन्हे हरगिज नही छोडेग। भरत अयोध्या की ईंटो पर अयोध्या के खाली मकानो पर अपना शासन चलावे। हम वहीं अवध बना लेगे जहा राम होगे। इस प्रकार निश्चय करके अयोध्यावासी राम के पीछे–पीछे चलने लगे।

लक्ष्मण सोचने लगे – प्रजा को समझाना वहुत कठिन हे। उन्हाने सीताजी की ओर देखा ओर सकेत करके कहा – जरा पीछे तो देखो। हम तो राम की सेवा के लिए उनके साथ वन जा रहे हे मगर इस प्रजा का क्या

हाल है? लोग किस दु ख से दुखी है? भैया ने मुझे तो समझा दिय लेकिन इस जनसमूह को किस प्रकार समझाएगे?

सीता ने प्रजा की ओर दृष्टि फेरी। सब की आखो से मोतियो की तरह आसुओ की कतार गिर रही थी। इतने बडे जनसमूह को रोते देख कर स्त्री के स्वभाव के अनुसार सीता का धैर्य छूट जाना अस्वाभाविक नही था, लेकिन जिसे ससार विभूति मानता है जो महान् है और जो ससार को आदर्श समझाता है वह कभी रोता नही है। महत्ता की यही पहचान है। साधारण मनुष्य सम्पत्ति मे प्रसन्न हो जाते हैं और विपत्ति मे रोने लगते हैं लेकिन महापुरुष किसी भी स्थिति मे अपना धैर्य नही छोडते। 'होकर सुख मे मग्न न फूले, दुख मे कभी न घबरावे' – यह महापुरुषो का स्वभाव होता है।

सीता स्त्रियो के आदर्श को अतिम सीमा तक पहुचाने वाली सती थी। बडे जनसमूह को देखकर और कोलाहल सुनकर उनका हृदय पुलकित हो गया। सीता का हृदय हर्ष से भर गया। उनके हर्ष का कारण यह नहीं था कि इतने लोग वन मे साथ रहेगे और अकेले नही रहना पडेगा। प्रजा का साथ न रखने का विचार होने पर भी उनकी प्रसन्नता का कारण दूसरा ही था। सीता के रोम–रोम मे पुनीत पतिभक्ति बसी हुई थी। उन्होने सोचा – 'मेरे पति आज अपने असाधारण स्वभाव के कारण इतने लोगो के हृदय मे प्रवेश कर चुके है। धन्य हैं ये महापरुष जिन्हे लोगो की ऐसी श्रद्धा–भक्ति प्राप्त है। मेरे स्वामी की माता–पिता के प्रति भक्ति आज्ञाकारिता और विनयशीलता धन्य हे उनका भ्रातृ–प्रेम धन्य है और प्रजा–प्रेम भी धन्य है। इन्ही गुणो से खिचे हुए नर–नारी उनके पीछे–पीछे चल रहे हैं। इन्होने अवध का छोटा–सा राज्य त्याग कर प्रजा के हृदय पर कैसा आधिपत्य जमा लिया है। यह कोलाहल तभी तक है जब तक स्वामी बोलते नहीं। उनकी मधुर वाणी सुनते ही लोग एकदम शात हो जाएगे इस प्रकार का विचार करके सीता हर्षित हुई।

लोग कहते थे – 'स्वार्थ तो सब मे होता है लेकिन उसकी एक सीमा होती है। कैकेयी ने उस सीमा को भी भग कर दिया। सीमा टूट जाने पर स्वार्थ क्या–क्या नीच काम नही करवा लेता। उसने एक राजरानी को भी इतना पतित कर दिया।

स्वार्थ ऐसे–ऐसे जघन्य कार्य करवाता है कि कहा नही जा सकता। खाचराद (मालवा) की बात है। एक पिता ने अपना लडका उसके मामा को सौप कर कहा – इसे अपने साथ लेते जाना। उस लडके के हाथ मे दस–पाच रुपए के कडे थे। कडे देखकर मामा के मन मे लालच आ गया। उसने भानजे

को मार कर जगल मे गाड दिया ओर कडे ले लिए। दस–पाच रुपयो के लिए मामा अपने भानजे की हत्या कर वैठा। यह स्वार्थ का सच्चा स्वरूप हे। स्वार्थ के वश होकर जरा–सी चीज के लिए भाई अपने सगे भाई का प्राण लेने पर उतारू हो जाता है।

कैकेयी ने भी स्वार्थ की सीमा लाघ दी और राम ने भी स्वार्थ–त्याग की सीमा का उल्लघन कर दिया। एक ही साथ स्वार्थ ओर स्वार्थ–त्याग के उदाहरण यहा सामने आ जाते हैं। अब आपको कौनसा उदाहरण ग्रहण करना है? अगर आपने राम का स्वार्थ–त्याग का उदाहरण अपना लिया तो राम की तरह ही आपका कल्याण होगा। अगर कैकेयी का अनुकरण किया तो केकेयी की तरह ही पश्चात्ताप की आग मे जलना होगा। दोनो मार्ग आपके सामने हैं। जी चाहे जिस पर चल सकते हो। मनुष्य हो, विवेक को आगे करके चलो।

राम ने स्वार्थ–त्याग की पराकष्ठा कर दी थी। कहा अयोध्या का राज्य और कहा वनवास! किसी साधारण आदमी को ऐसी परिस्थति मे कितना कष्ट होता! किसी का जूता गुम जाय और नगे पैर चलना पडे तब भी उसे कष्ट होता है फिर राम का राज्य ही चला जा रहा था। उन्हे कितना कष्ट होना चाहिए था? मगर राम को देखो तो सही! उनका चेहरा वेसा ही शात, वैसा ही सौम्य और वैसा ही गम्भीर हे जेसा सदा रहता था। विषाद की कहीं रेखा तक नहीं हे। शोक की छाया भी नहीं हे। दुख का कोई चिह्न नजर नही आता। चेहरे पर कोई सिकुडन नही कुम्हलाहट नहीं देन्य नहीं सताप नहीं, क्रोध नहीं।

किसी वस्तु के जाने पर आपको दु ख होता हे मगर दु ख मानने से क्या गई वस्तु आ जाती हे? वल्कि अधिक चिन्ता करने से अच्छी वस्तु ओर भी दूर पड जाती हे। फिर भी लोग दु ख मानते हें। यह नही सोचते कि वास्तव मे जो मेरा हे वह मेरे पास से जा नही सकता हे और जो जा सकता हे वह मेरा नहीं हे। जो वास्तव मे मेरा नही हे उसके लिए में चिन्ता क्यो करू? प्रिय वस्तु के विछोह के समय हृदय से राम का स्मरण करो। तुम्हारी सब चिन्ताए चूर–चूर हो जाएगी ओर शाति मिलेगी। मत भूलो कि राज्याभिषेक के मगल–मुहूर्त मे वनवास मिलने पर भी राम प्रसन्न ही बने रहे थे।

समुद्र वर्षा या गरमी के कारण घटता–वढता नही हे। महापुरुष को 'सागरवर्‌गभीरा' की उपमा दी जाती हे। इसका आशय यही हे कि वे सुख के समय फूलते नहीं ओर दु ख के समय घवराते नही हें।

जब राम वन को जाने लगे तो महाराज दशरथ ने कहला भेजा था कि राम लक्ष्मण और सीता कम से कम नगर मे पैदल न चले रथ मे बैठकर जावे। मेरी अतिम इच्छा को राम अवश्य स्वीकार करे।

प्रजा का सत्याग्रह

जो राम पिता की प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए इतना त्याग करने के लिए तैयार हो गए थे उनसे यह आशा कैसे की जा सकती थी कि वे पिता के इस छोटे--से आदेश का पालन न करेगे। यद्यपि उनकी इच्छा राज्य की किसी भी वस्तु का उपयोग करने की नही थी, तथापि पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके उन्होने नगर मे रथ पर सवार होकर निकलने का निश्चय किया। जैसे–जैसे राम का रथ आगे बढता गया, वैसे–वैसे प्रजा की अधीरता और व्याकुलता भी बढती गई। आखिर कुछ लोगो का धैर्य समाप्त हो गया। उन्होने निश्चय कर लिया कि या तो राम को रोकेगे या हम भी उन्हीं के साथ जाएगे। इस प्रकार निश्चय करके सैकडो मनुष्य रथ के रास्ते मे लेट गए। उन्होने कहा – अगर आपको जाना ही है तो रथ हमारी छाती के ऊपर से ले जाइए अन्यथा आप नही जा सकते या हम लोग भी साथ चलेगे।

राम ने सारथी को रथ रोकने का आदेश दिया। रथ रोक दिया गया। प्रजा की ऐसी प्रीति देखकर गम्भीर राम का हृदय भी विचलित हो गया, कठ गद्‌गद हो गये। मगर अवसर देखकर उन्होने तत्काल अपने–आप को सम्भाल लिया। राम ने रथ को ही व्यासपीठ बनाया और उसके ऊपर खडे होकर कहने लगे – प्रजाजनो! उठो। यह क्या कर रहे हो? तुमने यह क्या दृश्य उपस्थित कर दिया है? उठो और ध्यान से मेरी बात सुनो।

राम का यह कथन सुनकर प्रजाजन सोचने लगे – अगर हम लोग उठे और रास्ता साफ होने पर राम का रथ दोड गया तो हम क्या करेगे? इस प्रकार विचार कर लोग पडे–पडे ही राम की ओर टकटकी लगाकर देखने लगे। राम ने कहा – चाहे तुम उठकर सुनो चाहे लेटे–लेटे सुनो पर सुनो। किसी भी तरह सुनो परन्तु मेरी बात सुनो और उस पर विचार करो।

इतना कहकर प्रजाजनो को सम्बोधित करके राम बोले – क्या आप रो–रो कर हमे विदाई देना चाहते है? अपने इष्ट मित्र को क्या इसी प्रकार विदा किया जाता है? रोकर विदाई उसे दी जाती है जो वापिस लोटकर आने [illegible] न हो। क्या आप यह चाहते है कि हम लोट कर न आवे? अगर आपको

हमारा वापिस आना अभीष्ट है तो आप हसते हुए ही विदा दीजिए ओर अपने—अपने घर लौट जाइए। सब काम अवसर पर ही होते हैं। जाने के अवसर पर हम जा रहे हैं तो आने के अवसर पर लोट भी आएगे। इसलिए आप चिन्ता और शोक त्याग कर लौट जाइए।

राम की बात सुनकर प्रजाजन कहने लगे – आपकी वाणी ने तो उलटा हमे ही अपराधी बना दिया। आपने हमे रोकने के योग्य भी नहीं रखा। आप हमसे हाथ छुडाकर जाते हैं और कहते हैं कि विदा के समय रोना नहीं चाहिए लेकिन हमने आपको विदा दी कब है? हम लोग विदा देते हुए नहीं किन्तु विदा न देने के लिए रोते हैं। जैसे बालक रोकर अपनी माता से रोटी मागता है, उसी प्रकार हम भी रोकर आपसे यह मागते हैं कि आप अयोध्या का त्याग न करे। महाराजा ने आपको राजा चुना है और वह चुनाव प्रजा को भी इष्ट है। हम हृदय से आपको ही राजा मानते हैं। फिर हम लोगो की अवहेलना करके क्यो जा रहे हैं? प्रजा का अभिमत आपको नहीं ठुकराना चाहिए। आप अकेली कैकेयी के कहने से समस्त प्रजा की इच्छा के विरुद्ध कार्य कैसे कर सकते हैं? क्या आयोध्या की समस्त प्रजा अकेली महारानी के कैकेयी मुकाबिले मे कुछ नही? क्या हम सब एक व्यक्ति के सामने तुच्छ हैं? नही, जनमत का आदर आपको करना चाहिए। अपनी यात्रा स्थगित कीजिए और अयोध्या का राज्य सभालिए।

मुख्य—मुख्य लोगो ने जब इस प्रकार कहा तब भी लोग रास्ते मे लेटे रहे।

प्रजा को प्रतिबोध

राम कहने लगे – प्रजाजनो ! तुम्हारी बात सुनकर मुझे तुम्हारे प्रति और अधिक प्रेम हुआ। जिसे प्रजा का ऐसा प्रेम प्राप्त हे वह भाग्यवान हे। मगर मैं जानना चाहता हू कि प्रजा मुझ से प्रेम क्यो करती हे? मे धर्म ओर न्याय को अपने सामने रखकर कार्य करने का प्रयत्न करता हू, इसी कारण प्रजा मुझसे प्रीति करती है। अगर मे धर्म का पालन करना छोड दू तो क्या आप मुझे चाहेगे? जिस धर्म के कारण आप मुझे चाहते हें में उसी धर्म का पालन करने के लिए वन को जा रहा हू। वन न जाने पर मे धर्म से विमुख हो जाऊगा। क्या आप इसे पसन्द करेगे? क्या आप मुझे धर्म से भ्रष्ट हुआ देखना चाहते हें? धर्म से पतित राम अगर आपके बीच मे रहा भी तो क्या आपका गोरव हे? आप जिस धर्म की बदोलत मुझे चाहते हें उस धर्म का

पालन करने के लिए मुझे सभी–कुछ करना होगा – सभी कुछ सहना होगा। इसी मे मेरा और आपका गौरव है। जिस धर्म के कारण आप मुझे मानते है वही धर्म मुझसे छुडवा रहे हैं इसी को मोह कहते हैं। आप मेरे वियोग के दु ख से घबराकर मेरे जाने का विरोध करते है। लेकिन धर्मपालन के अवसर पर सब एक साथ नही रह सकते। विवाह के समय ग्रन्थिबन्धन होता है। अगर वह जैसा–का–तैसा बना रहे – ग्रथिमोचन न किया जाय तो काम नही चल सकता। इसीलिए बाधी हुई गाठ खोल दी जाती है। लेकिन आप तो उस ग्रन्थि को बन्धी हुई रखना चाहते है। उचित यह है कि वह ग्रन्थि हृदय मे बनी रहे स्नेह के रूप मे पक्की होकर रहे, परन्तु शरीर से धर्मपालन के लिए हटा दी जाय। आप तो धर्म–पथ को ही रोक रहे हैं। यह कैसे उचित हो सकता है? मैं अधर्म करने जाता होऊ तो आपको रोकने का अधिकार है – बल्कि ऐसा करना आपका कर्तव्य है, मगर धर्मपालन मे रुकावट डालना उचित नहीं है। मेरी जगह आप होते तो क्या करते? आप धर्म का पालन करते या कष्टो से घबरा कर धर्मविमुख हो जाते? जिस धर्म का पालन करना कठिन माना जाता है उसका पालन करने का मुझे सहज ही योग मिला है। फिर सहज सुयोग पाकर कौन विवेकी धर्म नही पालेगा?

आप माता कैकेयी को वृथा दोष देते हैं। यह तो मेरे सद्भाग्य का ही फल समझिये कि अचानक सत्कर्म करने का अवसर मुझे मिल गया है। नही तो कौन जानता था कि मुझे यह अपूर्व लाभ मिलेगा? माता कैकेयी को आप भी धन्यवाद दीजिए जिनकी कृपा से मुझे धर्मपालन का अवसर मिल सका है।

प्रजाजनो! मै रूठ कर वन नही जा रहा हू। न भय से, न दुर्बलता से ओर न स्नेह–रहित होकर ही जा रहा हू। क्या आपको यह अभीष्ट होगा कि पिताजी की प्रतिज्ञा असत्य साबित हो? क्या आप हम भाइयो मे आपसी कलह होना पसन्द करेगे? मैं चाहू तो अभी–अभी राज्य पर अधिकार कर सकता हू, मगर पिता का और धर्म का न होने वाला राम क्या प्रजा का होगा? और फिर ऐसे धर्मत्यागी अयोग्य पुरुष को क्या आप राजा बनाना अच्छा समझेंगे?

इसके अतिरिक्त भरत मेरा भाई है। वह आपका राजा हुआ है। उसमे राजा होने की सब योग्यताए है। अगर वह योग्य न होता तो मैं माता के प्रस्ताव का घोर विरोध करता। आप नही जानते कि भरत कौन है? भरत को जब आप भली–भाति पहचान जाएगे तो उसके राजा होने पर आपको उतनी

ही प्रसन्नता होगी जितनी मेरे राजा होने पर होती। मुझमे और भरत मे कोई भेद नहीं है। प्रेम और भक्ति मे जो सम्बन्ध है, वही मुझमे और भरत मे हे। भरत और राम एक ही मूग के दाने की दो फाड हैं। अगर आपको मुझ पर विश्वास है और आपने मुझे राजा चुना हे तो आपको मेरी बात माननी चाहिये। में कहता हू – आपका राजा भरत है। आप भरत को ही अपना राजा समझे। अगर आप ऐसा नहीं करते तो मैं समझूगा कि आपको मुझ पर विश्वास नही है। मैं आपको विश्वास दिलाता हू कि मेरा भाई भरत मेरी ही तरह प्रजा का पालन करेगा। इसलिए आप उठे और रथ को आगे बढने दे। मुझे आशीर्वाद दे कि मैं वन मे अपना कर्तव्यपालन कर सकू। आप सबकी सद्भावनाओ से वन के काटे भी मेरे लिए फूल हो जाएगे।

राम ने प्रजा का आशीर्वाद मागा है अब विचारणीय यह है कि राम बडे हैं या प्रजा बडी है? अगर प्रजा बडी न होती तो राम प्रजा का आशीर्वाद क्यो मागते? वास्तव मे सघ की शक्ति बडी मानी जाती है। सघ के होने पर ही तीर्थंकर हो सकते हैं। इसीलिए राम ने प्रजा का आशीर्वाद मागा है।

विवाह के समय सगे–सम्बन्धी बुलाये जाते हैं। इसका प्रयोजन भी आशीर्वाद प्राप्त करना है। उन सब के आशीर्वाद से विवाह और विवाहित जीवन के काटे फूल बन जाए इसी आशा से उनसे आशीर्वाद लिया जाता है।

राम ने प्रजाजनो से कहा – मित्रो! उठ खडे होओ। धर्म के मार्ग मे विघ्न मत डालो। मैं यह आशा रखता हू कि आपकी शुभकामनाओ से वन के काटे भी फूल बन जाए और आप स्वय ही काटे बन रहे हैं! यह उचित नही है। धर्म का मार्ग मत रोको।'

आप कहते हैं – हम क्या करे? इस सम्बन्ध मे मेरा यही कहना हे कि अगर आप मुझसे प्रेम करते हें तो धर्म से भी प्रेम करो। धर्म के मार्ग पर ही चलो। में पिता का ऋण चुकाने के लिये वन को जाता हू। पिता का ऋण आपके ऊपर भी है या नही? आप पर भी हे ओर आप भी हे उसे उतारने का प्रयत्न करते रहे। पितृ–ऋण चुकाने मे जो कठिनाइया आवे उन्हे सहर्ष सहन करो। भोग–विलास का जीवन त्याग कर त्यागमयी प्रकृति बनाओ। तुच्छ स्वार्थ के लिए भाई के साथ मत लडो। पिता को पूर्ण शाति और सुख मिले – ऐसा उद्योग करो। ऐसा करने पर में आपके पास ही हू। आपने इतना किया तो में समझूगा कि आप मुझसे सच्ची प्रीति करते हैं।

मित्रो! आप राम का चरित्र सुन रहे हैं। राम की इस बात पर विचार करके आपको भी त्याग अपनाना चाहिए। त्यागमय आचरण से मनुष्य का जीवन धन्य बनता है। राम का वह त्याग साधारण नही था परन्तु भगवान् महावीर का त्याग इससे भी कई गुना अधिक था। आप उनकी सन्तान हैं। फिर भी आप भोगो के कीडे बने रहे और भोग–विलास की सामग्री के लिए परस्पर लडते–झगडते रहे तो यही कहा जायगा कि आपने न राम को पहचाना है और न महावीर को ही जाना है। बहिनो से भी यही कहना है कि सीताजी ने जिन गहनो को हस कर त्याग दिया था उन गहनो के लिए तुम आपस मे कभी मत लडो। जब आत्मा सद्गुणो से अलकृत होती है तो शरीर को विभूषित करने की आवश्यकता ही नही रहती। सीता और राम के प्रति आपके हृदय मे इतनी श्रद्धा क्यो है ? उन्होने त्याग न किया होता तो जो गौरव उन्हे मिला है वह कभी मिल सकता था? त्याग के बिना कोई किसी को नही पूछता।

प्रजाजनो पर राम के वक्तव्य का तत्काल प्रभाव पडा। लोग सोचने लगे – जब हम राम को चाहते हैं तो राम की बात हमे माननी ही चाहिए। अगर हम राम की तरह वीर नही बन सकते तो कम से कम कायर तो नही बनना चाहिए। राम धर्म के लिए वन जा रहे है। उसमे विघ्न डालना उचित नही है।

इस प्रकार विचार कर लोग खडे हुए और मार्ग के दोनो किनारो पर खडे हो गये। राम के वचनो के जादू से वे उठ तो गए मगर उनके हृदय का दु ख दूर नही हुआ। वरन यह सोचकर कि राम का रथ अब आगे बढने वाला है और थोडी ही देर मे वह आखो से ओझल हो जाएगे उनकी व्याकुलता बेहद बढ गई। सब लोग मोन हो रहे। चिन्तित भाव से राम की ओर दृष्टि जमा कर लोग खडे हो गए। आज प्रजा ने राम का नवीन रूप देखा। जिस राम का राज्यभिषेक होने वाला था वह राम मानो इससे अलग हे।

राम ने विचार किया कि अब विलम्ब करना उचित नहीं हे। थोडी–सी देर मे ही प्रजा का मोह फिर भडक उठेगा। तपे हुए लोहे पर चोट लगने से चीज बन जाती है। देर करने से वह ठडा हो जाता हे और चीज बनाने के लिये फिर उसे गर्म करना पडता है।

राम ने सारथी को रथ बढाने की आज्ञा दी। रथ आगे बढा और राम सब की शुभकामनाए साथ लेकर वन की ओर रवाना हुए। अयोध्या से बाहर दूर दूर जाकर राम ने रथ रुकवाया। सारथी से कहा – अब हमे रथ की [illegible]

आवश्यकता नही है। हम पेदल ही वन मे भ्रमण करेगे। रथ हमारे लिए उपाधि है। अतएव तुम रथ को लोटा ले जाओ।

इतना कहकर राम रथ से उतर पडे। लक्ष्मण भी उतरे ओर फिर सीता उतरी। सारथी और रथ के घोडे आसू बहाने लगे। उन्होने सोचा – हाय यह निष्ठुर कार्य हमे ही करना पडा। हम राम को वन मे भेजने के निमित्त बने। सारथी ने कहा – दीनबन्धु! नही जानता कि किस पाप के उदय से मुझे यह जघन्य कृत्य करना पडा है! आपको वन भेजने का निमित्त मैं भी हुआ। मैं लौटकर जाऊगा और लोग कहेगे कि यह सारथी राम को वन मे छोड आया है तो मैं उन्हे किस प्रकार मुह दिखाऊगा?

राम ने सात्वना देते हुए कहा – चिन्ता मत करो। सारथी, तुम्हे पाप नहीं, धर्म का फल मिला है। मुझ पर कोई मिथ्या दोषारोपण किया गया होता और उसका दण्ड भोगने के लिए मुझे वनवास करना पडता और तुम मुझे छोडने आए होते तो चाहे दोष के भागी होते, मगर हम तो धर्म–कार्य के लिए वन मे आये हैं। इसलिए तुम्हे दोष नहीं होगा। धर्म का फल मिलेगा।

लोग समझते हैं कि हमने रथ और घोडो पर अधिकार कर लिया है मगर देखा जाय तो अधिकार करने वाला व्यक्ति रथ आदि की परतन्त्रता स्वीकार करके स्वय उनके अधिकार मे चला जाता है। जब तक वह उन्हे पकडे है, स्वेच्छापूर्वक कही जा नही सकता।

राम कहते हैं – सारथी! तुम रथ को लौटा ले जाओ। रथ ले जाने पर तुम मुझे बन्धन से छुडाने वाले होओगे। चिन्ता और शोक मत करो। शरीर रूपी रथ और इन्द्रियो रूपी घोडे भी में त्यागना चाहता हू। में इन्हे मन रूपी सारथी को सौंप देना चाहता हू। ऐसी स्थिति मे तुम रथ के लिए क्यो चिन्ता करते हो?

सारथी अपने प्राणाधिक स्वामी को जिस स्थिति मे त्याग रहा हे उससे शोक होना स्वाभाविक हे। फिर भी सारथी को इस बात का सतोष हे कि यहा तक रथ लाने के उपलक्ष्य मे मुझे राम के कुछ उपदेश–वाक्य सुनने को मिल गए। यद्यपि राम के विरह से उसका हृदय जल रहा था फिर भी राम के शातिदायक वचन सुनकर उसे सतोष भी हुआ। सारथी अत्यन्त अनमने भाव से रथ लेकर नगर की ओर लोट पडा।

जैन रामायण मे इस प्रसग का वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है। उसमे यह भी लिखा हे कि अनेक सामन्त ओर सरदार आदि अनेक प्रकार से समझाने–बुझाने पर भी नही माने ओर राम के साथ–साथ चले ओर बहुत दूर

तक गये। आखिर राम ने उन्हे विदा दी। उन सामन्तो को राम के वन–गमन से इतना अधिक विषाद हुआ कि उन्हे ससार का वैभव तृण के समान तुच्छ प्रतीत होने लगा। राम के वियोग मे उन्होने खूब विलाप किया। अन्त मे कई सामन्तो ने विरक्त होकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

वास्तव मे राम का चरित्र बडा विशाल है और वर्णन करने योग्य भी है। पर उस विस्तृत वर्णन मे उतरने का अवकाश न होने के कारण मैं चरित्र के ब्यौरे मे उतरना नही चाहता। राम–चरित्र की एक मुख्य घटना को ही मै चित्रित करना चाहता हू। साथ ही उससे फलित होने वाला आशय जनता के सामने रखना चाहता हू। अतएव ब्यौरे की बातो पर प्रकाश न डालने के लिए पाठक क्षमा करे।

अवध की श्रद्धाजलि

सारथी के चले जाने पर राम ने अवध की ओर भावभरी दृष्टि डाली। फिर सीता और लक्ष्मण से कहा – इस सुहावने अवध को प्रणाम करो। मोती समुद्र मे उत्पन्न होता है। वह चाहे कही जाय, फिर भी कहलाता है समुद्र का ही। समुद्र का मोती समुद्र मे रहे तो उसकी कीमत नही होती। बाहर निकलने पर ही उसकी कीमत कूती जाती है और उसकी बदौलत समुद्र की प्रशसा होती है। समुद्र को 'रत्नाकर' की पदवी और कैसे मिली है? मै इस अवध–समुद्र मे उत्पन्न हुआ हू। कही भी जाऊ, कहाऊगा अवध का ही। मगर अवध का गौरव बढाने के लिए मुझे अवध से बाहर निकलना ही चाहिए। हे अवध हम तेरे है और तेरे ही रहेगे तथापि तेरा गौरव बढाने के लिए तुझसे बिछुडते है।

राम कहते है – हे अवध! मोती की कीमत पानी से होती है। तूने मोती की तरह मुझे उत्पन्न किया है ओर मुझे पानी दिया है। तूने मुझे दया का पानी दिया है। इस पानी का बहुत महत्त्व है । तूने दया का जो अकुर मेरे अन्तःकरण मे उत्पन्न किया हे वह उन दीन हीन गरीब और मूक जीवो पर छाया करेगा। जो सताये जा रहे है– मारे जा रहे है वे तेरी दी हुई दया की छाया पाएगे ओर उनकी रक्षा होगी। साथ ही जो लोग निरपराध प्राणियो का घात करते है उन्हे भी दया के उस अकुर की शीतल छाया मिलेगी। वे हत्या के पाप से बच सकेगे। इस प्रकार मरने वाले और मारने वालो–दोनो की रक्षा करने के लिए तेरा यह पुत्र–राम रूपी मोती दया का पानी लेकर बाहर निकल रहा है।

हे अवध! तूने दया के पानी के साथ मुझे प्रेम का भी पानी दिया है। प्रेमहीन दया लगडी होती हे। वह एक ओर दया करती है तथा दूसरी ओर हत्या भी करती है। प्रेम के बिना दया का विकास नही होता। किसी दुर्बल और दीन भिखारी को रोटी का टुकडा दे देना दया हे मगर प्रेम के अभाव मे यह विचार नही किया जाता कि यह इस स्थिति से किस प्रकार ऊपर उठ सकता है। जहा दया प्रेम के साथ होगी, वहा रोटी का टुकडा दे देना ही बस नही समझा जायगा, वरन् उस दीन–दुखिया के भविष्य का भी विचार किया जायगा। इस कारण प्रेमयुक्त दया ही परिपूर्ण होती है। प्रेमपूर्ण दया से युक्त माता अपने बालक के साथ जैसा सलूक करती है वैसा ही सलूक प्राणीमात्र के साथ करने वाला पुरुष सच्चा दयालु है। हे अवध! मैं ऐसी ही दया करने जा रहा हू, जिससे प्राणीमात्र के हृदय मे बस जाऊ।'

राम कहते है – हे अवध! तुझ से तीसरा पानी मुझे न्याय का मिला है। प्रेम मे अन्धा होकर मनुष्य कभी–कभी न्याय को भूल जाता है। जिस पर उसका प्रेम होता है, उसके लिए दूसरो के प्रति अन्याय भी कर बेठता है। लेकिन मैं प्रेम के साथ न्याय का भी विचार रखूगा। मैं सारे जगत् को विशाल न्याय का सिद्धात समझाना चाहता हू। प्रेम होने पर भी मैं कभी अन्याय नही करूगा।

न्याय करने की भावना जीवन–विकास का मूल मत्र हे। प्रिय से प्रिय जन चाहे छूटता हो, मगर न्याय नही छोडना चाहिए। आप भी राम की तरह सकल्प करो कि मै कदापि अन्याय नही करूगा।

राम कहते हें – 'जगत् मे जो अन्याय फेल रहा हे उसे मिटा कर न्याय की प्रतिष्ठा करना ओर प्रचार करना मेरे प्रवास का हेतु होगा।

हे अवध! न्याय के पानी के साथ विनय ओर नम्रता का भी पानी मुझे मिला हे। ससार मे आज जहा–तहा उद्दण्डता दिखाई दे रही हे। लोग नमता ओर विनय को भूल रहे हें माता–पिता तक का विनय नही करते! अतएव मे विनय ओर नम्रता भी फेलाऊगा।

राम विनीत न होते तो केकेयी जेसी माता को प्रणाम करके न जाते। उनकी विनयशीलता ने ही उन्हे केकेयी के चरणो मे झुकाया था। वास्तव मे जो अपने से बडे हें, उनका विनय करना ही चाहिए।

गुणी जनो को वन्दना अवगुण जान मध्यस्थ।
दुखी देख करुणा करे मैत्री भाव समस्त।।

बडो को वन्दना करना उचित है। उसमे बराबरी नही की जाती कि वह मुझे वन्दना करे तो मैं उसे वन्दना करू। जो जिसे श्रेष्ठ समझता है, उसे उसका विनय करना साधारण कर्तव्य है।

राम कहते है – हे अवध! तूने मुझे विनय का पानी दिया है। उसका महत्त्व बताने के लिए मै जा रहा हू। तूने मुझे सदाचार का भी पानी दिया है। लोग कहते है द्रव्य होने पर ही सदाचार का पालन हो सकता है, अन्यथा सदाचार भुला दिया जाता है। यह विचार भ्रमपूर्ण है, यह बात मैं अपने व्यवहार से सिद्ध करूगा। मैं अकिचन होकर जा रहा हू। सिर्फ सदाचार की सम्पदा मेरे पास है और यही मेरे लिए काफी भी है। कोई कितना ही क्यो न गिर गया हो, अगर उसका नैतिक पतन नही हुआ है तो वह एक–न–एक दिन उन्नत हो जाएगा। इसके विपरीत जिसमे सदाचार नही है, वह चाहे चक्रवर्ती हो, तो भी उसका पतन अवश्यभावी है। किसी भी मनुष्य का पतन होने से पहले उसके सदाचार का पतन होता है। सदाचार मनुष्य की अक्षय निधि है। अतएव सदाचार का महत्त्व बतलाने के लिए मैं कोई कसर नही रखूगा।

हे अवध! सदाचार का महत्त्व बताने के साथ मैं लोगो को स्वत्व का भी महत्त्व बतलाऊगा। आज स्वत्वविहीन लोग दु ख से परतत्र होकर जीवन बिता रहे हैं। लेकिन मैं बतलाना चाहता हू कि वन मे रहते हुए भी स्वत्व किस प्रकार कायम रखा जा सकता है।

शरीर पाच भूतो का सम्मिश्रण कहलाता है। इसमे एक भूत वायु है। अगर श्वास न चले तो शरीर निर्जीव हो जाता है और श्वास वायु है। शरीर मे दूसरा तत्त्व जल है। शरीर मे जितना रसभाग है, वह सब जल तत्त्व है। तीसरा अग्नि तत्त्व है। शरीर मे अग्नि न हो तो रोटी न पचे। चौथा तत्त्व या भूत पृथ्वी है। चमडी हडडी आदि जितना भी ठोस भाग है वह सब पृथ्वी तत्त्व है। पाचवा भूत आकाश है। शरीर का पूरा ढाँचा आकाश मे ही है और इस ढाचे के भीतर भी आकाश है। इन पाच तत्त्वो के विषयो मे अवध को लक्ष्य करके राम कहते है–

हे अवध! मै तुझे त्याग नही सकता। मै त्यागू भी तो किस प्रकार? मेरे शरीर मे तेरे ही समीर का श्वास है। तेरा स्वच्छ और पावन पवन (श्वास) मेरे साथ है जो प्राण के रूप मे मुझमे व्याप रहा है। मैं जब तक श्वास लूगा यह स्मरण करता रहूगा कि यह श्वास अवध का ही है।

जब आप श्वास लेते हैं तो आपको अपने माता–पिता का स्मरण आता है या नही ? अगर नही आता तो आप अपने माता–पिता को ही भूल

रहे हैं। तब देश को क्या याद रखेगे! राम कहते हैं कि मैं जब तक श्वास लेता रहूगा याद रखूगा कि यह श्वास अवध का ही हे। आप कह सकते हैं कि अवध का पवन ओर श्वास तो अवध मे ही रह जाएगा। वह राम के साथ केसे जायेगा? राम जहा जाएगे वहीं के पवन से श्वास लेगे! फिर वह श्वास अवध का कैसे रहा? इसका उत्तर यह है कि वैज्ञानिको के कथनानुसार बारह वर्ष मे शरीर के सब पुद्गल बदल जाते हैं। इस कथन को सही मान लिया जाय तो आपके शरीर के परमाणु कई बार बदल गये। फिर भी आपका शरीर क्या माता–पिता का दिया हुआ नहीं है? परमाणु चाहे कितनी बार बदल जाए मगर मूल पूजी तो माता–पिता की दी हुई ही है। अतएव परमाणु बदल जाने पर भी यही कहा जायगा कि यह शरीर माता–पिता का दिया हुआ है। इसी प्रकार राम का कहना है कि मेरा मूल श्वास तो अवध का ही है। वहा मेरे शरीर मे प्राण का सचार हुआ है। भूलने वाले तो माता की गोद मे बैठे हुए भी माता को भूल सकते हैं परन्तु सपूत उसी को समझना चाहिये जो प्रत्येक श्वास मे उसे याद रखता है।

यही बात परमात्मा के स्मरण के सम्बन्ध मे भी समझनी चाहिये। परमात्मा का भी प्रत्येक श्वास मे स्मरण करना चाहिए।

दम पर दम हरि भज, नही भरोसा दम का।
एक दम मे निकल जावेगा, दम आदम का।।
दम आवे न आवे इसकी, आश मत कर तू।
नर! इसी नाम से तर जा भव–सागर तू।।
एक नाम साईं का जप, हिरदे मे धर तू।
वहां अदल पडा इन्साफ, जरा तो डर तू।।

इस प्रकार प्रत्येक श्वास मे परमात्मा का स्मरण रहने पर ही समझा जा सकता है कि परमात्मा भुलाया नही गया हे।

राम कहते हैं कि मैं अवध का श्वास नही भूलूगा। इसका तात्पर्य यह हे कि मुझे अवध से दया प्रेम सत्य आदि जो सद्गुण मिले हैं उन्हे नही भूलूगा।

राम ने फिर कहा – हे अवध! मेरा यह शरीर तेरे ही जल से बना हे। अतएव अब लाख जल बाहर से मिलने पर भी म तुझे नही भूल सकता। हे अवध माता! मेरे श्वास मे अवध का पवन हे ओर अवध की ही अग्नि हे। अवध की अग्नि से ही मेरा श्वास गरम हे। इसलिये तुझे केसे भूल सकता हू? हे अवध माता! तेरे यहा का आकाश चाहे छूट जाए पर तेरे आकाश से गैन

जो अनासक्ति गुण ग्रहण किया है वह सदैव मेरे साथ रहेगा और जब तक वह मेरे साथ रहेगा तब तक मै अवध को कैसे भूलूगा?

आकाश अनासक्त है। कोई उसे रगना चाहे तो वह रगा नही जा सकता। वह किसी की पकड मे भी नही आ सकता। यही तो अनासक्ति है।

राम कहते हैं – मैंने अवध के आकाश से ही अनासक्ति का सद्‌गुण सीखा है। मैं कही आसक्त होकर फसना नही चाहता। आसक्त पुरुष जगल मे भी फस सकता है और अनासक्त पुरुष रगमहल मे भी आकाश की तरह अलिप्त रह सकता है।

राम कहते हैं – हे अवध भूमि! मैं तुझे तज नही रहा हू। तेरा स्वभाव अचल है ! तू किसी बडे तूफान से भले ही कपित हो जाय, अन्यथा तेरा स्वभाव निश्चल है तेरा यह स्वभाव मुझे भी मिला है। इस देन के लिए मैं सदैव तुझे स्मरण रखूगा।

निश्चलता पृथ्वी से सीखी जा सकती है। कितने ही आघात हो पृथ्वी अचल बनी रहती है पृथ्वी मे यह विशेष गुण है। पर पृथ्वी बडी है या पृथ्वीपति बडा है? अगर पृथ्वी बडी है तो अर्थ निकला कि पुरुष बडा नही है स्त्री बडी है। मगर पुरुष बडा है तो उसमे पृथ्वी से अधिक निश्चलता होनी चाहिये। जो पुरुष पृथ्वीपति होकर पृथ्वी के बराबर भी अचल नहीं बना है उसे क्या कहा जाय?

सीता मे कितनी निश्चलता थी ! प्रतापी रावण के सामने टिके रहना कोई साधारण बात नही थी लेकिन सीता पर्वत की तरह अचल रही ।

राम फिर कहने लगे – हे अवध भूमि ! मैं तेरी ही गोदी मे पला हू, तेरी ही गोद मे खेला हू, तेरी ही गोद मे गिरा हू और उठकर चला हू, तेरा सहारा लेकर ही मेने चलना–फिरना सीखा है। इसलिये तू मेरी हे और मैं तेरा हू। तू सदा मेरे साथ ही रहेगी। मै किसी भी दशा मे तुझे भूल नही सकता। तूने मुझे जो साहस दिया हे उसी के बल पर में इस कठिन पथ पर चलने को उद्यत हुआ हू आर लोभ–मोह मुझे छल नही सके हैं।

कमल के पत्ते को चाहे जितनी देर जल मे रखा जाय जब निकलेगा सूखा ही निकलेगा जल मे उत्पन्न होकर भी कमल जल से लिप्त नही होता। [illegible] यह गुण कही दूसरी जगह से नही उसी जल से आया है। उस जल [illegible] ता गुण उत्पन्न कर दिया हे। राम कहते हे – में अवधभूमि

राम कहते हैं – हे अवध माता! में तुझे किस दृष्टि से देखू? वास्तव मे मैं बडा नही, तू बडी है। तू हम सूर्यवशियो की पूर्व दिशा हे। पूर्व दिशा ही सूर्य को जन्म देती है। परमात्मा की स्तुति करते हुए कहा गया हे–

सर्वा दिशो दधति भानि सहस्त्रोरश्मि,
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरेदशुजालम्।

नक्षत्र और तारे तो सभी दिशाओ मे उत्पन्न हो जाते हैं किन्तु सूर्य को जन्म देने वाली एकमात्र पूर्व दिशा ही है।

राम कहते हैं – हे अवध माता! दूसरो को जन्म देने वाली तो बहुत होगी किन्तु हम सूर्य–सन्तानो को जन्म देने वाली तो तू ही है। तू हमारी अधिष्ठात्री है, हमारी देवी है। जो पूर्व से नहीं जन्मा है, वह सूर्य होने का गौरव नही पा सकता। इसी प्रकार मैंने अयोध्या मे जन्म न लिया होता तो मेरा भी गौरव न बढता। सूर्य पूर्व दिशा मे उत्पन्न हो करके पूर्व दिशा मे ही नही बैठा रहता वह दूसरी दिशा मे जाता हे। इसी प्रकार मैं भी अन्यत्र जा रहा हू। इसी मे तेरा गौरव है! मैं जहा–कही भी जाऊगा तेरी कीर्ति बढाऊगा।

एक व्यक्ति सारे देश को सुख्यात भी कर सकता है और कुख्यात – बदनाम भी कर सकता हे। सुना हे एक भारतीय ने लन्दन की किसी लाइब्रेरी मे जाकर एक चित्र चुरा लिया था। परिणाम यह हुआ कि उस लाईब्रेरी मे भारतीयो का प्रवेश करना निषिद्ध ठहरा दिया गया। इस प्रकार के एक भारतीय ने समस्त भारतवासियो को बदनाम कर दिया।

आप इस देश मे जन्मे हे। अगर आप मे इसकी ख्याति बढाने की योग्यता नहीं हे तो इतना करो कि आपके किसी व्यवहार से इसकी बदनामी न हो। बहुत–से लोग अविवेक के कारण ही देश ओर धर्म को बदनाम करते हें। उन्नत होने का आधार विवेक हे। अतएव विवेक प्राप्त करो। विवेक से आपकी भी उन्नति होगी ओर देश की भी कीर्ति बढेगी।

राम कहते हें – हे अवध! तूने मुझे मनुष्यत्व की मर्यादा दी हे। तू मनुष्यता की धात्री हे। तुझसे मिली मर्यादा को मे ससार के सामन रखना चाहता हू और वता देना चाहता हू कि अवध से मुझे केसी मर्यादा मिली हे। तुझसे सीखे हुए मनुष्यत्व का आदर्श उपस्थित करके म ससार रो राक्षसी प्रकृति भगाना चाहता हू।

हे अवध! तू एक प्रकार की चित्रशाला हे। तेरे भीतर अनक चित्रकार अपने भावो के चित्र वना गए हें। जिस चित्रशाला म कलापूर्ण सुन्दर चित्र हात हें उसमे आर लोग भी चित्र वनाने की इच्छा रखत हें। तर अन्दर हमार पूवजा

ने अपने भावो के जो चित्र बनाये हैं उन्हे देखकर मै भी एक नया चित्र अकित करना चाहता हू। तू भगवान् ऋषभदेव के समय से चित्रशाला बनी हुई है। अनेक बलदेव, वासुदेव, तीर्थकर आदि महापुरुष अपने–अपने चित्र खीच चुके हैं। उन सब चित्रो को दृष्टि के सामने रखकर मैं भी एक चित्र बनाने का प्रयत्न करूगा।

माता अवध! तू निरी चित्रशाला ही नही है वरन् एक नाट्यशाला भी है । इस नाटयशाला मे अनेक अभिनय हो चुके है। तेरे रगमच पर एक–एक अभिनेता ने ऐसा–ऐसा अभिनय किया है कि इन्द्र भी दग रह गया है। अब मैं एक बाल–नट भी इसी रगभूमि मे प्रवेश करता हू। यहा के पूर्ववर्ती अभिनेताओ ने हसते–हसते राज्य त्याग दिया था और आज मैं भी अपना राज्य अपने भाई के पक्ष मे त्याग आया हू। देखे, मैं अभिनय मे कितना सफल होता हू!

हे अवध! तू एक पाठ्यपुस्तक है, जो बतलाती है कि आर्य पुरुष के कर्तव्य कैसे होने चाहिए! तू आर्य जाति के कुल–कर्म को दिखाने वाली पाठ्यपुस्तक है।

जो हेय त्याज्य कामो से दूर रहता है उसे आर्य कहते है। कागज की पुस्तक तो सड–गल जाती है, पर तू ऐसी नहीं है। तेरे एक–एक पृष्ठ पर पुस्तक का नाम लिखा रहता हे। तेरे पृष्ठो पर जिन आर्य पुरूषो का चरित्र लिखा गया है उससे स्पष्ट है कि आर्य कुल मे सभी–कुछ त्याज्य हो सकता है पर धर्म त्याज्य नही है।

हे अवध! मैं कही भी रहू मगर मेरा पालना तो यही है। बालक इधर–उधर फिरकर आखिर पालने मे आ बैठता है उसी प्रकार मैं भी अवध मे आऊगा! ससार के लिए मे कितना ही बडा हो जाऊ तेरे समीप तो बालक ही रहूगा।

भील का बालक भी पालने मे झूला होगा। गरीब से गरीब माता भी अपने बालक के लिए झोली बना देती है। माता का बनाया पालना सदा बालक के साथ नही रहता। बालक घूमता–फिरता हे ओर पालना एक जगह स्थायी रहता है। फिर भी बालक उसे भूल नही सकता। इसलिए राम कहते है कि मै चाहे जहा रहू मगर मेरा पालना अवध ही है।

ज्ञानियो का कथन हे कि बालक का जितना सुधार पालने मे होता है उतना और कही नही होता। मान लीजिए – किसी वृक्ष का अकुर अभी छोटा है। वह फल–फूल नही देता। उस अकुर से लाभ तो फल–फूल आने

पर ही होगा लेकिन फल–फूल आदि की समस्त शक्तिया उस अकुर मे उस समय भी अव्यक्त रूप मे मोजूद रहती हैं। अकुर अगर जल जाय तो फल–फूल आने की कोई क्रिया नही होती। इसी प्रकार बालक मे मनुष्य की सव शक्तिया छिपी हुई हैं। योग्य दिशा मे उसका विकास होने पर समय पाकर उसकी शक्तिया खिल उठती हे। मगर बालक को पालने मे डाल कर दबा रखने से उसका विकास नही होता। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक जगह लिखा हे कि पाच वर्ष तक के बालक को सिले कपडे पहनाने की आवश्यकता नही हे। इस अवस्था मे बालक को कपडो से लाद देने का परिणाम वही होता हे जो अकुर को ढाक रखने से होता हे। बालक स्वय कपडा पहनने से घबराता हे। प्रकृति ने उसे ऐसी सज्ञा दी हे कि कपडा उसे सुहाता नही और जबरदस्ती करने पर वह रोने भी लगता हे। लेकिन उसके रोने को मा–बाप उसी तरह नही सुनते जैसे भारतीयो के रोने को अग्रेज नही सुनते। लोग अपने मनोरजन के लिए, अपना बडप्पन दिखाने के लिए बच्चे को कपडो मे जकड देते हैं और इतने सतुष्ट न होकर हाथो–पैरो मे गहनो की बेडिया भी डाल देते हैं। पैरो मे बूट पहना देते हैं। इस प्रकार जैसे उगते हुए अकुर को ढक कर उसका सत्यानाश किया जाता है उसी प्रकार बालक के शरीर को ढक कर जकड कर उसका विकास रोक दिया जाता है। अशिक्षित स्त्रिया बालक के लिए गहने न मिलने पर रोने लगती हे, जब कि उन्हे अपना ओर अपने बालक का सोभाग्य समझना चाहिए।

राम कहते हैं – हे अवध! तू मेरा पालना हे। मैं तुझे भूल नही सकता। लोग मुझे कितना ही बडा समझे तेरे आगे तो बालक ही रहूगा।

राम की तरह आप भी अपनी मातृभूमि का आदर करते हैं या नही? यदि आपने अपनी जन्मभूमि का आदर किया, उसे कभी विस्मृत न किया ता आप भी आनन्द मे रहेगे। अगर आप उसे भूल गए तो आपकी कृतघ्नता आपको किसी काम का नही रहने देगी।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

माता ओर मातृभूमि स्वर्ग से भी बढकर हैं। जा पुरुप अपनी जन्मभूमि के लिए प्राण भी निछावर कर सकते ह जन्मभूमि के मगल मे ही अपना मगल मानते ह वे पुण्यशाली हैं। इससे विपरीत जा अपने तुच्छ स्वार्थ क लिए उसे भूल जाते हैं वे पापात्मा ह।

इस प्रकार राम ने अनिश्चित काल क लिए अवध का प्रणाम किया ओर साथ ही अपन सकल्प का भी प्रकाशित किया। अवध का प्रणाम करा

के उनके भावो पर विचार किया जाय और तदनुसार बरताव किया जाय तो कल्याण होने मे देर न लगे। सब लोग राम जैसे नही हो सकते। सभी पालकी मे बैठने लगे तो पालकी उठाने वाला कहा से मिले? ससार मे पालकी मे बैठने वाले भी है और उठाने वाले भी हैं ओर रहेगे। फिर भी पालकी मे बैठने योग्य बनने के लिए कौन प्रयत्न नही करता? सफलता थोडी मिले मगर प्रयत्न तो उस दिशा मे करना ही चाहिये। अगर सब राम सरीखे नही बन सकते तो भी उद्योग तो निरन्तर वैसा बनने के लिए ही करना चाहिये।

राम के साथ सीता और लक्ष्मण ने भी अवध को अन्तिम प्रणाम किया। तत्पश्चात एक अनिर्वचनीय गभीरता के साथ तीनो ने आगे प्रस्थान किया। असीम ऐश्वर्य और अपरिमित सुख की मृदुल गोद मे पले और बढे राम तथा लक्ष्मण के पास आज एक जून के खाने की सामग्री भी नही है। पास मे एक दमडी भी नही है। उनमे सिर्फ आत्मबल है और आत्मबल की पूजी का भरोसा करके वे वन की ओर बढे चले जा रहे हैं।

गुह की अदभुत भक्ति

यहा एक ऐसी घटना का उल्लेख किया जाता है जिसका उल्लेख जैन रामायण मे नही है किन्तु जिस किसी भी बात से उपदेश मिलता हो, वह चाहे जहा हो ग्रहण करने योग्य है। सदुपयोग की प्रत्येक बात को ग्रहण करना स्याद्वाद की विशेषता है। जहा मूलभूत सिद्धात मे बाधा उपस्थित न होती हो और किसी घटना के वर्णन का अभिप्राय सिर्फ सत्शिक्षा देना हो तो ऐसी घटना का वर्णन पढना–सुनना कोई बुराई की बात नही है। किसी भी कथा मे घटना मुख्य वस्तु नही होती वरन् घटना से फलित होने वाला कथानायक या अन्य पात्र का चरित्र ही मुख्य होता है। उस चरित्र का बोध कराने के लिए ही घटनाओ की सकलना की जाती है। यहा जिस घटना का वर्णन किया जा रहा है वह जैन रामायण मे नही है। फिर भी उससे राम के चरित्र की कुछ विशेषता मालूम होती है।

राम के वन–गमन का समाचार सर्वत्र फैल गया। वन मे रहने वाला गुह नामक एक निषाद (भील) था। उसने भी सुना कि राम वन मे आये हैं। उसने सोचा – हम वनवासियो के सोभाग्य से ही राम वन मे आये हैं। वे अवध मे ही रहते तो उनके दर्शन भी दुर्लभ थे। वन मे आने पर उनसे मिलना सरल होगा। उनसे भेट करने का यह अच्छा अवसर है।

गुह राम की खोज मे निकला और वही पहुचा जहा सीता सहित राम–लक्ष्मण जा रहे थे। राम पर दृष्टि पडी तो वह सोचने लगा – आज राम हमारे जैसे ही हो गये हैं। अगर इनके मस्तक पर मुकुट और कानो मे कुण्डल होते तो इनसे मिलने मे बडी झिझक होती। मगर अब राम हमारे ही समान हैं। इस प्रकार विचार कर उसका रोम–रोम हर्षित हो गया। उसने अपने साथियो से कहा – जाओ जल्दी फल–फूल ले आओ। राम को भेट देकर उनकी सेवा करे।

अमीरो की अपेक्षा गरीबो मे अधिक स्नेह–भाव पाया जाता है। निषाद के साथी दौड कर फल–फूल ले आये। निषाद फल–फूल लेकर राम के सामने पहुचा भेट धरी। फिर प्रणाम करके उनके सामने खडा हो गया और कहने लगा – आज का दिन और यह घडी बडी धन्य है कि मुझ जैसे जगली को आपके दर्शन का सौभाग्य मिला।

महापुरुष दीन की नम्रता देख कर पानी–पानी हो जाते हैं। राम ने गुह की भक्तिभावना देखी तो गद्गद हो गये। वे गुह को गले लगा कर प्रेम के साथ मिले। राम का यह स्नेह पाकर गुह कृतार्थ हो गया। उसे जो मिला उसकी तो वह आशा ही नही कर सकता था।

राम ने पूछा – मित्र! तुम सकुशल तो हो?

गुह सोचने लगा – अहा! राम मुझे मित्र कहते हैं? मैं इनके साथ मित्रता कैसे निभाऊगा? में इनकी क्या सेवा कर सकूगा? बडे भाग्य से कभी ऐसे अतिथि मिलते है। मेरे पास इनके स्वागत के योग्य क्या है? लेकिन हृदय की सच्ची भक्ति अर्पण करके ही इनका सत्कार करूगा। राम को वन मे भेजने वाले धन्य हें। मैं उनका कृतज्ञ हू, जिनके प्रताप से मुझे ऐसे अतिथि मिल सके।

लोग केकेयी को बुरा कहते हे। निषाद उसे धन्य समझता हे। इसीलिए कहा गया है–

न जाने ससारे किममृतमय कि विषमयम्?

जो पतित समझा जाता हे लोग जिसे छूना भी पसद नही करते वही गुह निषाद भेट लेकर राम से मिलने आया है। उसके पास राजत्यागी राम को भेट मे देने योग्य कौन–सी वस्तु हो सकती है? उसक पास मोती नहीं हे हीरा नही हे पन्ना नही हे। राम को भी इन चीजो की आवश्यकता नहीं हे। जिन्हे त्याग कर वे वन म आये हे उन्ह ग्रहण करने की इच्छा भी क्या करगे?

लोग असली चीज को नकली समझते है और नकली पर टूट पडते हैं। जब भूख से आते सिकुड रही हो तब मोतियो का थाल भर कर आपके सामने रखा जाय तो आपको रुचिकर होगा? आपको प्यास लगी हो और कोई पानी के बदले गुलाब का इत्र भेट करे तो आप क्या कहेगे? इनसे आप का काम चल जाएगा? नही। भूख–प्यास के अवसर पर जगली फल–फूल और दोना–भरा पानी आप जितना पसन्द करेगे, उतनी कोई दूसरी कीमती चीज नही। फिर भी लोग असली चीज को भूल जाते हैं और नकली के पीछे पडते है।

सासारिक विषमता ने मनुष्य के विवेक को धुधला बना दिया है। यही कारण है जिससे लोग भाव को भूल गए हैं और वस्तु की कीमत के फेर मे पड रहे हैं। चन्दनबाला द्वारा भगवान् महावीर को दिये हुए उडद के बाकले क्या कीमती थे? फिर इन्द्र आदि देवो ने भी क्यो धन्य–धन्य कहकर उस दान की सराहना की थी? उस दान मे भावना की ही कीमत थी। भावना के मूल्य से वह दान मूल्यवान बन गया था। चन्दनबाला तेला की तपस्या मे थी। हाथो मे हथकडी और पैरो मे बेडी पहने थी। कछोटा लगाया हुआ था। सिर मुडन किया हुआ था। ऐसी स्थिति मे बाकलो का दान दिया गया था। उस दान के साथ चन्दनबाला की गहरी धर्मप्रीति थी। इसी प्रीति के कारण वह दान धन्य हो गया। उन बाकलो की कीमत इन्द्र भी नही चुका सकता था।

राम अयोध्या के राजा होते तो उन्हे कीमती से कीमती भेट देने कौन न दौडता आता? लेकिन जब राम का राज्य छूट गया है, वृक्ष की छाल के वस्त्र उन्होने पहन रखे हैं और जगल मे भटक रहे हैं, ऐसी दशा के राम जिस निषाद को प्रिय लगे उसका भाव कैसा रहा होगा? राम जैसा वेष बनाये कोई आपके यहा आ जाए तो आप उसे धक्के देकर भगा देगे मगर निषाद को राम उस वेष मे भी प्रिय लगे।

निषाद विचार करने लगा – मैने पहले भी राम को देखा था और आज भी देखा रहा हू। कहा मुकुट से मडित और कुडलो से अलकृत वह वेष और कहा यह वन्य वेष। मगर उस वेष मे ये उतने प्रिय नही, इनका यह भव्य रूप हम गरीबो का उद्धार करने वाला हे। कौन जाने हम जेसो के उद्धार के लिए ही अदृष्ट ने यह रचना रची हो?

आपको राम का यह वेष प्रिय लगता है? सचमुच आपको प्रिय लगता होता तो आपके जीवन मे बहुत सादगी आ गई होती। गाधीजी को कहते–कहते इतने दिन हो गए। फिर आप उनकी बात मानकर सादगी क्यो

नही धारण करते? गाधीजी खुद सादगी के आदर्श हें ओर सादगी की शिक्षा देते हैं। मगर आप से विलास नही त्यागा जाता?

महापुरुष प्रत्येक परिस्थति मे सम ही रहते हें। न सपत्ति मे हर्ष मानते हैं और न विपत्ति मे विषाद। राम राज्याभिषेक के समय प्रसन्न नहीं थे और वनवास के समय दु खी नहीं हैं तथापि गुह की भक्ति देखकर उन्हे हर्ष हुआ।

शाम हो आई थी। राम ने लक्ष्मण से कहा – 'लक्ष्मण! आज यह मित्र मिला हे और शाम हो रही हे। आज इसी वृक्ष के नीचे रात क्यो न बिताई जाय? आज की रात इस मित्र के साथ ही रहे!

यो तो राम को कोई साधारण राजा भी ठहराने का साहस नहीं करता था, पर आज वे गुह के लिए वृक्ष की छाया मे ठहरे। गुह की प्रसन्नता का पार न रहा। उसने सोचा – राम मेरे लिए आज यहीं ठहर रहे हैं। वह दोड कर आस–पास से पत्ते तोड लाया। पत्तो का बिछोना बनाकर उसने कहा – प्रभो! आप निश्चिन्त होकर निद्रा लीजिए ओर थकावट मिटाइए। में जाग कर आपकी रक्षा करूगा।

लक्ष्मण ने कहा–'मित्र! वेसे तो तुम रक्षा करने मे समर्थ हो बलवान हो ओर वन के भेद से परिचित हो इस कारण हिसक पशु आदि से हमारी रक्षा कर सकते हो लेकिन हमारी प्रतिज्ञा यह हे कि हम परतन्त्र नही रहेगे। हम अपने ही सामर्थ्य से रक्षित होगे। अतएव में जागूगा। तुम सो जाओ। में सेवक हू। सेवा करने के लिए ही साथ आया हू। मेरे लिए यहा ओर कोई काम न था।

गुह – जेसे राम दशरथ महाराज के पुत्र हें वेसे ही आप भी हें। आप भी महलो मे कोमल सेज पर सोने वाले हे। आप कभी भी पेदल नही चल। आज पेदल चलते–चलते थक गये होगे। इसलिए आप भी सो जाइए। में जाग कर रक्षा करूगा। हा अगर मेर ऊपर भरोसा न हो ओर मुझे वईमान समझते हो तो वात अलग। पर यकीन रखिए में धोखेवाज नही हू।

लक्ष्मण ने सोचा – गुह वडा सेवापरायण ओर भक्त हे। अधिक आग्रह करने से इसके चित्त को क्लेश पहुचेगा। वह वाले – मित्र! तुम्हार ऊपर अविश्वास करने का काई कारण नही ह। फिर भी में सोचता हू कि सवरा हात ही राम तुम्हे विदा कर देगे। साथ नही रखग! ऐसी दशा म हम लाग वातचीत कव करेगें? तुम से वन्य–जीवन क सवध म वहुत–सी वात सीखनी ह। इस नवीन जीवन के लिए तयारी किय विना कस काम चलगा?

आलसी आदमियो ने ससार को बिगाड दिया है। नागश्री ब्राह्मणी ने मुनि को कड़ुवा तूबा जिसके खाने से उनकी मृत्यु हो गई थी आलस्य के कारण ही बहरा दिया था। उसने सोचा था – कौन बाहर फेकने जाय? इस आलस्य के मारे उसने घोर अनर्थ कर डाला। लक्ष्मण आलसी होते तो गुह की बात मानकर सो जाते। पर आलस्य तो उनके पास ही नही फटका था। इस पकार गुह भी पसन्न हो गया और लक्ष्मण की स्वतत्रता भी कायम रह गई।

रात हुई। शीतल मद पवन चलने लगा। चादनी छिटक गई। राम और सीता पत्तो के बिछौने पर सो गये। राम को इस प्रकार सोते देखकर गुह सोचने लगा – राम जब राजमहल मे सोते होगे तो कितनी सुन्दर सेज और कितना बढ़िया पलग बिछाया जाता होगा! आज वही राम पत्तो के बिछौने पर पेड के नीचे पडे हैं। राज्याभिषेक हो गया होता तो वे किस स्थिति मे होते और अब किस स्थिति मे हैं? और यह माता सीता जनक राजा की पुत्री और दशरथ की पुत्रवधू हैं! अनेक दासिया इनकी सेवा मे हाजिर रहती थी। कितने सुखो मे पली है और रही हैं। हाय! आज इन्हे भी पर्ण–शय्या पर भुजा का तकिया लगाकर सोना पडा है। ससार की दशा बडी ही विचित्र है।

इस प्रकार विचार करते–करते गुह को रोना आ गया। गुह का रोना भीतर ही न रुक सका। बाहर रोने की आवाज निकल पडी। गुह का रोना सुनकर लक्ष्मण पशोपेश मे पड गए। अचानक गुह क्यो रोने लगा? उन्होने पूछा – 'सखे! यह क्या? तुम अभी–अभी रोने क्यो लगे? सेवक होकर रोना कैसा? सेवक को रोने का अधिकार नहीं है। उठो सभलो क्या डर लगता है?

गुह ने रोना रोककर कहा – मैं डरता नही। नित्य जगल मे रहने वालो को जगल मे डर कैसा? यह तो मेरा घर है – क्रीडाभूमि है। मुझे विचार कर उद्वेग हो आया कि राम ओर सीता जिस दशा मे आज यहा सो रहे हैं वह कसी विकट है! मेरे झोपडे मे भी एक टूटी–सी खटिया है मगर राजमहल मे रहने वाले राजकुमार ओर राजकुमारी के लिए आज वह भी नसीब नही है। कसी विचित्रता हे?

गुह की बात सुन कर लक्ष्मण ने कहा – 'मित्रा! तुम वृथा रोते हो। तुम ने अकारण ही दु ख पेदा कर लिया हे। जान पडता है मोह ने तुम्हे घेर लिया ह। आखिर राम आर सीता के लिए ही दु ख मना रहे हो न? मगर उन्हे तो दु ख ही नही ह। जिस दु ख से तुम रो रहे हो वह दु ख राम को क्यो नही रुलाता? यह समझने की बात ह। रोना अज्ञान का फल हे। राम के सत्सग मे आकर तुम्हे अपना अज्ञान छोडना चाहिए। अज्ञान हटने पर दु ख–सुख

सरीखे जान पडते हैं। जिसे तुम दु ख मानते हो राम उसे दु ख नही मानते। अगर वास्तव मे वह दु ख ही होता तो राम भी उससे दुखी होते। आग गर्म है तो वह सभी के लिए गर्म हे। किसी को गर्म और किसी को ठडी नहीं लगती। इसी प्रकार वनवास अगर दु ख होता तो राम भी उससे दुखी होते। मित्र! तुम वनवासी होकर भी वनवास को कष्ट समझते हो?

राम ने स्वेच्छापूर्वक यह स्थिति स्वीकार की है। किसी ने उन्हे अयोध्या से निर्वासित नही किया है। वे इस दशा मे सतुष्ट और सुखी हैं। इसके लिए उन्होने राजपाट भी निछावर कर दिया है। हा, राजपाट इस सुख पर निछावर ही हुआ है। इसकी कीमत नही चुकाई जा सकती। राम की दृष्टि मे यह सुख बहुत सस्ता मिला है।

लक्ष्मण की बात सुनकर गुह चकित रह गया। उसने कहा – आप सब–कुछ ठीक कहते हैं, मगर जी नही मानता।

लक्ष्मण – 'हे गुह! तुमने थोडी देर पहले कहा था कि आप पतितो को पावन करने आये हैं। यह बात इतनी जल्दी कैसे भूल गए? वास्तव मे तुम मोह मे पड गए हो इसलिए रोते हो। मोह त्यागो। राम के वनवास का रहस्य समझो। राम अयोध्या मे रहते तो ससार के सब प्राणियो के हृदय मे नही बस पाते। उन्होने सब–कुछ त्याग दिया है। इसी कारण वे सब के हृदय मे बसने योग्य बन गये हैं।

राम ने धर्म के लिए राज्य त्याग दिया, लेकिन आप मे कोई ऐसा तो नही हे जो चार–आठ आने के लिए धर्म छोड देता हो? झूठ बोलना भी धर्म छोडना है। अगर कोई झूठ बोलता हे तो उसे सोचना चाहिए कि क्या वे आठ आने साथ जाएगे? जब काया ही न रहेगी तो माया क्या काम आएगी? अतएव राम की बात हृदय मे लेकर धर्म के लिए कुछ त्याग करो। त्याग बिना धर्म नही होता।

लक्ष्मण कहते हें – निषाद! तुम ओर गुप्त भाव सुनो। क्या ससार म ऐसा कोई फूल हे जिस मे कीडे न लगते हो? क्या ऐसी कोई पृथ्वी हे जहा काटे न होते हो? सभी फूलो मे कीडे होते हें ओर पृथ्वी पर सर्वत्र काट हे। इन से बच निकलने वाला ही सच्चा वीर हे।

लक्ष्मण फिर कहते हें – आत्मा ही कर्ता हे ओर आत्मा ही भोक्ता हे। लोग स्थूल को देखते हें सूक्ष्म को नही देखते। दृश्य को देखते हे अदृश्य का नहीं देखते। लोग प्रत्यक्ष कार्य को देखते हें लेकिन प्रत्यक्ष का कार्य जिसका परिणाम हे उसे नहीं देखते। ज्ञानी कहते हें तुम जो–कुछ दख (भोग) रह हा

वह सब तुम्हारे किये का ही परिणाम है। तुम्हारे अदृश्य कार्य अब दृश्य मे परिणत हो गए हैं और समय पाकर यह दृश्य भी अदृश्य मे परिणित हो जायगे। इस प्रकार आत्मा स्वय कर्ता और भोक्ता है। फिर किस पर रोष किया जाय? किस बात की चिन्ता की जाय?

लक्ष्मण और गुह इसी प्रकार बाते करते रहे। रात समाप्त होने आई। तब लक्ष्मण ने कहा – 'मित्र! अब रात समाप्त हो रही है। उषा का प्रकाश फैल रहा है। मैं प्रभाती गाकर राम को जगाता हू। लक्ष्मण प्रभाती गाने लगे–

जागिए कृपानिधान पछी वन बोले।
चन्द्रकिरण मलिन भई चकवी पिय मिलन गई,
त्रिविध मंद चलत पवन, पल्लव–द्रुम डोले।
प्रात भानु प्रकट भयो, रजनी को तिमिर गयो,
भ्रमर करत गुजगान कमलन दल खोले।
जागिये . . . बोले ।।

लक्ष्मण के साथ–साथ गुह भी गाने लगा। गुह पहले तो रोता था पर लक्ष्मण की बातो ने उसे सचेत कर दिया है। अब वह प्रसन्न है। वह सोचता है – अच्छा हुआ मुझे रोना आ गया। रोना न आता तो इतना ज्ञान कैसे मिलता।

लक्ष्मण ने प्रभाती गाकर राम को जगाया। राम ने लक्ष्मण और गुह–दोनो को प्रफुल्लित और एक–रस देखा। वे सोचने लगे – 'कहा लक्ष्मण और कहा गुह? एक राजमहल मे जन्मा और दूसरा जगल मे। दोनो की शिक्षा भी भिन्न है। दोनो का कर्तव्य–कर्म अलग–अलग है। फिर भी दोनो कैसे एक–रस दिखाई देते है! यह एक रूपता इस तथ्य को सिद्ध करती है कि ऊपर से कोई कैसा ही हो पर आत्मा सब की समान है। 'राम यह देख और सोच कर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

आप किसी मनुष्य से घृणा तो नही करते? स्मरण रखो घृणा करने वाला स्वय घृणास्पद बन जाता हे। भारतीयो ने दलितो से घृणा की तो स्वय विदेशियो की दृष्टि मे घृणास्पद हो गये। अतएव ऊपर की बाते देखकर आत्मा को मत भूलो। मान लो कपडे की दो गाठे है। एक गाठ पर शाल लिपटी है और दूसरी पर डामर पुत गया है। दोनो का बीजक एक है और दोनो मे एक–सा माल भरा है। ऐसी स्थिति मे ऊपर से देखने वाले भले एक गाठ को अच्छी और दूसरी को बुरी कहे मगर जिसके हाथ मे बीजक हे वह ऐसा नही समझेगा। वह दोनो को समान समझेगा। इसी प्रकार ऊपर से कोई

केसा ही दिखे मगर अन्तरात्मा से तो सव समान हैं। ज्ञानी पुरुष आत्मा की अपेक्षा से सबको समझते हैं। कहा भी हे–

सिद्ध जैसा जीव है, जीव सोई सिद्ध होय।
कर्म मैल का आतरा, बूझे बिरला कोय।।

जीव सब का समान है। इसीलिए किसी पापी से भी घृणा न करके आत्मा के असली स्वरूप को ही देखना चाहिए।

राम लक्ष्मण और गुह की प्रीति देख कर प्रसन्न हुए। उन्होने भी गुह की आत्मा को ऊपर उठाने का उपदेश दिया।

गुह कहने लगा – 'मैं आपको क्या दे सकता हू? मेरे पास है ही क्या? मेरे पास अवध सरीखा राज्य नहीं है। हा, जिस गाव मे मैं रहता हू, आप उस शृगवेरपुर की ठकुराई करना स्वीकार करे तो पधारिये।

गुह की बात सुनकर राम मुस्कराये। वे सोचने लगे – मैंने जो त्याग किया है, उससे गुह का त्याग कम नहीं है। लखपति के लाख रुपयो के दान की अपेक्षा गरीब का छोटा–सा दान कम नही है।

बाइबिल की एक कहानी मे लिखा है कि एक बार किसी जगह दुष्काल पडा था। ईसा वहा के लोगो की सहायता के लिए चन्दा कर रहे थे। वहा एक बुढिया रहती थी। वह तीन पेसे रोज कमाती थी। उसने सोचा – मैं एक दिन भूखी रहूगी और उस दिन की सारी आमदनी उस फण्ड मे दे दूगी। यह सोचकर वह ईसा के पास गई। बुढिया ने कहा – मुझसे भी चदा लो। लोग उस दरिद्र बुढिया को देखकर खीझने लगे। किसी ने उसे वहा से हट जाने को कहा। ईसा ने उसे देखकर लोगो से कहा – इसकी अवहेलना मत करो। फिर बुढिया से कहा – आओ मा तुम क्या देना चाहती हो?

बुढिया ने अपने पास के तीन पेसे निकाल कर कहा–मेरे पास यही तीन पेसे हें जो में दे रही हू। अव मेरे पास कुछ भी नही हे। आज उपवास करके मैं यह पैसे देती हू।

ईसा ने प्रसन्नता के साथ तीन पेसे लेकर लोगा से कहा – अर करोडपतियो! तुम्हारे त्याग से इस बुढिया का त्याग वहुत ज्यादा हे। तुमने थोडा – सा देकर वहुत बचा लिया हे लेकिन इसने अपना सर्वस्व दे दिया हे। इसका त्याग अनुकरणीय है। में इसकी सराहना करता हू।

राम सोचते हें – गुह मुझे शृगवेरपुर का राज्य देता हे। यह थोडा त्याग नही हे।

राम को मुस्कराते देखकर गुह ने पूछा – स्वामिन! आप हसते क्यो हैं?

राम ने पेमपूर्वक कहा – मुझे राज्य करना होता तो अवध का राज्य क्यो छोडता?

राम लक्ष्मण और सीता गुह के साथ आगे चले। कुछ दूर चलने पर गगा नदी आई। बिना नौका की सहायता लिये वह पार नही की जा सकती थी। इसलिए राम ने गुह से कहा – क्या तुम हमे पार उतार दोगे?

गुह – आप ससार को पार उतारने वाले महापुरुष ह मे आप को क्या पार उतारूगा? लेकिन आप कहते हे तो आइए। नाव यह हे ही। मे परले पार ले चलता हू।

तीनो को नाव मे बिठाकर गुह ने पार उतार दिया। पार उतर कर राम ने सोचा इसने हमारे ऊपर बडा उपकार किया हे। इसे क्या देकर प्रत्युपकार करू? सीता ने पति के मन की बात जान ली। उन्होने सोचा – मै अपने साथ एक मणि जडी अगूठी लाई हू। इस समय वह दे देना अच्छा होगा। सीता ने अगूठी उतारी और गुह की ओर हाथ बढाकर कहा – यह लो।

पति के लिए सीता सब–कुछ निछावर कर सकती थी। उन्होने अपनी कीमती अगूठी नदी–उतराई मे देते देर नही की। पति के चित्त का सन्तोष हो जाय तो अगूठी की क्या विसात है? आज की स्त्रिया गहनो के लिए पति को चैन नही लेने देती। कई एक कहती है – हम पति का कहना मानने लगे तो पति हमे नगी किये बिना न रहे।

एक कथा मे लिखा है कि सीता ने अपनी अगूठी उतार कर राम को दे दी और दूसरी कथा मे कहा है कि वह स्वय गुह को देने लगी।

गुह ने पूछा – माता! यह क्या है? क्यो दे रही हो?

सीता – तुमने हमारी बडी सेवा की हे। तुम्हारी सेवा के सामने हमारे दवर की सेवा भी फीकी पड जाती हे। फिर हम उनके भाई–भौजाई हैं। लेकिन तुम्हारी सेवा तो एकदम निष्काम है। निष्काम सेवा का बदला नही चुकाया जा सकता। हमारे पास चुकाने को कुछ हे भी नही। लेकिन हमारे मिलने की स्मृति बनाये रखने के लिए मैं यह अगूठी दे रही हू। इसे ले लो।

यह कहकर सीता गुह को अगूठी देने लगी। अगूठी सोने की बनी थी आर उसमे मणि जडी थी। उसकी कितनी कीमत होगी? कहावत है – एक माणक की कीमत तो दूर उसकी दलाली मे ही बारह बादशाहत जाती

है। कहते है – चिन्तामणि रत्न भी माणिक की ही जाति का होता है। गुह ने ऐसा कौन–सा बडा काम कर दिया था? नदी पार ही तो उतारा था और रात–भर पहरा दिया था। उसकी मजदूरी कुछ पैसे ही हो सकते हैं। इस साधारण मजदूरी के बदले मणिमय मुद्रिका गुह को दी जा रही हे।

सीता की बात के उत्तर मे गुह ने जो–कुछ उत्तर दिया उसे जरा युक्तिपूर्वक कहता हू। गुह कहता है – जब एक नाई दूसरे नाई से बाल बनवाता है तो बाल बनाने वाला नाई बनवाने वाले से पैसा नही लेता। नाई नाई का काम निष्काम भाव से करता है। सजातीय से मजदूरी के पैसे लिए जाए तो जाति डूब जाती है। मैं और आप एक ही जाति के हैं। फिर मैं आपसे मजदूरी कैसे लू।

गुह की बात सुनकर लक्ष्मण ने कहा – गुह! तुम भक्ति के वश होकर ऐसा कह रहे हो। फिर भी यह अगूठी लेने मे कोई हर्ज नही। इसे ले लो।

गुह – नही, मै भक्ति के वश ऐसा नही कहता। मेरा कहना वास्तव मे ही सत्य है। मेरा काम पार कराना है और आपका काम भी पार कराना है। मैं नदी मे डूबते को पार कराता हू और आप ससार के महत्त्व मे डूबने वाले को पार कराते हैं। पार कराना दोनो का ही समान कार्य है। इसलिए आप मेरे सजातीय हैं। सजातीय से मजदूरी ले लेने से जाति चली जाती हे। मैं अपनी जाति नहीं खोना चाहता। हा आपको बदला ही देना हो तो किसी दिन मैं ससार की मोह–ममता मे डूबने लगू, तब मुझे उबार लेना। अगूठी दे देने से आपको छुटकारा नही मिलेगा। एक अगूठी के लिए मैं अपना महान कार्य कैसे बिगाड सकता हू ? आप मुझ पर यह कृपा न करे। अगूठी देकर मुझे धक्के न मारे। अगूठी लेने का अर्थ अपने–आप को बेच देना हे – अपने को अलग कर लेना है। मैं यह नही चाहता। आप अपने हाथ से राम के चरण की रज दे दे तो उसे मे अवश्य स्वीकार कर लूगा। उसका आशय यह होगा कि राम ने जो महान् त्याग किया हे उसकी धूल के बराबर मे भी त्याग कर सकू यानी इनके आचरण को मे भी थोडा–सा अपना सकू।

ससार मे सर्वत्र स्वार्थ का साम्राज्य हे। मनुष्य एक हाथ से कुछ दता भी हे तो दूसरे हाथ से उसके बदले चोगुना लेने की आशा रखता हे। निष्काम त्याग करने वाले पुण्यशील विरले ही होते हे। गुह ऐसा ही निस्वार्थ पुरुष हे। इसकी कथा जेन रामायण मे न होने पर भी उपदशप्रद हे। त्याग का सुदर आदर्श इसमे बतलाया गया हे।

भील–कन्या की आवश्यकता

गुह की कथा के अतिरिक्त एक कथा और भी है जो जैन रामायण मे नही है मगर शिक्षापद है। अतएव उस पर विचार कर लेना उचित है।

एक भील–कन्या थी। वह अपने मा–बाप के घर रहती थी। वह जब जगल मे घूमती तो प्रकृति की शोभा देख कर विचार करती – ये वृक्ष और ये पहाड तो मुझे कुछ निराला ही पाठ सिखाते हैं। प्रकृति की रचना पर विचार करते–करते उसके दिल मे दयाभाव उत्पन्न हुआ। वह उत्तरोत्तर बढता ही गया। धीरे–धीरे उसे ईश्वर के नाम की भी धुन लग गई। जिसके दिल मे दया होती है उसे परमात्मा के प्रति प्रीति भी जल्दी हो जाती है। यो तो सभी किसी–न–किसी पकार से परमात्मा का नाम लेते हैं। लेकिन प्रयोजन मे बडा अन्तर होता है। कहा है–

राम नाम सब कोई कहे, ठग ठाकुर अरु चोर।
बिना प्रेम रीझे नही तुलसी नन्दकिशोर।।

ठग भगवान् का नाम लेकर ठगाई करने निकलता है और ठाकुर ठगाई से बचने के लिए उसका नाम लेता है। दोनो का प्रयोजन कितना भिन्न है? दया के साथ परमात्मा को जपना और बात है तथा लोभ–लालच से जपना और बात है।

शबरी मे दया थी इसलिए उसे परमात्मा के नाम की लौ लग गई ओर उसकी परमात्मप्रीति बढती गई। यह दया का ही प्रताप था।

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोडिये, जब लग घट मे प्राण।।

अगर घट मे दया है तो जो भी कार्य किया जायगा अच्छा ही होगा। दया के अभाव मे धर्म की जड ही कट जाती है।

पाच ओर पाच दस होते हैं। कोई गणित का प्रोफेसर किसी से कहने लगा – तुम मूर्ख हो कि पाच और पाच दस मानते हो। हम पढे–लिखे विद्वान है। हम कहते हे – ग्यारह होते हैं। ऐसा कहने वाले प्रोफेसर से आप यही कहेगे कि बिना पढे–लिखे ही भले जो पाच और पाच के योग को ग्यारह तो नही कहते। ज्ञानी कहते हैं कि दया का धर्म भी 'पाच और पाच दस' की तरह सरल है। उसे सभी सहज ही समझ सकते हैं। वह सब के अनुभव की

चीज है। कोई न्यायशास्त्र ओर व्याकरण का पण्डित आकर आप से कहने लगे कि धर्म अहिसामय नही हिसामय है तो आप उसे मान लेगे? नही, आप यही कहेगे कि तुम पण्डित हो करके भी असत्य कहते हो। भारत का भाग्य अच्छा है कि यहा सव लोग अहिसा को ही धर्म मानते हैं। किन्तु स्वार्थी लोग भुलावे मे डालने की कोशिश करते हैं। अगर कोई भुलावे मे डालने की कोशिश करे तो आप यही कहिए कि तुम वृथा कहते हो। धर्म तो अहिसा मे ही है।

दया–धर्म के प्रताप से शबरी का ईश्वर–प्रेम बढता ही गया। वह बडी हुई। मा–बाप ने उनका विवाह करना निश्चित किया। शबरी मन मे सोचने लगी–मा – बाप मेरा विवाह अब किसके साथ करना चाहते हैं? जिसके साथ विवाह होना था उसके साथ मै हृदय से विवाहित हो चुकी हू लेकिन मेरी बात वे मानेगे कैसे? इस प्रकार के विचार से वह शबर–कन्या चिन्ता मे पड गई। उसने परमात्मा से प्रार्थना की – प्रभो! मेरी लाज रखो।

मीरा ने भी ईश्वर को अपना पति बनाया था। उसने कहा था–

ससारी तो सुख काचो
परणी रे रडावू पाछो।
तेने घर सिद जइए
रे मोहन प्यारा सुखडा नी प्रीति लागी रे।।
परणू तो प्रीतम प्यारू
अखड अहिवात म्हारू।
राडवा नो नम टालो,
रे मोहन प्यारा।।
मुखडा नी प्रीति लागी रे ।। मोहन ।।

शबरी भी सोचती थी – क्या कोई ऐसा पति मिल सकता हे जो मुझे कभी राड न बनावे? पहले सुहागिन बनू ओर फिर राड होऊ यह ठीक नही हे। मे विवाह करूगी तो ऐसे के साथ करूगी कि अहिवात अखण्ड रहे।

शबरी के पिता ने उसकी सगाई कर दी। फिर भी शवरी घबराई नही। वह सोचती थी कि मेरे हृदय मे भगवान हे तो सव ठीक ही होगा। अगर पिता ने ब्याह भी दिया तो भी क्या हे? मेरे हृदय मे ता परमात्मा वस रहा ह। मैं उसी की हू।

विवाह का समय आया। वारात आ पहुची। शवर–कन्या क पिता न बारातियो को जिमाने के लिए मुर्गी तीतर आदि पक्षी इकट्ठे कर रख थ। उन सबको एक पीजरे मे रखा था।

रात का समय था। शबरी सोई हुई थी। किसी कारण से सब पक्षी चू–चू करने लगे। पकृति न मालूम किस तरीके से क्या काम करती है? शबरी की नीद खुल गई । पक्षियो का कोलाहल सुन कर शबरी सोचने लगी – पक्षी क्यो चिल्ला रहे हैं? वे क्या कहते हैं? अचानक उसे घ्यान आया – पक्षी शायद कह रहे है कि तू विवाह करती है और हम मारे जाएगे। शबरी उठी और उसने पीजरा खोल दिया। पक्षी अब स्वतन्त्र थे। सब अपनी जान लेकर भागे।

इधर शबरी ने सोचा – मेरे विवाह करने से पहले इतने जीव बन्धन मे पडेगे। अगर विवाह कर लूगी तो न जाने कितने बन्धन मे पडेगे। मैंने इन्हे स्वतन्त्र कर दिया है। मेरे ऊपर जो बीतेगी भुगत लूगी। पर इन्हे स्वतन्त्र करने वाली स्वय बन्धन मे क्यो पडे?

इस पकार विचार कर शबर–कन्या रात्रि मे ही घर से निकल पडी। वह सोचने लगी – लेकिन मैं जाऊगी कहा? जहा जाऊगी, वही से पिता पकड लाएगे। मगर–

समझ सोच रे मित्र। सयाने
आशिक हो फिर रोना क्या रे।
जिन अखियन मे निद्रा गहरी
तकिया और बिछौना क्या रे।
रूखा–सूखा गम का टुकडा
फीका और सलोना क्या रे।
पाया है तो दे ले प्यारे
पाय पाय फिर खोना क्या रे।

शबरी सोचती हे – मन भगवान पर आशिक हुआ तो डर किसका? ये जानवर मोत के नजदीक थे मैंने उनकी पुकार सुनी और उन्हे स्वतन्त्र कर दिया हे। तो मे भी कुछ पुण्य लेकर ही जनमी होऊगी नही तो उन पक्षियो को खोल देने की भावना मुझ मे कहा से आई? इसलिए चलना चाहिए।

कहत कबीर सुनो भाई साधो
शीश दिया फिर रोना क्या रे।

सिर दिया ह तब सोच केसा? चल निकल चल। रात हे अधेरा है यही भाग निकलन का उपयुक्त अवसर है। शबरी निकल चली। उसने निश्चय किया – इन पक्षियो की रक्षा हुई तो मेरी भी रक्षा होगी।

सबेरा हुआ। घर के लोग जागे। देखा पीजरा खाली पडा हे। सोचा – हाय, अनर्थ हो गया! किस पापी ने यह कुकर्म कर डाला! अब मेहमानो का सत्कार कैसे होगा? ऐसे वक्त पर सारी बात बिगड गई!

जब किसी के स्वार्थ मे बाधा पडती है तो वह दूसरो को पापी कहने लगता है। पाप–पुण्य की कसौटी उसका स्वार्थ ही होता है।

थोडी देर बाद पता चला कि कन्या भी गायब है। अब घर वाले बडे चितित हुए। बारात वालो को कैसे मुख दिखलाएगे! क्या कहकर उनसे क्षमा मागेगे? सब इधर–उधर भागे। सब जगह खोज की, कन्या का पता न चला। शबरी जगल मे स्वतन्त्राता के साथ रहने लगी। वह सोचने लगी – मैंने घर त्याग दिया है। सत्सग करने की मेरी तीव्र लालसा है। लेकिन मैं भील के घर जनमी हू! ऋषि मुझे पास भी नहीं फटकने देगे। ऐसी दशा मे मुझे क्या करना चाहिए? ऋषि कुछ भी करे, मुझे सत्सग करना ही है। वह भले मुझे न छूने दे मैं उनकी सेवा दूर से ही करुगी यह विचार कर वह सेवा करने के उद्देश्य से ऋषियो के पास गई। मगर उन्होने पापिनी कह कर उसे दुत्कार दिया। ऐसे समय मे क्रोध आना स्वाभाविक था मगर सच्चा भक्त कभी क्रोध नही करता। वह शान्त रही।

मन मस्त भयो फिर क्या बोले
हीरा पाया गाठ गठियाया,
बार–बार याको क्यो खोले?
ओछी थी जब चढी तराजू,
पूरी हुई अब क्या तोले?
हसा पाया मानसरोवर,
डाबर–डाबर क्यो डोले?
तेरा साहिब तेरे घट मे
बाहर नयना क्यो खोले
मन बोले।।

शबरी सोचने लगी – मेरी समीपता स ऋषियो का धर्म जाता हे ता में दूर ही रहूगी। में क्यो उनका धर्म बिगाडू । मेने भक्ति करन की ठानी ह। वह तो कही भी हो सकती हे? वह पिछली रात म जल्दी ही उठती ओर जिस रास्ते ऋषि आते–जाते थे उस साफ कर दती थी। वह सोचती – यही उनकी भक्ति हे कि उन्हे काटे न लग।

ऋषि ने पहले दिन सबेरे उठ कर देखा कि मार्ग एकदम साफ है। किसी ने झाड–बुहार दिया है। तब वे आपस मे कहने लगे – यह हमारी तपस्या का प्रताप है। हमारी तपस्या के प्रताप से देव आकर मार्ग साफ कर गये हैं। इस प्रकार सभी ऋषि अपनी–अपनी तपस्या का फल बतला कर आपस मे वाद–विवाद करने लगे। शबरी यह जानकर हसी। उसने सोचा – चलो ठीक है। मुझे देव की पदवी मिली। जब ऋषि लोग आपस मे विवाद करने लगे तो एक वृद्ध ऋषि ने कहा – हम कल निर्णय कर लेगे कि किस के तप के प्रताप से कौन देव आकर मार्ग साफ करता है? अभी आप लोग अपना–अपना काम कीजिए।

दूसरे दिन शबरी फिर मार्ग साफ करने लगी। शृगी ऋषि रखवाली कर रहे थे। उन्होने दूसरे ऋषियो से कहा – देख लो, यह देवता मार्ग साफ कर रहा है। आप सब इसे प्रणाम कीजिये। यह हम लोगो से भी ऊचा है।

शृगी ऋषि की बात सुनकर बहुत–से ऋषि कुपित हो गए। कहा एक शबरी और कहा हम ऋषि! हमसे कहते है – शबरी को प्रणाम करे! यह तो कहते नही कि उसने मार्ग अपवित्र कर दिया उलटी उसकी प्रशसा करते है। शृगी प्रायश्चित्त करे अन्यथा उन्हे अलग कर दिया जाय!

शृगी ने शातिपूर्वक कहा – तुम झूठे तपस्वी हो। सच्ची तपस्विनी तो यही है।

ऋषिगण – ऋषियो की निन्दा करने वाला हमारे आश्रम मे नही रह सकता। तुम आश्रम से बाहर निकल जाओ!

शृगी – मिथ्या अभिमान रखने वालो के साथ रहने से कोई लाभ भी नही है। लो मैं जाता हू।

शृगी ऋषि आश्रम से बाहर निकल पडे। उन्होने शबरी से कहा – माता आओ। अगर तुम मुझे अपना पिता समझती हो तो तुम मेरी पुत्री हो।

दोनो कुटी बना कर रहने लगे। शृगी ऋषि शबरी को ज्ञान सुनाने लगे। शबरी कहती – पिता न मालूम किस के साथ मेरा विवाह कर रहे थे। अब आपकी दया से ज्ञान के साथ मेरा विवाह हो गया।

इसी तरह कुछ दिन बीत गये। ऋषि का अतिम समय आ गया। शबरी ने कहा – अब कौन मुझे ज्ञान देगा?

ऋषि ने धीमे स्वर मे कहा – अब तुझे ज्ञान सुनाने की आवश्यकता नही। दशरथ–पुत्र राम वन मे आएगे और तेरे अतिथि बनेगे। इस तरह तेरा कल्याण होगा।

ऋषि का देहान्त हो गया। शबरी को पूर्ण विश्वास था कि ऋषि की अतिम बात अवश्य सत्य होगी। वह सोचने लगी – राम मेरे अतिथि होगे तो मे उनका क्या सत्कार करूगी? यहा बेर के सिवाय ओर क्या हे? बेरो से ही राम का सत्कार करूगी। उसे ध्यान आया – अगर बेर खट्टे हुए तो? खट्टे बेर राम को नहीं देने चाहिए। फिर खट्‌टे–मीठे का निर्णय कैसे हो? अन्त मे उसने कहा – यह निर्णय करने के लिए मेरी जीभ है ही फिर चिन्ता करने की क्या आवश्यकता हे? जीभ से बेर चखती जाऊगी। मीठे–मीठे राम के लिए बचाती जाऊगी और खट्टे–खट्टे मैं खाती जाऊगी।

आज लोग खुद कैसा खाते हें और दूसरो को कैसा देते हें? लोग दूसरो को बुरा देना चाहते हैं ओर आप अच्छा–अच्छा खाना चाहते हैं। घर मे मक्की की घाट बनी हो ओर बच गई हो तो भले खराब हो जाने के डर से दूसरो को दे दे। परन्तु हलवा बना हो तो कोन दे देता है? उसे रखकर ओर फिर गर्म करके खाया जाता हे। ओर एक यह शबरी हें, जो खुद खराब खाकर अच्छा दूसरो के लिए रख रही हे। इसी से राम ने उसके जूठे बेर खाये थे। राम को प्रेम चाहिए था। ओर बेरो की अपेक्षा शबरी के प्रेम मे ही अधिक मिठास था।

शबरी ने सोचा – ऋषि के कथनानुसार राम सीता ओर लक्ष्मण के साथ आएगे। उनके लिए अभी से बेर तोड कर रख लू। कोन जाने किस समय आ जाएगे? तब कहा से लाऊगी? इस प्रकार विचार कर वह मीठे–मीठे बर सग्रह करने लगी।

आप एक भील की कथा सुन चुके ह ओर एक भीलनी की कथा सुन रहे हे। ये उदाहरण अपनी सद्‌बुद्धि जगाने के लिए हे। इनसे स्पष्ट मालूम होता हे कि इन नीच कहलाने वालो मे भी केसी उज्ज्वल भावनाए भरी रहती हें। भील–भीलनी मे प्राय दया नही होती। उन्हे मार–काट की शिक्षा मिलती हे। लेकिन इस भीलनी मे कसी दया थी कि उसने पक्षिया का स्वतन्त्र कर दिया ओर वारात आ जाने पर भी विवाह न करक घर से वाहर निकल आई। जव एक भीलनी भी इतना त्याग कर सकती हे तो आपका कितना त्याग करना चाहिए? अपनी आत्मा से पूछो – ह आत्मन! तू क्या कर रही हे? उस भीलनी न विवाह करना त्याग दिया ता तुम क्या लडकी के वदल म पेसा लना भी नही त्याग सकत? भारतवर्ष का कराडा रुपया सिर्फ तम्बाकू क वदल

बाहर चला जाता है। भारत को उससे क्या लाभ होता है? करोडो का धुआ उड जाता है। बदले मे बीमारिया मिलती है। मुह से दुर्गंध निकलती है। तम्बाकू मे निकोटाइन नामक विष होता है। डाक्टरो के कथनानुसार अगर बीडी मे से तम्बाकू निकाल कर उसका सत्त्व निकाला जाय तो उस सत्त्व के विष से सात मेढक मर सकते हैं। ऐसी विषैली तम्बाकू को भी लोग खा जाते हैं। मनुष्य कुसस्कारो के कारण तम्बाकू त्यागने मे असमर्थ बना हुआ है। इस भीलनी के साथ उसे अपने त्याग का मुकाबला करना चाहिए। फिर उसे जान पडेगा कि भीलनी ऊची है या वह ऊचा है।

शबरी राम के लिए बेर बीन–बान कर इकट्ठे कर रही थी। उसे अगर दु ख था तो यही कि श्रृगी ऋषि ने मुझ पर इतना उपकार किया लेकिन उनके साथी ऋषियो ने उन्हे लाछन लगाया। मेरे और उन ऋषि के पवित्र प्रेम का साक्षी राम के सिवाय और कौन हो सकता है? राम आएगे तो पता चलेगा।

शबरी जिस वन मे रहती थी राम सीता और लक्ष्मण उसी वन मे पहुचे। ऋषियो को राम का आगमन मालूम हुआ। सब ऋषि यह सोचकर प्रसन्न हुए कि राम का सत्सग होगा और उनसे तत्त्व ज्ञान की बाते होगी। उन्होने ससार के राज्य आदि सुखो को त्याग दिया है इसलिए वे महापुरुष हैं। सभी ऋषि सोचने लगे कि राम हमारे आश्रम मे टिकेगे क्योकि हमारी तपस्या बहुत है।

मगर राम वहा पहुचे तो सीधे शबरी की कुटीया पर गये। शबरी मे सत्य का बल था। ऋषि कहने लगे – राम भी भूल गए जो हमारे यहा न आकर भीलनी के यहा गये हैं। आखिर वे भी तो मनुष्य ही ठहरे।

राम शबरी के पास पहुचे। राम को शबरी का हाल कैसे मालूम हुआ यह कौन कह सकता है? मगर सत्य छिपा नही रहता। सत्य मे अद्‌भुत आकर्षण होता हे। उसी आकर्षण से राम शबरी के पास खिचे चले गये। राम के पहुचते ही शबरी हर्ष–विभोर हो गई। जैसे अधे को आख मिलने पर हर्ष होता हे उसी तरह राम के मिलने पर शबरी को हर्ष हुआ। वह भक्ति से विह्वल होकर राम के पैरो मे गिर पडी।

राम ने कहा – 'शबरी तेरा हृदय मुझ से पहले ही मिल चुका है। अब कुछ बिछाने को ला तो बैठे।

शबरी के पास बिछाने को क्या था? उसने कुश की एक चटाई बना रखी थी। वह उठा लाई और बिछा दी। राम उस पर बेठ गए। वे लक्ष्मण से

ऋषि का देहान्त हो गया। शबरी को पूर्ण विश्वास था कि ऋषि की अतिम बात अवश्य सत्य होगी। वह सोचने लगी – राम मेरे अतिथि होगे तो मैं उनका क्या सत्कार करूगी? यहा बेर के सिवाय और क्या है? बेरो से ही राम का सत्कार करूगी। उसे ध्यान आया – अगर बेर खट्टे हुए तो? खट्टे बेर राम को नहीं देने चाहिए। फिर खट्टे–मीठे का निर्णय कैसे हो? अन्त मे उसने कहा – यह निर्णय करने के लिए मेरी जीभ है ही फिर चिन्ता करने की क्या आवश्यकता हे? जीभ से बेर चखती जाऊगी। मीठे–मीठे राम के लिए बचाती जाऊगी और खट्टे–खट्टे मैं खाती जाऊगी।'

आज लोग खुद कैसा खाते हैं और दूसरो को कैसा देते हैं? लोग दूसरो को बुरा देना चाहते है और आप अच्छा–अच्छा खाना चाहते हैं। घर मे मक्की की घाट बनी हो और बच गई हो तो भले खराब हो जाने के डर से दूसरो को दे दे। परन्तु हलवा बना हो तो कौन दे देता हे? उसे रखकर और फिर गर्म करके खाया जाता है। ओर एक यह शबरी है जो खुद खराब खाकर अच्छा दूसरो के लिए रख रही है। इसी से राम ने उसके जूठे बेर खाये थे। राम को प्रेम चाहिए था। ओर बेरो की अपेक्षा शबरी के प्रेम मे ही अधिक मिठास था।

शबरी ने सोचा – ऋषि के कथनानुसार राम सीता ओर लक्ष्मण के साथ आएगे। उनके लिए अभी से बेर तोड कर रख लू। कोन जाने किस समय आ जाएगे? तब कहा से लाऊगी? इस प्रकार विचार कर वह मीठे–मीठे बर सग्रह करने लगी।

आप एक भील की कथा सुन चुके हें ओर एक भीलनी की कथा सुन रहे हे। ये उदाहरण अपनी सद्बुद्धि जगाने के लिए हे। इनसे स्पष्ट मालूम होता हे कि इन नीच कहलाने वालो मे भी केसी उज्ज्वल भावनाए भरी रहती हें। भील–भीलनी मे प्राय दया नही होती। उन्हे मार–काट की शिक्षा मिलती हे। लेकिन इस भीलनी मे कसी दया थी कि उसने पक्षियो का स्वतन्त्र कर दिया ओर बारात आ जाने पर भी विवाह न करके घर स बाहर निकल आई। जब एक भीलनी भी इतना त्याग कर सकती हे तो आपका कितना त्याग करना चाहिए? अपनी आत्मा से पूछो – ह आत्मन! तू क्या कर रही हे? उस भीलनी ने विवाह करना त्याग दिया तो तुम क्या लडकी क बदल म पेसा लेना भी नही त्याग सकते? भारतवर्ष का करोडा रुपया सिर्फ तम्बाकू क बदल

बाहर चला जाता है। भारत को उससे क्या लाभ होता है? करोडो का धुआ उड जाता है। बदले मे बीमारिया मिलती हैं। मुह से दुर्गंध निकलती है। तम्बाकू मे निकोटाइन नामक विष होता है। डाक्टरो के कथनानुसार अगर बीडी मे से तम्बाकू निकाल कर उसका सत्त्व निकाला जाय तो उस सत्त्व के विष से सात मेढक मर सकते हैं। ऐसी विषैली तम्बाकू को भी लोग खा जाते हैं। मनुष्य कुसस्कारो के कारण तम्बाकू त्यागने मे असमर्थ बना हुआ है। इस भीलनी के साथ उसे अपने त्याग का मुकाबला करना चाहिए। फिर उसे जान पडेगा कि भीलनी ऊची है या वह ऊचा है।

शबरी राम के लिए बेर बीन–बान कर इकट्ठे कर रही थी। उसे अगर दु ख था तो यही कि शृगी ऋषि ने मुझ पर इतना उपकार किया लेकिन उनके साथी ऋषियो ने उन्हे लाछन लगाया। मेरे और उन ऋषि के पवित्र प्रेम का साक्षी राम के सिवाय और कौन हो सकता है? राम आएगे तो पता चलेगा।

शबरी जिस वन मे रहती थी राम सीता और लक्ष्मण उसी वन मे पहुचे। ऋषियो को राम का आगमन मालूम हुआ। सब ऋषि यह सोचकर प्रसन्न हुए कि राम का सत्सग होगा और उनसे तत्त्व ज्ञान की बाते होगी। उन्होने ससार के राज्य आदि सुखो को त्याग दिया है इसलिए वे महापुरुष हे। सभी ऋषि सोचने लगे कि राम हमारे आश्रम मे टिकेगे क्योकि हमारी तपस्या बहुत है।

मगर राम वहा पहुचे तो सीधे शबरी की कुटीया पर गये। शबरी मे सत्य का बल था। ऋषि कहने लगे – राम भी भूल गए जो हमारे यहा न आकर भीलनी के यहा गये हैं। आखिर वे भी तो मनुष्य ही ठहरे।

राम शबरी के पास पहुचे। राम को शबरी का हाल केसे मालूम हुआ यह कौन कह सकता है? मगर सत्य छिपा नही रहता। सत्य मे अद्भुत आकर्षण होता है। उसी आकर्षण से राम शबरी के पास खिचे चले गये। राम के पहुचते ही शबरी हर्ष–विभोर हो गई। जेसे अधे को आख मिलने पर हर्ष होता है उसी तरह राम के मिलने पर शबरी को हर्ष हुआ। वह भक्ति से विहल होकर राम के पैरो मे गिर पडी।

राम ने कहा – 'शबरी तेरा हृदय मुझ से पहले ही मिल चुका है। अब कुछ बिछाने को ला तो बैठे।

शबरी के पास बिछाने को क्या था? उसने कुश की एक चटाई बना रखी थी। वह उठा लाई और बिछा दी। राम उस पर बेठ गए। वे लक्ष्मण से

कहने लगे – लक्ष्मण! यह कुश का आसन कितना नर्म है? हम लोग उत्तम से उत्तम बिछौने पर सोये हैं मगर जो आनन्द इसमे है वह उनमे कहा?

लक्ष्मण – इस चटाई के आनन्द के आगे मैं तो अवध का आनन्द भी भूल गया हू।

सीता – जिसके दिये बिछौने से आपने और देवर ने इतना आनन्द माना उस शबरी का भाग्य मेरे भाग्य से भी बडा है। मैं महल मे कितनी तैयारी किया करती थी, लेकिन कभी आपने ऐसी सराहना नहीं की। वास्तव मे शबरी मेरे लिए ईर्ष्या का कारण बन गई है।

शबरी – प्रभो! कुछ खाने को लाऊ?

राम – हा मुझे ऐसी भूख लगी है कि तेरे हाथ के भोजन के बिना मिट नहीं सकती।

शबरी अपने वल्कल वस्त्र मे बेर भर लाई। शबरी के जूठे बेर कौन खाता? मगर वह राम थे। वास्तविकता को समझने वाले और भावना के भूखे थे। बेर खाकर राम कहने लगे – बडे मीठे हैं शबरी। तबीयत प्रसन्न हो गई। बडा आनन्द हुआ।

शबरी के बेरो मे क्या विशेषता थी? ओरो ने राम को मीठा खिलाया होगा और स्वय भी मीठा खाया होगा। लेकिन शबरी ने खट्टे बेर खाये ओर राम के लिये मीठे रखे। इसके सिवाय शबरी का प्रेम नि स्वार्थ था। किसी स्वार्थ से प्रेरित होकर उसने राम का सत्कार नही किया था।

चन्दबाला के उडद के बाकले भी ऐसे ही थे। भगवान् महावीर पाच महीना और पच्चीस दिन से उपवासी थे। फिर भी उन्होंने बाकलो म आनन्द माना। देवो ने उस दान की सराहना की थी।

लक्ष्मण कहने लगे – आपने बेरो की प्रशसा कह बताई लकिन मैं तो इनकी तारीफ ही नहीं कर सकता! इतना कह कर लक्ष्मण न शबरी स कहा – माता और बेर ले आओ। सीताजी ने भी बेर खाये। उन्हे भी मालूम हुआ जेसे भीलनी ने बेरो मे अमृत भर दिया हे।

राम ने कहा – सीता तुमने उत्तमोत्तम भाजन कराये ह मगर पति–पत्नी के सम्बन्ध से। शबरी ने किस सम्बन्ध से बेर खिलाय हैं?

जानत प्रीति रीति रघुराई।

नाते सब हाते करि राखत राम सनेह सगाई

घर गुरुगृह प्रिय सदन सासुरे भई सब जह पहुंनाई।

तब तह कहि शबरी के फलन की रुचिमाधुरी बताई।

जानत रघुराइ।।

राम की पहुनाई कहा न हुई होगी? आज राम नही हैं फिर भी उनकी पहुनाई के नाम पर लाखो खर्च हो जाते हैं तो उस समय कैसी न हुई होगी? मगर जब और जहा उनकी पहुनाई हुई तब वहा उन्होने शबरी के फलो की ही सराहना की।

आज लोग राम को रिझाने के लिए चतुराई से काम लेते हैं। वे सरलता का त्याग कर देते हैं। किन्तु–

चतुराई रीझै नही, महाविचक्षण राम।

राम हृदय की सरलता पर रीझते थे। कपट उन्हे रिझा नहीं सकता था।

ऋषि आलोचना करने लगे – शृगी ऋषि भूला ही था, राम भी भूल गये! कलियुग आ रहा है न? राम को ऋषियो का आश्रम प्यारा नहीं लगा और भीलनी की कुटिया अच्छी लगी। खैर राम गये तो जाने दो। चलो, हम लोग स्नान–भोजन करे।

ऋषि स्नान करके सरोवर पर गये। सरोवर पर नजर पडी तो चकित रह गए। सरोवर का पानी रक्त की तरह लाल–लाल हो गया और उसमे कीडे बिलबिला रहे हे।

काठियावाड के इतिहास की एक बात स्मरण हो आती हे। काठियावाड के एक चारण की दो भैंसे चुराकर चोर ले जा रहे थे। एक काठी सरदार ने चोरो से वे भैसे छुडा ली और अपनी भैंसो के साथ रख ली। चारण को मालूम हुआ कि हमारी भैसे अमुक सरदार के पास हैं। वह कुछ लोगो को साथ लेकर सरदार के पास पहुचा। उसने कहा –हमारी दो भैंसे आपके यहा हें वे हमे दे दीजिए।

भैसे दोनो अच्छी थी। सरदार लालच मे फस गया। उसने कहा –

चारणो ने कहा – हैं आपके यहा हैं। आप अपनी भैंसे हमे देखने दे।

सरदार ने सोचा – इन्हे भैंसे दिखलाई तो पोल खुल जायगी। मैं झूठा ठहरूगा। बदनामी होगी। उसने इधर चारणो को बातो मे लगाए रखा और उधर दोनो भैंसे कटवा डालीं और जमीन मे गडवा दीं। इसके बाद चारणो को अपनी भैंसे दिखला दी।

चारणो को विश्वास नही हुआ। अन्त मे शाप देकर वे वहा से चले। चारणो के शाप से या किसी अज्ञात कारण से सरदार जब दूध खाने बैठता तो दूध मे कीडे बिलबिलाने लगते।

शृगी ऋषि जैसे तपस्वी को लाछन लगाने वाले शबरी जैसी सरल ओर भक्त महिला की अवहेलना करने वाले और अन्तत राम के विरुद्ध विचार करने वाले उन ऋषियो के लिए सरोवर का जल अगर रक्तवत् हो गया और उसमे कीडे बिलबिलाने लगे तो क्या आश्चर्य है?

सरोवर के स्वच्छ जल की यह दशा देखकर एक ऋषि ने कहा – हमने पहले ही कहा था कि शृगी और शबरी को दोष मत लगाओ। मगर तुम लोग नहीं माने। यह उसी का परिणाम है।

दूसरो ने कहा – जो हुआ सो हुआ। बीती बात की आलोचना करना वृथ हे। अब वर्तमान कर्तव्य का विचार करना चाहिए।

अन्त मे ऋषियो ने स्थिर किया कि राम को यहा लाना चाहिए। ऋषि मिलकर राम के पास पहुचे ओर निवेदन किया – महाराज पधारो। सरोवर का जल बिगड गया हे। उसमे कीडे कुलबुला रहे हैं। हमारा सव काम रुका हुआ हे। आप वहा पधारो ओर जल को शुद्ध करो।

राम ने कहा – मेरे चलने से कोई लाभ नही होगा। आप लोग इसी शबरी के स्नान का जल ले जाइए ओर सरोवर मे छिडक दीजिए। जल शुद्ध हो जाएगा।

ऋषि दग रह गये। साचने लगे – हम शबरी को पतिता समझते ह ओर राम ऐसा कह रहे हे।

शवरी ने कहा – महाराज। आप मेरे ऊपर वडा वाझा डाल रहे ह। में पतिता अपने स्नान का जल इन ऋषियो क हाथ म केसे द सकती हू? आप ही पधारिए।

राम – माया म फस लोग वास्तविक वात नही समझ सकत। मुझ तुम्हारे वीने वेर खाने म जो आनन्द अनुभव हुआ हे वह दुर्लभ ह। य[illegible]

तुम्हारी पवित्र भावना का पताप है। तुम पवित्रा हो। अपने स्नान का जल इन ऋषियो को देकर सरोवर का जल शुद्ध कर दो।

शबरी – वैसे तो मै आपकी आज्ञा नही लाघ सकती आप जो कहे, वह मुझे शिरोधार्य है परन्तु मुझे अपने स्नान का जल ऋषियो के हाथ मे देना उचित मालूम नही होता। अगर आपका आदेश हो तो मैं स्वय चली जाऊ?

राम ने अनुमति दे दी। शबरी ऋषियो के साथ सरोवर पर पहुची। जैसे ही सरोवर मे उसने अपना पाव रखा कि जल निर्मल हो गया। यह चमत्कार देखकर ऋषियो की आखे खुली। वे अपने किये पर पछताने लगे। कहने लगे – ओह! हमने वृथा ही इस सती की अवहेलना की।

शबरी लौट कर राम के पास आई। उसने कहा – महाराज! मैं अब समझ गई। मुझे इस विचार से बहुत कष्ट होता था कि मेरे कारण शृगी ऋषि को कलक सहना पडा। आपने मेरा यह दु ख आज दूर कर दिया है। शृगी ऋषि मुझे सिखा गए हैं–

ग्रथ पथ सब जगत के बात बतावत तीन।
राम हृदय मन मे दया तन सेवा मे लीन।।

अर्थात हृदय मे राम मन मे दया और तन सेवा मे लगा रहे। बस, इतनी ही बात मैं जानती हू। इससे अधिक कुछ नही जानती। मेरा विवाह होने वाला था। विवाह के भोज के लिए पिता ने पक्षी पकडे थे। वे तडफडा रहे थे। मुझसे नही रहा गया और उन्हे मैंने मुक्त कर दिया।

मैने सोचा – बेचारे पक्षी बिना किसी अपराध के मारे जाएगे और मैं इनकी हत्या मे निमित्त बनूगी।

भगवान अरिष्टनेमि के विवाह के अवसर पर भी मारे जाने के लिए बहुत से पशु एकत्र किए गए थे। उन्हे देखकर भगवान् ने कहा था – 'मेरे निमित्त से इतने जीवो की हिसा हो यह बात मेरे लिए परलोक मे शातिदायक नही हो सकती। क्या हिसा होने से परमात्मा का भी परलोक बिगडता था? नही लेकिन उन्होने जगत के जीवो को समझाने के लिए ऐसा कहा है।

शबरी के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि लोग क्रोध ईर्ष्या या अभिमान के कारण चाहे जिसे कलक लगा देते हैं परन्तु सत्य अन्त मे सत्य ही ठहरता है। झूठ अधिक समय तक नही ठहर सकता।

जब शबरी ने तालाब का जल निर्मल कर दिया तो उसका सत्य [illegible] रूप मे चमक उठा। उसकी झोपडी तीर्थस्थान के समान बन गई। सब

ऋषि उसके आश्रम मे आकर कहने लगे – हम आज ही राम का मर्म समझ पाये हैं। हम लोग जप–तप करते थे पर यह नहीं जानते थे कि राम किस बात से प्रसन्न होते है? आज यह बात समझ गए। वास्तव मे यह सरोवर क्या बिगडा था, हमारा दिमाग ही बिगडा था। हमने शृंगी ऋषि का अपवाद किया यह कितने खेद की बात है।

असल मे हृदय मे खराबी आने पर ही सब खराबिया होती हैं। हृदय अच्छा है तो सब अच्छा दिखाई देता है। हृदय बुरा हो तो सभी जगह बुराई नजर आती है। पाप के कारण ही उस ठाकुर के सामने दूध मे कीडे पड जाते थे। इसी प्रकार पाप से ही सब बिगाड होता है। हृदय की शुद्धि होने पर पाप नहीं होगा और पाप न होने पर किसी प्रकार का विकार न होगा। हृदय–शुद्धि की परीक्षा है। हृदय मे राम, मन मे दया और तन मे सेवा होना। शबरी के मन मे दया उपजी थी तो उसे राम मिल गये। लोग 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति की ऊची–ऊची बाते बघारते हैं किन्तु दया के अभाव मे वे सब थोथी है। सर्वप्रथम दया सीखना आवश्यक है। ऐसा न हो कि–

काट कर औरो की गर्दन खैर अपनी मागता।
दो जगह इन्साफ को अहले वफा के वास्ते।।

अरे दूसरे की गर्दन काट कर अपनी कुशल मागने वाले! न्याय को भी तू कुछ स्थान दे। दूसरो के प्रति निष्ठुर व्यवहार करने वाला सकुशल केसे रह सकता है? सकुशल तो वही रहेगा जो दूसरो की अकुशल नही करेगा। शबरी ने दूसरो की कुशल चाही, पक्षियो की रक्षा की तो देखो उसे राम मिले।

शबरी की कथा जेन रामायण मे नही हे तथापि दया ओर प्रेम की उससे अच्छी शिक्षा मिलती हे। इस कथा से पाठक ओर भी अनेक सद्गुण सीख सकते हें। इसी कारण उसका यहा व्याख्यान किया गया हे।

यहा इतना स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक हे कि तुलसी–रामायण मे शवरी की कथा आगे चल कर हे। मगर मेंने यहा उसका विवेचन कर दिया हे। यह पहले ही कहा जा चुका हे कि सम्पूर्ण रामायण वाचन क लिए पर्याप्त समय नहीं हे। अतएव अवसर देखकर ओर उपयोगी समझ कर ही यहा उसका उल्लेख कर दिया हे। मेरा मुख्य लक्ष्य रामायण वाचना नहीं हे रामायण से मिलने वाली शिक्षा को प्रकट करना हे। शिक्षा का स्पष्ट करन क लिए घटनाआ का आधार लना आवश्यक हे ओर इसीलिए अमुक–अमुक घटनाए भी वाच रहा हू।

राम–सीता का चर्चा–विनोद

राम ने तृष्णा जीत ली थी। तृष्णा न जीती होती तो अयोध्या का राज्य त्याग कर वन मे क्यो आते? सारे जगत् को एक भाव से क्यो देखते? राज्य त्यागने पर भी अगर उनमे तृष्णा होती तो ऋषियो का आश्रम छोडकर शबरी के यहा न जाते। तृष्णा वाले को वही व्यक्ति प्रिय लगता है जिससे उसकी तृष्णा की पूर्ति हो सकती हो। मक्खी को अशुचि प्रिय लगती है। वह अशुचि की ओर दोड जाती है चन्दन की ओर नहीं जाती। भ्रमर फूल के पास ही जाता है। इस प्रकार तृष्णावान् उसी से मिलता है, जिससे तृष्णा की पूर्ति हो। तृष्णा–विजयी ऐसा भेदभाव नही रखता। शबरी ऊपर से कैसी भी रही हो राम उसके हृदय को जानते थे। इसलिये वे उसके पास पहुचे।

शबरी के वहा का दृश्य देखकर सीता सोचने लगी – अगर मैं अयोध्या मे ही रह जाती तो शबरी जैसी पवित्रात्मा से मेरी भेट कैसे होती? रानिया तो बहुत मिलती, मगर शबरी तो वन मे ही मिल सकती थी। इसने मुझे भी बोध दिया है।

राम लक्ष्मण और सीता के साथ शबरी से विदा लेकर आगे चले। शबरी ने किस प्रकार उनकी अभ्यर्थना–प्रार्थना की और किस प्रकार राम ने उसे ज्ञान दिया, यह बात बहुत लम्बी है। उसका उल्लेख नहीं किया जा सकता। राम आगे बढे। ऋषियो ने अपने आश्रम मे चलने की प्रार्थना की। राम ने उन्हे कहा 'जिस शबरी के पैर के स्पर्श से सरोवर का जल निर्मल हो गया वह शबरी यहा है। उसका निवास–स्थान तीर्थधाम है। आप लोग तपस्वी हैं लोक–मूढताओ का परित्याग करे। लोक–मूढताओ का त्याग किये बिना अलौकिक सिद्धि नही मिल सकती।

इस प्रकार राम आगे चले। राम और लक्ष्मण के बीच सीता ऐसी मालूम होती थी जैसे परमात्मा और आत्मा के बीच माया हो अथवा चन्द्र और बुध के बीच रोहिणी हो। कवियो ने ऐसी अनेक उत्प्रेक्षाए की हैं।

सीता चलती–चलती कहती – नाथ देखिए वन का यह दृश्य कितना भव्य और सुहावना है। आप मुझे अयोध्या मे ही रख आना चाहते थे। मै राजमहल के कारागार मे ही कैद रहती तो ये अद्‌भुत दृश्य कहा देखने को मिलते? वन मे मुझे जो आनन्दानुभव हो रहा है वह सुषमा के भव मे तो क्या अनके भवो मे भी नही मिला है।

इस प्रकार की बाते करते–करते तीनो चले जा रहे हैं। सीता ने फिर कहा – नाथ भाग्य बडा है या उद्योग? अगर भाग्य बडा है तो क्या वह

उद्योग के बिना फल सकता हे? अगर उद्योग बडा है तो क्या वह भाग्य के बिना सफल हो सकता है?

राम ने सीता के प्रश्नो का प्रेमपूर्वक उत्तर दिया। दोनो मे खूब चर्चा हुई। लक्ष्मण ने भी उसमे भाग लिया। अन्त मे राम ने कहा – नाम कुछ भी हो वास्तविकता देखनी चाहिये। तुम्हारे साथ तो दोनो है – उद्योग भी है और भाग्य भी है। मेरा भाग्य ओर लक्ष्मण का उद्योग तुम्हारा साथी है। दोनो के सहयोग से सव काम होते हैं। भाग्य के भरोसे रहकर उद्योग को छोड वैठना उचित नहीं हे और भाग्य का निर्माण उद्योग से ही होता है।

सीता ने कहा – भाग्य आपका नहीं मेरा बडा है। लक्ष्मण के भाग्य से भी मेरा भाग्य बडा है। आपके साथ आने मे लक्ष्मण को कोई कठिनाई नही पडी। इन्हे किसी ने रोकने का प्रयत्न नही किया लेकिन मुझे रोकने के लिए क्या कम प्रयत्न हुआ था? फिर भी मैं आपके साथ यहा आ सकी। इसी से जानती हू कि मेरा भाग्य बडा हे।

राम – प्रिये! जो माया के सुख देखकर परमार्थ को भूल जाते हैं वे एक तरह से भाग्य को ही भूल जाते हैं। भाग्य का सदुपयोग करने वाले वे हैं जो कल्पित सुखो के भुलावे मे न पडकर पारमार्थिक कार्य करते हें अर्थात धर्म को न भूलने वाला ही भाग्य का उपयोग करता हे। सीते! कदाचित तुम्हारा भाग्य बडा हे तो मेरा ओर लक्ष्मण का उद्योग बडा है। हम लोग वन मे न आते तो तुम्हारा भाग्य क्या करता?

इस प्रकार मनोरजन की वाते करते–करते तीनो चले जा रहे हें। कुछ आगे चलने पर सीता ने दो वृक्ष देखकर कहा – 'नाथ! इन दो वृक्षो को देखो। दोनो साथ हें दोनो की ऊचाई भी वरावर हे। लेकिन एक फल रहा हे ओर दूसरा झड रहा हे। यह अन्तर क्यो हे?

आप महुए ओर आम के वृक्षो को देखगे तो पता चलेगा कि जव महुए के पत्ते झडते हें तव आम के पत्ते आते हे। ऐसी ही कोई वात इन वृक्षा म भी होगी।

सीता के प्रश्न के उत्तर मे राम ने कहा – प्रिय! य दाना वृक्ष सरार का स्वरूप वतलाते हें। मनुष्यलाक की ऐसी ही रचना हे। यहा एक गाता हे आर दूसरा राता हे। एक झाड दूसरे क सूख जाने पर राता नही हे। राग ता अपनी भी लक्ष्मी गवा वैठे। ढाक की एक डाली दावा स जल जाती ह दूसरी बच जाती है। वची हुई डाली जली हुई डाली की सहानुभूति म अपन का सुखा नही डालती। वह फलती है फूलती हे और वृक्ष की शाभा वढाती ह।

मगर वृक्ष मे जो बुराई नही है वह मनुष्य मे पाई जाती है। मनुष्य पर जब पाकृतिक दु ख आता है तो वह एक और नया दु ख चिन्ता के द्वारा उत्पन्न कर लेता है। सारा ससार लोभ और मोह से व्याप्त है। लेकिन ज्ञानी पुरुष इन वृक्षो को देखकर किसी भी समय चिन्ता मे नही पडते।

सीता कहने लगी – सामने के दो वृक्षो को देखू या आपको और देवरजी को देखू? आज आप राजसी वैभव रूपी फल–फूलो से सम्पन्न होते, लेकिन आपने उसकी परवाह नही की। आपके कहने से मेरी समझ मे भी आ गया कि ससार का नियम ही ऐसा है। इसी से मै आपके साथ आई हू। इस वृक्ष के पत्ते झड गये है किन्तु यह निर्जीव नही है। इसमे ऊपर से नीचे तक जीवनी–शक्ति है। अतएव इसमे नये पत्ते आएगे। इसी प्रकार आप मे असीम शक्ति है। आपको भी वह वैभव फिर मिले बिना नही रह सकता।

दाह नही ऋतुराज है तज तरुवर मत भूल।
बिना दिये किम पाइए नवपल्लव फल–फूल।।

दाह से भी पत्ते झड जाते हैं और बसन्त ऋतु आने पर भी पतझड होता है। मगर दो प्रकार से पत्ते झडने मे कुछ अन्तर है या नही? बहुत अन्तर है। सत्कार्य मे दान देना बसन्त मे पत्ते त्यागने के समान है। ऐसा करने से नवीन पत्ते आते है। जो सत्कार्य मे नही देता उसकी सम्पत्ति पर डाका, चोरी आदि मे से किसी का पाला पडता ही है।

सीता कहती है – प्रभो! इस वृक्ष की तरह आपके लिए भी यह बसन्त है। थोडे ही दिनो मे आप फिर हरे हो जाएगे।

राम कुछ और आगे चले। सीता को वहा एक पेड दिखाई दिया जो एकदम झखाड हो गया था। सीता ने कहा – देखिए, इसके नीचे फूल भी पडे है ओर शूल भी पडे हैं।

राम – सीते! यह ससार इस झखाड के समान ही हे। यहा शूल भी है फूल भी हे! नजर चूकी ओर शूल पर पाव पडा तो वह चुभे बिना नही रहता। गति मे सावधानी रही तो फूलो पर पैर पडेगा। आनन्द होगा।

यह ससार झाड अरु झाखर आग लगे जल जाना है।
रहना नही देश विराना है यह ससार काटन की बाडी।
उलझ –उलझ मर जाना है रहना विराना है।

यह सत्य इतना सर्वव्यापी हे कि राम ओर सीता पर भी घटित होता है। ऐसी दशा मे इससे ओर कोई कैसे छुटकारा पा सकता हे।

राम चलते–चलते ओर आगे पहुचे। परस्पर वार्तालाप करते हुए और साथ ही तत्त्व की बातो पर विचार करते हुए आनन्द के साथ तीनो चले जा रहे थे। उनके आनन्द का क्या वर्णन किया जा सकता है। एक जगह घने वृक्षो मे मधु–मक्खियो के छत्ते लगे थे। उन्हे देखकर राम ने कहा – प्रिये यह देखो।

सीता – यह क्या है?

राम – इस वन मे सैकडो घडे रस से भरे हुए पेडो पर लटक रहे है, उनमे से कुछ ये है। ये मधु–मक्खियो की कलात्मक कृतिआ हे।

सीता – ओह! मधु–मक्खिया की यह कृति सराहनीय है। जब क्षुद्र मक्षिकाए ऐसा सुन्दर कार्य कर सकती हैं तो मनुष्यो को कितने सुन्दर कार्य करने चाहिए?

मानवीय भौतिक विज्ञान ने ससार को जो देन दी है उससे मनुष्य की मनुष्यता ही खतरे मे पड रही है। इस विज्ञान के द्वारा मनुष्य–समाज का सहार सरल हो गया हे कि बात–बात मे हजारो–लाखो निरपराध मनुष्यो की हत्या कर डालना साधारण बात हो गई है। मगर मधु–मक्खियो का विज्ञान ओर उनकी कला ऐसी नही है। उससे किसी का अहित नही हित ही होता हे। उनके विज्ञान को देखकर मनुष्य को दग रह जाना पडता हे। मक्खिया पहले छत्ता तेयार करती हे। छत्ता बनाने मे ऐसी बुद्धिमत्ता से काम लिया जाता हे कि छत्ते के सारे खाने बराबर ओर एक–से होते हें। न कोई छोटा न बडा। फिर उन खानो मे मोम लगाती हे जिससे शहद गिर न जाय। मोम इतना कम लगाती हे कि जिससे कम लग ही नही सकता या जिसके बिना काम ही नही चल सकता। सोने पर मुलम्मा लगाने वाले कारीगर ने किसी से यह कला सीखी होगी मगर ये मक्खिया किस गुरू के पास सीखन गई हें? मोम लगा चुकने पर मक्खिया शहद लाना आरम्भ करती हे। वे पुष्प–विज्ञान मे वडी पण्डिता होती हें। उन्हे मालूम रहता हे कि किस–किस फूल म कसा–कंसा रस होता हे। रस लाने के लिए उनके पास वही एक ओजार हे जिससे उन्होंने छत्ता वनाया ओर मोम लगाया था। दूसरा ओजार उनक पास नही ह। एक ही से वे सब काम लेती ह। कम–से–कम मोम लगा कर वे अधिक–से–अधिक रस भरती हे। इस तरह की क्रिया करक वे रस का सचय करती ह। उसे स्वय खाती नही ओर दूसरा लेने आता हे तो अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ उसका सामना करती ह। उनका तेयार किया हुआ शहद ऐसा होता ह कि ससार का कोई भी पकवान उसकी समता नहीं कर सकता।

शहद की मक्खी के विषय मे एक उक्ति प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि एक बार राजा भोज दरबार मे बैठे थे। इतने मे उनके सामने एक मक्खी आई । वह दोनो पाव मल कर सिर पर लगाने लगी। भोज ने यह देखकर कहा – जान पडता है, मक्खी कोई फरियाद करने आई है। क्या आप मे से कोई बता सकता है कि यह क्या फरियाद कर रही है?

भोज का प्रश्न सुनकर दरबारी दग रह गए। तब दरबार के एक कवि ने कहा – यह मक्खी मुझ से मिलकर आपके पास आई है। मुझसे इसने एक फरियाद की थी। मैने कहा कि मेरे किये कुछ न होगा। तुम राजा के पास जाओ उनसे फरियाद करो।

राजा ने पूछा – इसकी फरियाद क्या है?

कवि ने कहा–

देय भोज! धन सदा सुकृतिभिर्यत् संचित सर्वदा,
श्रीकर्णस्य बलेश्च विक्रमपतेरद्यापि कीर्ति स्थित।।
अस्माक मधु दानभोगरहित नष्ट चिरात् सचितं,
निर्वेदादिव पाणिपायुगल घर्षत्यहो मक्षिका।।

यह मक्खी कहती है – महाराज भोज! सचित धन को सुकृत मे लगाओ। सचय ही सचय करने से क्या लाभ होगा? दान के कारण ही बलि कर्ण विकम आदि प्रसिद्ध हैं। आज वे नही हैं, फिर भी उनकी कीर्ति बनी हुई है। सचय करने से उनकी कीर्ति नहीं फैली । अगर तुम सचय ही करते रहे और दिया कुछ नही तो वह नतीजा भोगना पडेगा जो मुझे भोगना पडा। जो बात बिन्दु मे है वही सिन्धु मे है। मैंने बडी चतुराई से मधु सचित किया। न दान दिया न खाया। अन्त मे लूटने वाले लूट कर ले गये और मैं हाथ मलती ही रह गई।

माखी होय मधु कीधु न खाधु न दान दीधु।
लूटनारा लूटी लीधु रे
पामर प्राणी! चेते तो चेतावु तोने रे।

इतिहास मे भी एक ऐसी ही घटना का उल्लेख है। कहते हैं कि जब देवगिरि का किला टूटा तो उसमे से बहुत द्रव्य निकला। शायद छह सौ मन मोती डेढ सो मन हीरे और दस हजार मन चादी तौलकर मुसलमानो को सधि मे देनी पडी। अगर यह सत्य हे तो देवगिरि का सग्रह कितना विशाल रहा होगा? क्या सग्रहकर्ता ने कभी सोचा होगा कि यह सग्रह किसी दिन लुटेरो के हाथ लग जायगा? मगर लुटेरे आये ओर लूटकर चलते बने।

मक्खी के पास मधु था इसलिए मधु लूटा गया तो क्या आपकी धन–सम्पत्ति नही लुटेगी? धन–सम्पत्ति के लुटेरो की क्या कमी हे? पृथ्वी का एक ही कम्पन करोडो का द्रव्य हडप कर जाता हे। आग की लपटे देखते–देखते लाखो की पूजी स्वाहा कर डालती हैं। नदी की बाढ भनायक सर्पिणी के समान सरपट भागती आती है। पल–भर मे प्रलय मचा देती है। सब प्राकृतिक उपद्रव हैं। इनके अतिरिक्त चोर डकैत, लुटेरे गठकटे आदि भी कम नही। अपनी सम्पत्ति को किस–किस से बचाने की कोशिश करोगे? कदाचित् भाग्य तेज हुआ और इन सब से धन बचा भी लिया तो मृत्यु के सामने आने पर क्या उपाय करोगे? उस समय किसी की सहायता काम नही आएगी। पाप से कमाई सारी पूजी पाई–पाई त्यागनी होगी और सिर्फ पाप–पुण्य लेकर प्रस्थान करना पडेगा। जिनके पास सम्पत्ति नही है उनके पास भी शरीर तो है ही। वह भी एक दिन त्यागना पडेगा। अतएव कल्याण इसी मे हे कि पुण्य के उदय से जो–कुछ भी आर्थिक शारीरिक या बौद्धिक वेभव आपको मिला है, उसे परोपकार के पुनीत कार्य मे व्यय कर दो। शरीर का मास भी लुटने को है जवानी भी लुटने को है । इसे सुकृत मे लगाओ। गरीब ओर अमीर – सभी को समझ लेना हे कि केवल सग्रह करने मे लगने का परिणाम दिवालिया बनना हे। बहिनो को सोना बहुत प्रिय लगता हे। मगर सोना पहनने से क्या जल्दी स्वर्ग मिलता हे? वर्तमान छोटा ओर भविष्य बहुत लम्बा हे। तुम्हे भविष्य से मुकाबिला करना हे। इसलिए वर्तमान से आगे भी देखो ओर भविष्य की तेयारी करो।

राम की बात सुनकर सीता ने कहा – नाथ! आपने ठीक विचारा कि स्वेच्छापूर्वक राज्य त्याग दिया। हमे इन मक्खियो से शिक्षा लेनी चाहिए। मक्खिया मधु के द्वारा दूसरो का मुह मीठा करती हे मनुष्य को कम–से–कम मीठी बोली तो बोलनी चाहिए।

तुलसी मीठे वचन ते सुख उपजत चहु ओर।
वशीकरण इक मत्र है तज दे वचन कठोर।।

दु ख पर विजय पा लेने के कारण राम ओर सीता क लिए वन भी केसा आनन्दप्रद हो गया ! सीता वन का अवध से भी अधिक सुखद मान रही ह। वह कहती हे – मेर लिए वन क्रीडारथल बन गया । मेने महल मे जा सुख नही पाया था वह यहा मिल रहा हे।

बाह्य पदार्थो म न सुख ह न दु ख हे। सुख–दु ख ता अधिकाशत मन की परिणति पर निर्भर ह। यही कारण हे कि एक का जिस वस्तु म सुख

का स्वाद आता है उसी मे दूसरे को दु ख की गध आती है। एक ही वस्तु किसी समय आनन्ददायक पतीत होती है तो वही वस्तु दूसरे समय उसी को दुखदाई जान पडने लगती है। यह सब मन की सवेदना मात्र है। मन को समझा लेने पर स्थिति और ही हो जाती है। फिर प्रत्येक परिस्थिति मे आनन्द–ही–आनन्द दीखता है।

सीता कहती है – 'प्रभो! बगीचे मे माली जल सीच–सीच कर थक जाते हैं फिर भी वहा वृक्ष इतने बडे नही होते और यहा के पेड, जरा देखिए तो सही कितने बडे–बडे है! इन्हे यहा कौन सीचने आता है?

पजा के दुर्भाग्य से आज जगल कटते जा रहे है, मानो प्रजा का भाग्य ही कट रहा है। वैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य का जगल के साथ कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस बात पर विचार किया जाय तो जगल का महत्त्व मालूम होगा!

सीता की बात सुनकर राम ने कहा – प्रिय! कभी–कभी मनुष्य यह विचार कर रोता है कि हाय अब मेरा क्या होगा? अगर वह इन वृक्षो को देखे तो उसे पता चलेगा कि मेरा भाग्य कुछ ऐसा–वैसा नहीं है। इन वृक्षों को कौन सीचता है? इनकी चोटी तक पानी कौन पहुचाता है? फिर भी ये हरे–भरे हैं! इनसे शिक्षा मिलती हे कि जो जिस परिस्थिति मे है उसका जीवन उसी परिस्थिति मे सुखपूर्वक बीत सकता है। आवश्यकता धैर्य की है।

कुछ और आगे चलकर सीता कहने लगी – नाथ! जिन हाथीदातो के लिए मारे–मारे फिरते हैं और जिन मोतियो के लिए आपस मे लडते–झगडते हे वे हाथीदात और मोती तो यहा बिखरे पडे हैं। यहा इनकी कोई पूछ ही नही हे। मै जब घर पर थी तो इन चीजो पर बडी ममता थी। आज इनकी कोई कीमत ही नही जान पडती।

काल–चक्र के तीसरे और चौथे आरे के वर्णन मे बतलाया गया है कि उस समय हीरा पन्ना आदि रत्न ककरो की तरह पडे रहते थे। उस समय के लोगो को उनकी परवाह नही थी। बात यह है कि वे लालची नही थे। आज जहा लालच बढ गया है वहा वस्तु की कमी हे। जहा लालच नही वहा किसी वस्तु की कमी ही नही।

वन वासियो की श्रद्धाभक्ति

तीनो जने और आगे बढे। इनके वन मे आने की खबर सब ओर फेल [illegible]। जिस गाम के समीप ये पहुचते नर–नारिया झुण्ड–के–झुण्ड इकट्ठे [illegible]

हो जाते थे। सीता जब थकी मालूम होती तो राम लक्ष्मण से कहते – भाई यह वट–वृक्ष अच्छा है। कुछ देर ठहर जाओ। राम की बात सुनकर लक्ष्मण समझ जाते कि जानकी थक गई है।

लक्ष्मण दौड कर पत्ते आदि ले आते बिछा देते और उस पर विराजने के लिए निवेदन करते। जहा यह त्रिमूर्ति बैठ जाती वहा के नर–नारी अपने भाग्य की सराहना करने लगते। वे कहते – अपने भाग्य बडे अच्छे हैं कि राम लक्ष्मण ओर सीता यहा विराजे हैं और हमे उनके दर्शन करने का अधिक अवसर मिल गया है। ग्रामीण लोग खाली हाथ आना अनुचित समझते थे। अत आते समय कोई जल का भरा लोटा लाता कोई फल लाता कोई मेवा लाता, कोई और कुछ लाता। इस प्रकार कुछ–न–कुछ भेट लेकर जनता इनके सामने आती और बडी श्रद्धा–भक्ति–प्रीति के साथ इन्हे अर्पित करती थी। लोगो का आतरिक प्रेम देखकर राम कहते – 'सीते! क्या इनका आतिथ्य स्वीकार नहीं करोगी? तब सीता कहती – आतिथ्य तो सब अवध मे छोडकर ही हम यहा आये हैं। फल जगल मे ही बहुत हैं। गाव का तो पानी पी लेना ही पर्याप्त है।

सीता की बात से राम समझ जाते कि इसे प्यास लगी है। तब राम ग्रामीणो से कहते – आप लोग ओर कुछ देने का कष्ट न करे केवल जल दे दीजिए। जब लोग न मानते ओर आग्रह करते तो राम उन्हे समझा देते कि जिस समय जिस वस्तु की आवश्यकता हो उस समय वही वस्तु देनी–लेनी चाहिए। इस प्रकार कहकर सिर्फ जल ग्रहण कर लेते थे। उस समय कुछ लोग पछताने भी लगने कि क्या पता था राम केवल जल ही लेगे अन्यथा हम भी जल ही लाते।

ग्रामीण स्त्रियॉ राम लक्ष्मण ओर सीता को देखकर आपस मे कहत लगती – दोनो भाई–भाई जान पडते हे। केसी सलोनी जोडी हे। य किसक पुत्र हे? इनके साथ यह स्त्री कोन हे? दवागना ओर अप्सरा का नाम सुना करते थे पर इन्ह देखकर तो यही मालूम होता हे कि वे भी इनसे ज्यादा सुन्दर होगी? कोई–कोई कहती – ये तीना हे कोन? कही दव–माया ता नही ह। हमे छलने ता नही आये हे? चलो इन देवी से ही पूछ ल। इस प्रकार विचार कर स्त्रिया सकुचाती हुई सीता क पास आती। उनसे कहती – हम गाव की रहने वाली गवार स्त्रिया ह। हमे बालना नही आता। हम नही जानती कि बड़ के साथ किस तरह बोलना चाहिए। इसलिए आप हमारा अपराध क्षमा कर। हम यह जानना चाहती हैं कि ये दाना आपक कान हे? आप तीना कहा रहत ह आर कहा जा रह ह?

सीता के साथ बडी–बडी रानिया भी बात करने का साहस नही कर सकती थी लेकिन इन स्त्रियो को बात करती देखकर सीता सोचती – मैं अभी तक कैसे बन्धन मे थी? मैं इन भोली बहिनो से बातचीत भी नही कर सकती थी। अच्छा हुआ मैं पति के साथ वन मे आई और एक बडे बन्धन से छूट गई। आज दिल खोलकर दूसरो से बात कर सकती हू और दूसरो की सुन सकती हू। छोटे–बडे का कल्पित भेद समाप्त हो गया यह बडे आनन्द की बात है।

स्त्रियो के पश्न का सीता उत्तर देती – यह जो छोटे है मेरे देवर है। महाराज दशरथ के पुत्र और महारानी सुमित्रा के आत्मज हैं। स्त्रिया पूछती – और यह दूसरे कौन हैं तब सीता स्त्री–स्वभाव के अनुसार कुछ लजा जाती। कहती – ये मेरे देवर के बडे भाई हैं। स्त्रिया समझ लेती – तब तो यही राम है और आप सीताजी होगी? हा मेरा नाम सीता है – तुम्हारा अन्दाज सही है।

यह जानकर स्त्रियो के हर्ष का पार न रहता। वे आपस मे कहने लगती – अरी सखियो! हमारे बडे भाग्य है कि सीताजी के साथ राम और लक्ष्मण यहा पधारे है। अपनी आखे सार्थक कर लो। जनम सुधार लो। उनके दर्शन कर लो।

कोई स्त्री सीता की सुकुमारता और राम–लक्ष्मण की सुन्दरता देखकर कहती – इनके माता–पिता ने इन्हे वन मे भेजने की हिम्मत कैसे की होगी? उनकी छाती कितनी कठोर होगी? जब ये यहा से रवाना होगे तो हमको भी दु ख होगा। फिर इनके माता–पिता ने इन्हे कैसे रवाना किया होगा? इनका विछोह उन्होने कैसे सहा होगा?

दूसरी कहती – बडे आदमियो का धैर्य भी बडा होता हे। उनमे बडा धैर्य न होता तो हमे इनके दर्शन का सोभाग्य कैसे मिलता?

तीसरी कहती – इनकी सोतेली माता केकेयी ने इन्हे वन भेजने का जाल रचा था। मेने एक जगह ऐसी बात सुनी थी।

चौथी – हाय! केकेयी का कलेजा कितना कठोर होगा! जिन्हे देखकर वैरी का हृदय भी आनन्द से भर सकता हे उन पुत्र–पतोहू पर भी उसने वैरभाव रखा और इन्हे वन भेज दिया।

पाचवी – इन्ही से पूछ देखो न बात क्या हे?

एक कोई चतुर समझी जाने वाली स्त्री सीता के पास आकर पूछती – सीताजी! क्या आपकी सास ने आप तीनो को वन मे भेज दिया है? अगर

यह सच हे तो आपकी वह सास बडी पाषाण–हृदय है। कहा आपकी यह कोमलता और कहा कटको ककरो से व्याप्त यह भयकर कानन।

सीता स्नेहभरे स्वर मे कहती – नही बहिन सास ने कुछ बुरा नही किया। उनका भला हो, जिन्होने मुझे बन्धन से निकालकर इस सुख मे भेजा है। मैं वन मे न आती तो तुम सब से मिलना कैसे होता?

सीता की बात सुनकर स्त्रिया आपस मे कहती – सुनो ये क्या कहती हैं। अपने कैकेयी को कोसती थी और सीताजी उनका उपकार मानती हैं? बहिनो हम अपने पाप धो डाले तो ठीक है। इनकी सास ने इतना किया इन्हे घर से निकाल दिया, फिर भी ये उनका उपकार ही मानती हैं। अगर अपनी सास कडी बात कह दे तो अपने को भी उनके प्रति बुरा विचार नही करना चाहिए।

इसी प्रकार पुरुषो मे भी तरह–तरह की बाते होती। जब सीता की थकावट दूर हो जाती तो लक्ष्मण कहते – 'हमे आगे जाना है। वन का मार्ग वता दो। आनन्द मे रहना। तुम्हारे किये स्वागत के लिये हम आभारी हैं।

यह सुनकर उपस्थित नर–नारियो के हृदय मे धक्का–सा लगता। उनके वियोग मे बहुत–सी आखे आसू बहाने लगती। बहुतेरे लोग रास्ता बताने उनके साथ चलते। मगर राम अपने प्रेमपूर्ण स्वर से उन्हे साथ न चलने के लिए समझाते और रास्ता जानकर आगे चल देते। उन्हे जाते देख कोई स्त्री कहती – जव ऐसे महापुरूप भी पेदल चलते हे तो बडे–बडे वाहन वृथा ही बने हे। नाक वाले को फूल न मिले ओर पीनस वाले को मिले तो फूल का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। अधे को काजल मिले ओर आख वाले को न मिल वहरे को सगीत सुनाया जाय ओर कान वाले को नही तो जेसे यह उलटी रीति हे वेसे ही इन्हे वाहन न मिलना ओर दूसरो को मिलना भी उलटी रीति हे।

दूसरी कहती – इस तरह के पुरुप भी जव वल्कल वस्त्र पहनत हे तो ससार मे वस्त्र ओर आभूपण वनना व्यर्थ हे। जा जिसक योग्य हे वह उरा मिलना चाहिय। जो वस्त्राभूपण के योग्य ह उन्हे छाल पहनन को गिलती हे तो यह वडी विपमता हे। धिक्कार हे उन वस्त्राभूपणा का जिन्होन राम क शरीर को सुशोभित नही किया ओर जिन्ह राम न त्याग दिया।

तीसरी कहती – इनके गहने–कपडे किसी न छीन नही ह। गहना–कपडो के लिए दुनिया क झगडे देखकर इन्हाने स्वय त्याग दिय ह। आज गहना–कपडा क प्रति तुम्ह इतना विराग हुआ ता यह ता करा कि आ कभी इनके लिए झगडा नही करागी। गहना ओर कपडा क लिए ता [illegible]

छोडो। सीता जैसी राजकुमारी ने गहने–कपडे त्याग दिये और हम उनके लिए लडे यह कितनी लज्जा की बात है।

इस प्रकार कोई उनके भोजन के विषय मे सोचती, कोई उनके त्याग की बात कहती। कोई सीता की सुकुमारता का बखान करती। कोई राम–लक्ष्मण की सुन्दरता की प्रशसा करती। कोई कहती – विधि की गति निराली है। चन्द्रमा जगत् को पकाशित करता है लेकिन वह क्षयरोग से ग्रस्त है। महीने मे एक ही बार पूरा होता है अन्यथा क्षीण ही बना रहता है। ससार की समस्त आशाए पूर्ण करने वाला कल्पवृक्ष भी वृक्ष हुआ है। सबकी चिन्ता हरने वाला चिन्तामणी पत्थर हआ है। कामधेनु पशु है। इस प्रकार विधि की सभी लीलाए निराली हैं पर यही बात इनके लिए भी है। ये तीनो सुख के योग्य हैं पर आज सुख–विहीन होकर वन मे विचरते हैं।

कोई कहती – पूर्वजन्म के कर्म किसी को नही छोडते, सभी को भोगने पडते हैं। इन्होने भी कुछ ऐसे कर्म किये होगे।

उसकी बात काटती हुई दूसरी कहती – ना बहिन ऐसा मत कहो। ये महाभाग्यशाली हैं। तुम्हे विश्वास न हो तो इन्ही से पूछ लो।

वह कहती – वे तो जा रहे है। पूछे कैसे?

तब एक साहसी स्त्री झपट कर आगे बढती और सीता के पास जाकर कहती – आप जाती तो हैं पर जाती–जाती एक बात बता दे तो कृपा होगी।

सीता – पूछो बहिन! क्या जानना चाहती हो?

तब उसने कहा – क्या कारण है, जो आपको राजमहल त्यागना पडा है? और इस प्रकार वन मे भटकना पड रहा है? क्या आपके किसी पूर्वकृत अशुभ कर्म का यह फल है।

सीता ने कहा – बहिन तुम भूल मे हो। थोडी देर के हमारे परिचय से तुम्हे सुख उपजा हे या नही? अगर हम घर – पर ही रहते तो तुम्हे यह सुख केसे होता? फिर तुम्ही सोचो कि हम पुण्य के उदय से वन मे आये हे या पाप के उदय से? सुख छूट जाने पर जो रोता हे उसे पाप का उदय समझना चाहिए। लेकिन जिन्होने अपनी इच्छा से सुख त्यागा हे उन्हे पाप का उदय नही है। उनका पुण्य उदय मे आया है। पुण्य के उदय से ही हमारा वन मे आना हुआ हैं इसी से तुम जैसी अनेक बहिनो को आनन्द मिलेगा।

सीता का ऐसा उत्तर सुनकर स्त्रिया प्रसन्न हो जाती। वे कहती – धन्य है राजा जनक धन्य है महाराज दशरथ धन्य हें महारानी कोशल्या ओर

यह सच है तो आपकी वह सास बडी पाषाण–हृदय है। कहा आपकी यह कोमलता और कहा कटको, ककरो से व्याप्त यह भयकर कानन!

सीता स्नेहभरे स्वर मे कहती – नही बहिन सास ने कुछ बुरा नही किया। उनका भला हो, जिन्होने मुझे बन्धन से निकालकर इस सुख मे भेजा है! मै वन मे न आती तो तुम सब से मिलना कैसे होता?

सीता की बात सुनकर स्त्रिया आपस मे कहती – सुनो ये क्या कहती हैं! अपने कैकेयी को कोसती थी और सीताजी उनका उपकार मानती हैं? बहिनो, हम अपने पाप धो डाले तो ठीक है। इनकी सास ने इतना किया इन्हे घर से निकाल दिया, फिर भी ये उनका उपकार ही मानती हैं। अगर अपनी सास कडी बात कह दे तो अपने को भी उनके प्रति बुरा विचार नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार पुरुषो मे भी तरह–तरह की बाते होती। जब सीता की थकावट दूर हो जाती तो लक्ष्मण कहते – 'हमे आगे जाना है। वन का मार्ग बता दो। आनन्द मे रहना। तुम्हारे किये स्वागत के लिये हम आभारी हैं।

यह सुनकर उपस्थित नर–नारियो के हृदय मे धक्का–सा लगता। उनके वियोग मे बहुत–सी आखे आसू बहाने लगती। बहुतेरे लोग रास्ता बताने उनके साथ चलते। मगर राम अपने प्रेमपूर्ण स्वर से उन्हे साथ न चलने के लिए समझाते और रास्ता जानकर आगे चल देते। उन्हे जाते देख कोई स्त्री कहती – जब ऐसे महापुरूष भी पैदल चलते हे तो बडे–बडे वाहन वृथा ही बने हैं! नाक वाले को फूल न मिले और पीनस वाले को मिले तो फूल का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। अधे को काजल मिले और आख वाले को न मिले, बहरे को सगीत सुनाया जाय और कान वाले को नही तो जेसे यह उलटी रीति हे, वैसे ही इन्हे वाहन न मिलना ओर दूसरो को मिलना भी उलटी रीति हे।

दूसरी कहती – इस तरह के पुरुष भी जब वल्कल वस्त्र पहनते हे तो ससार मे वस्त्र ओर आभूषण बनना व्यर्थ हे। जो जिसके योग्य हे वह उसे मिलना चाहिये। जो वस्त्राभूषण के योग्य हे उन्हे छाल पहनने को मिलती हे तो यह बडी विषमता हे। धिक्कार हे उन वस्त्राभूषणो को जिन्होने राम के शरीर को सुशोभित नही किया और जिन्हे राम ने त्याग दिया।

तीसरी कहती – इनके गहने–कपडे किसी ने छीने नही हे। गहनो–कपडो के लिए दुनिया के झगडे देखकर इन्होने स्वय त्याग दिये हें। आज गहनो–कपडो के प्रति तुम्हे इतना विराग हुआ तो यह तो करो कि अव कभी इनके लिए झगडा नही करोगी। गहनो ओर कपडो के लिए लडना

छोडो। सीता जैसी राजकुमारी ने गहने–कपडे त्याग दिये और हम उनके लिए लडे यह कितनी लज्जा की बात है।

इस प्रकार कोई उनके भोजन के विषय मे सोचती कोई उनके त्याग की बात कहती। कोई सीता की सुकुमारता का बखान करती। कोई राम–लक्ष्मण की सुन्दरता की पशसा करती। कोई कहती – विधि की गति निराली है। चन्द्रमा जगत् को पकाशित करता है लेकिन वह क्षयरोग से ग्रस्त है। महीने मे एक ही बार पूरा होता है अन्यथा क्षीण ही बना रहता है। ससार की समस्त आशाए पूर्ण करने वाला कल्पवृक्ष भी वृक्ष हुआ है। सबकी चिन्ता हरने वाला चिन्तामणी पत्थर हआ है। कामधेनु पशु है। इस प्रकार विधि की सभी लीलाए निराली हैं पर यही बात इनके लिए भी है। ये तीनो सुख के योग्य हैं पर आज सुख–विहीन होकर वन मे विचरते हैं।

कोई कहती – पूर्वजन्म के कर्म किसी को नही छोडते, सभी को भोगने पडते हैं। इन्होने भी कुछ ऐसे कर्म किये होगे।

उसकी बात काटती हुई दूसरी कहती – ना, बहिन ऐसा मत कहो। ये महाभाग्यशाली है। तुम्हे विश्वास न हो तो इन्ही से पूछ लो।

वह कहती – वे तो जा रहे हैं। पूछे कैसे?

तब एक साहसी स्त्री झपट कर आगे बढती और सीता के पास जाकर कहती – आप जाती तो हैं पर जाती–जाती एक बात बता दे तो कृपा होगी।

सीता – पूछो बहिन! क्या जानना चाहती हो?

तब उसने कहा – क्या कारण है जो आपको राजमहल त्यागना पडा है? ओर इस प्रकार वन मे भटकना पड रहा है? क्या आपके किसी पूर्वकृत अशुभ कर्म का यह फल है।

सीता ने कहा – बहिन तुम भूल मे हो। थोडी देर के हमारे परिचय से तुम्हे सुख उपजा हे या नही? अगर हम घर – पर ही रहते तो तुम्हे यह सुख कैसे होता? फिर तुम्ही सोचो कि हम पुण्य के उदय से वन मे आये हे या पाप के उदय से? सुख छूट जाने पर जो रोता है उसे पाप का उदय समझना चाहिए। लेकिन जिन्होने अपनी इच्छा से सुख त्यागा है उन्हे पाप का उदय नही है। उनका पुण्य उदय मे आया हे। पुण्य के उदय से ही हमारा वन मे आना हुआ हैं इसी से तुम जैसी अनेक बहिनो को आनन्द मिलेगा।

सीता का ऐसा उत्तर सुनकर स्त्रिया प्रसन्न हो जाती। वे कहती – धन्य है राजा जनक [illegible] हें महारानी कोशल्या ओर

सुमित्रा! वे नगर और ग्राम भी धन्य हैं जहा आपके पेर पडते हैं। आज हमारे भाग्य खुले कि आपके दर्शन हुए। हमारे नेत्र आज सफल हुए। बस यही प्रार्थना है कि जब आप लोटे तो इधर से ही लोटे। हमे दर्शन देते जाए।

सीता उनसे कहती – कल का भी क्या ठिकाना है। बहिन! मैं हमेशा तुम्हारे पास नही रह सकती। हा मेरा धर्म सदैव तुम्हारे पास रह सकता है। अगर तुम मेरे धर्म को अपनालो तो मेरी आवश्यकता ही नही रहेगी।

इस प्रकार राम सीता और लक्ष्मण जिधर निकल जाते उधर एक अपूर्व वायुमण्डल तैयार हो जाता था। लोग उनका साथ नही छोडना चाहते थे और जब वे लोग इनका साथ छोड जाते तो वे ठगे–से रह जाते थे। गावो के जो लोग खेत–खलिहान मे होते और राम के आने पर उनके दर्शन से वचित रह जाते थे वे बाद मे आकर घोर पश्चात्ताप करते। उनमे जो सबल होते दौड कर उसी ओर जाते जिस ओर राम गये होते। निर्बल पछताते रह जाते। राम को देखने वाले उससे कहते – तुम्हारा पछताना ठीक ही हे। वास्तव मे तुमने बडा लाभ खो दिया है। मगर अब पछताने से क्या लाभ हे?

अधीर अवध

अब हमे अवध पर दृष्टि डालनी चाहिए। राम लक्ष्मण और सीता के चले जाने के पश्चात् अवध सूना हो गया। सर्वत्र उदासी ओर विषाद का साम्राज्य छा गया। ऐसा जान पडता, मानो अवध की श्री सीता के रूप मे अवध का सौभाग्य राम के रूप और अवध का सुख लक्ष्मण के रूप मे चला गया। अवध जैसे भयावना लगने लगा।

अवध की जनता का चित्त परिताप से पीडित था। राजपरिवार ऐसा मालूम होता मानो किसी ने कभी–अभी उसका सर्वस्व छीन लिया हो। महारानी कोशल्या का क्या पूछना हे? उन्हे क्षण–भर के लिए भी चेन नही था। खाते–पीते उठते–बेठते सोते–जागते उन्हे अपने दोनो पुत्रो और पुत्रवधू की ही चिन्ता रहती। वे सोचती – इस समय राम आदि कहा होगे? क्या करते होगे? हाय सुकुमारी सीता केसे पेदल चलती होगी? कहा सोती होगी? कोन जाने किस जन्म का मेरा प्रबल पाप उदय मे आया हे।

इस प्रकार अवध मे घर–घर दु ख व्याप रहा था। लेकिन भरत को जो कष्ट हुआ उसकी तुलना शायद किसी से नही हो सकती। भरत अन्तर्दाह से भीतर–ही–भीतर दग्ध हो रहे थे। उन्होने अपने–आप को सबसे ज्यादा

पापी माना। वे सोचने लगे – माता को क्या दोष दिया जाय और प्रजा का तो कोई अपराध ही नही है। पिताजी ने भी अपने वचन का पालन करके महापुरुषो के मार्ग पर चलने का विचार किया। यह विचार उत्तम ही है। इस तरह और किसी का अपराध नही है – अपराध सिर्फ मेरा है। मैं पापी हू। मेरे ही कारण राम लक्ष्मण और सीता को वन मे जाना पडा। इस प्रकार विचार कर भरत अत्यन्त दुखित रहते। उनकी व्यथा इतनी अधिक थी कि वह भीतर–ही–भीतर छिपी नही रहती। उनके नेत्र उनकी अन्तर्व्यथा को प्रकट कर देते और उनका विषादमय मुख उसकी साक्षी देता था। राम के वन जाने के बाद कभी किसी ने भरत को प्रसन्न नही देखा।

भरत को इस प्रकार दु खी होते देख प्रधान प्रजाजनो ने उन्हे सन्त्वना देने का प्रयत्न किया। उन्होने कहा – 'आप क्यो दुखी होते हैं? आपने राम को निर्वासन नही दिया है। उनके निर्वासन मे आपका कोई हाथ भी नही है। आप सर्वथा निरपराध हैं। यह बात हम सभी लोग जानते हैं और सबसे ज्यादा आप स्वय जानते हैं।

भरत ने कहा – प्रजाजनो! प्रथम तो यह है कि उनके निर्वासन मे मैं ही निमित्त हू। अगर मेरा जन्म ही न होता तो राम को वनवास क्यो भोगना पडता? कैकेयी माता के उदर से जन्म लेना ही मेरे लिये अपराध और पाप हो गया। कदाचित मैं निर्दोष भी मान लिया जाऊ, तो भी क्या मुझे सन्तोष हो सकता है? मै अपने लिये नही रोता। राम ओर लक्ष्मण सरीखे लोकोत्तर पुरुषो का ओर सीता सरीखी सती का वन–वन मे भटकना और मेरा राजमहल मे रहना ही मेरे लिये घोर व्यथा का कारण है।

प्रजाजन – राम तो चले ही गये हे। अब आप उनके जाने के दु ख मे डूबे रहेगे ओर प्रजापालन की ओर ध्यान न देगे तो प्रजा की क्या स्थिति होगी? राम के वियोग मे हम लोग भी दु खी हे। इस दु ख के दाह पर आपको चदन लगाना चाहिये या नमक? आप जले पर नमक छिडकने का काम कर रहे हैं। स्वय दु ख मे डूबे रहकर प्रजा का दु ख बढा रहे है। पानी की वर्षा के बिना कुछ वर्ष तक काम चल सकता हे पर राजा के बिना राज्य व्यवस्था के अभाव मे घडीभर चलना कठिन हे। आप स्वय तत्त्वज्ञ हैं। परमार्थ के ज्ञाता हैं। ससार के स्वरूप को आप भली–भाति समझते हैं। आपको क्या समझाए? होनहार होकर ही रहती हे। अतएव आप शोक का त्याग करे। राम कह गये हैं कि भरत को देखकर मुझे भूल जाना मगर आप तो दु ख की साक्षात मूर्ति बने हैं। हम लोग आपको देखकर राम को केसे भूले?

प्रजाजनो मे जो सबसे वृद्ध थे कहने लगे – महाराज। आप चिन्ता क्यो करते हैं? चिन्ता उस क्षत्रिय के लिए की जाती है, जो पतित होता हे ओर दया–धर्म का पालन नही करता। आप किसकी चिन्ता करते हैं? आप अपने पिता को देखिये, जो राजपाट त्याग कर सयम ग्रहण करने की तेयारी कर रहे हैं ओर जिन्होने अपने प्राणो से अधिक प्रिय पुत्र को वन मे भेज दिया किन्तु धर्म नही छोडा। इसी प्रकार ब्राह्मण वह चिन्ता के योग्य हे जो ब्रह्म कर्म छोडकर आजीविका के लिए ही शास्त्रो का अर्थ बताता फिरता हे ओर वह वैश्य भी चिन्ता के योग्य हे, जो अपना ही पेट भरता है वाणिज्य–व्यवसाय मे बेईमानी करता है और कृपण है। हे भरतजी। आपके यहा ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य – सभी अपने–अपने कर्तव्य का पालन करते हैं। शूद्र भी अपने कर्तव्य का भली–भाति पालन कर रहे हैं। फिर आप किसकी चिन्ता करते हैं?

ससार मे चारो वर्ण अपने–अपने कर्तव्य का पालन करे तो ससार का बडा हित हो। मगर आज वर्णव्यवस्था का असली स्वरूप विकृत हो गया है। वर्णव्यवस्था मे कर्तव्यपालन की प्रधानता नही रही और ऊच–नीच की अनुचित एव असत् भावना व्याप्त हो गई है। वस्तुत ऊचा वह है जो अपने वर्त के अनुकूल कर्तव्य का भली–भाति पालन करता है और नीच वह है जो अपने कर्तव्य से पतित हो जाता हे। इस तरह चाहे कोई ब्राह्मण हो या शूद्र हो, अगर वह कर्त्तव्यनिष्ठ हे तो ऊचा है और कर्तव्य से च्युत हो तो नीचा हे। मगर आज उच्चता–नीचता जन्मगत मानी जाती है। इसलिये घोटाला हो रहा है। कर्तव्य पिछड गया है ओर जन्म प्रधान बन गया हे।

ससार मे चारो ही वर्ण रहेगे। शूद्रो के प्रति घृणा करने से आज भारत की दुर्दशा हो रही हे। पेर सिर पर नही चढ सकते यह सही हे फिर भी अगर पेरो की सभाल न रखी जाय पेर रोगी हो जाय तो सारा शरीर बिगडे बिना रही रहेगा। पेर के बिगड जाने पर कभी सिर भी बिगड जायगा। चार वर्णो मे शूद्र पेर की जगह बतलाये गए हे मगर इससे शूद्रो के प्रति घृणा करने का कोई कारण नही बनता। लोग पेरो की सेवा करते ह मस्तक की सेवा कोई नही करता। चरण–सेवा सभी करते हे मस्तक–सेवा कोई नही करता। शूद्र का काम सेवा करना हे लेकिन भले आदमी प्रत्येक काम मे सेवक को आगे रखते हें।

आप केदियो से घृणा करते होगे लेकिन वे तो प्रकट पापी हा चुक हे। उनसे घृणा करने की क्या आवश्यकता हे? अपने छिपे पापी को देखा। भक्त लोग अपने सबध मे कहते हे–

तू दयालु दीन हौ तू दानी हौ भिखारी।
हौ प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुज–हारी।।

भक्त लोग इस पकार अपना पाप स्वीकार कर लेते है। इसी कारण उनका चित्त निर्मल हो जाता है। आपको चित्त–शुद्धि करनी हो तो आप भी अपने दोष देखो और परमात्मा के समक्ष उन्हे प्रकट कर दो। अपने–आप कदाचित् दूसरो से छिपाने मे समर्थ भी हो जाओगे तो भी परमात्मा से नही छिपा सकते। परमात्मा रत्ती–रत्ती जानता है। अतएव पापियो से घृणा करने के बदले अपने पापो से ही घृणा करो। यह कल्याण का मार्ग है।

भरत से उनके गुरुजन कहते – हे भरत! तुम किस की चिन्ता करते हो? शोचनीय तो वे साधु है जिन्होने केवल पेट भरने के लिये साधुपन अगीकार किया है। राजा होने के नाते ऐसे साधुओ की चिन्ता तुम्हे हो सकती है। पर तुम्हारे राज्य मे तो ऐसे साधु ही नही हैं। फिर किस बात की चिता करते हो?

हे भरत! तुम्हारे राज्य मे चारो आश्रम भी अपने–अपने कर्तव्य का पालन करते है। फिर चिन्ता का कारण क्या है? उठो, चिन्ता छोडो और राज्य सभालो। चितित रहने से राज्य–व्यवस्था बिगड जायगी।

कौशल्या भी भरत को उदास देखकर कहती – वत्स भरत, तुम मेरे लिये दूसरे राम ही हो। मेरे लिये राम और भरत दो नही हैं। तुम्हे देखकर मैं राम के वियोग का दुख भूल जाती हू। लेकिन तुम तो मुझसे भी ज्यादा शोकातुर रहते हो। राम वन गये पति विरक्त हैं ओर तुम्हारी यह दशा है! ऐसी स्थिति मे राजपरिवार ओर प्रजा का क्या हाल होगा? वत्स, चिन्ता छोडो। भवितव्य को कोई टाल नही सकता। स्वस्थ होकर कर्तव्य पूरा करो।

इस प्रकार माता–पिता तथा गुरुजन – सभी भरत को समझाते थे। वे शास्त्रो का प्रमाण भी देते थे कि–

आज्ञा गुरुणा खलु धारणीया।

गुरूजनो का आदेश अवश्य मानना चाहिये। पिताजी कहते है कि मेरी दीक्षा मे विघ्न मत डालो। ओर हम आपके गुरुजन भी कहते हैं कि आपको राज्य सम्भालना चाहिये। गुरुजनो की आज्ञा पालने वाला प्रशसनीय होता है। आपको किसी तरह का कलक नही लगेगा। आप राज्य सम्भालिये। माता पिता गुरुजन और प्रजाजन – सभी ने भरत से राज्य स्वीकार करने का आग्रह किया। कोई ओर होता तो इस अवसर को हाथ से न जाने देता। [illegible] – राज्य भी मिलता है और कलक भी नही लगता तो चूकना ठीक

नही। अब राज्य ले लेना ही अच्छा हैं। गुरुजनो का आदेश शिरोधार्य करने के बहाने वह राजा बन बैठता। मगर यह भरत थे। उन्होने आसू बहाकर ही सब की बातो का उत्तर दिया। वे सोचते – एक तो कौशल्या माता हे जो राम के जाने पर भी मुझे राम के समान ही मान रही है ओर राज्य करने की प्रेरणा कर रही हैं और दूसरी कैकेयी माता हैं जिन्होने बना–बनाया काम बिगाड दिया। पिताजी भी धन्य है जो राज–पाट त्याग कर मुनि–दीक्षा अगीकार करने के लिये उत्सुक बैठे है। और मुझ से राज्य स्वीकार करने का आग्रह कर रहे हैं। वे कहते हैं – अपयश होगा तो मेरा होगा कि दशरथ ने राम के हक का राज्य भरत को दे दिया।

कुछ आश्वस्त होकर भरत ने कहा – गुरुजनो! मै कुछ कह नही सकता। लेकिन कहे बगैर काम नही चलता। आप सब मेरी प्रशसा करते हैं लेकिन कैकेयी माता को बुरा समझते हैं, यह क्यो? इसीलिये तो कि उन्होने राम का राज्य छीन लिया? मगर उन्होने ऐसा क्यो किया है? बिना कारण के कार्य नही होता। अतएव कैकेयी माता की बुराई का कारण मै ही हू। जिसके लिए वह बुरी बनी हैं, वह भला केसे हो सकता है? अगर मै राज्य लूगा तो घोर अनर्थ हो जाएगा। कभी–कभी कारण की अपेक्षा कार्य बहुत कठोर होता है। दधीचि की हड्डिया कारण थी और उनसे बना हुआ वज्र कार्य था। वज्र हड्डियो की अपेक्षा अधिक कठोर था। पत्थर से निकलने वाला लोहा पत्थर की अपेक्षा बहुत कठोर होता है। इसी प्रकार मे कार्य हू ओर माता केकेयी कारण हैं। मै उनसे भी खराब हू। ऐसी दशा मे आप मुझे राज्यसिहासन पर कैसे बिठा सकते है? सुगधी–हीन पुष्प ओर प्राण–हीन शरीर को कोन ग्रहण करेगा? मे प्राण–हीन शरीर के समान हू। मेरे प्राण तो राम ओर सीता थे। वे चले गये। में मृतकवत् हू। मुझे सिहासन पर सजा कर क्या करेगे? जिस शरीर पर अच्छे–अच्छे आभूषण हो मगर वस्त्र न हो वह शरीर क्या अच्छा लगेगा? मेरी लाज रखने वाला वस्त्र सीता–राम थे। फिर मुझे राज्य का आभूपण पहनाने से क्या लाभ हे? नगे को क्या गहने शोभा देगें? मुझे राज्य नही सोह सकता।

इस प्रकार कह कर भरत फिर आसू बहाने लगे। सभी लोग द्रवित हो गये। सोचने लगे – भरत के अन्त करण मे राम के प्रति सच्चा प्रेम हे। 'सभी अवाक रह गये। कोई कुछ न कह सका। दशरथ भी चुप हो रहे। वे सोचने लगे – अब क्या करू? भरत कोई बालक तो हे नही कि उसे फुसला कर राज्य दे दू। इसकी रग–रग मे राम–रस भरा हे। यह राज्य न लेगा। अब

तो राम के आने पर ही कुछ निर्णय होगा। तभी मैं दीक्षा ले सकूगा। बिना राजा के पजा को कैसे छोड सकता हू? कम से कम राम के आने तक मेरी दीक्षा झमेले मे पड गई है। अब राम को बुलाने के सिवाय और कोई चारा नही है। पजा मे भी इसी प्रकार की विचारणा चल रही थी।

दशरथ दीक्षा लेने के लिये उत्सुक हो रहे थे। एक–एक क्षण उन्हे अनमोल जान पडता था और वह व्यतीत हो रहा था। वे सोचने लगे – जब तक दीक्षा लेने का विचार ही नही किया था तब तक तो कोई बात नही थी लेकिन अब समय गवाना अनुचित है। इस प्रकार आत्मकल्याण के लिये उत्सुक होना महापुरुष का स्वभाव ही होता है। वे जिस शुभ कार्य को करने का सकल्प कर लेते हैं उसमे विलम्ब नही कर सकते। 'शुभस्य शीघ्रम्' उनका लक्ष्य बन जाता है। दशरथ ने दीक्षा लेना श्रेयस्कर समझा था और इसी कारण राज्य की नवीन व्यवस्था की थी परन्तु बीच ही मे यह विघ्न आ खडा हुआ। किसी के घर मे आग लग गई हो घरवाला बाहर निकलने को तैयार हुआ हो और उसी समय कोई बाहर से द्वार बद कर दे तो जलते घर मे रहने वाला कितना बेचैन होगा। कोई डूबता आदमी किसी वृक्ष की डाली का सहारा ले और उसी समय डाली काट दी जाय तो डूबने वाले की क्या स्थिति होगी? दशरथ भी इस पकार की बेचैनी की हालत मे समय बिता रहे हैं। वे सोच रहे है–

आलित्ते ण भते! लोए पलित्ते णं भते! लोए।

प्रभो! यह लोक चारो ओर से जल रहा है। प्रभो! यह लोक बुरी तरह जल रहा हे। मैं इस आग से निकलना चाहता था लेकिन अचानक ही एक बडा विघ्न उपस्थित हो गया।

राम को लाने के लिए मत्री का गमन

इस प्रकार विचार कर दशरथ ने अपने मन्त्री को बुलाकर कहा–'मन्त्री! तुम्ही मेरी डूबती नेया को पार लगाओ। जिस प्रकार भी सभव हो राम को लौटा लाओ। कदाचित राम न लौटे तो सीता को ही ले आना। वह उस समय राम के साथ वन जाने को उत्कठित हो गई थी। उस समय उसे वन के कष्टो का अनुभव भी नही था। अब तुम्हारे ओर राम के समझाने से लौट आयेगी। सीता से कह देना – तुम्हारी इच्छा हो तो मायके मे रहना इच्छा हो तो ससुराल मे रहना पर वन से लौट चलो। इस प्रकार जानकी को समझा कर ले आना! जानकी आई कि फिर राम को आना होगा।

दशरथ का आदेश पाकर मन्त्री राम के पास जाने को तैयार हुआ। उसने रथ तैयार करवाया। मत्री को जाते देख अवध की बहुत–सी प्रजा भी उत्सुक होकर राम के पास जाने को तैयार हो गई पर मन्त्री ने उन्हे समझाते हुए कहा – तुम्हे राम की बात माननी चाहिये। राम तुम्हे समझाकर यहा रख गये हैं। अब तुम्हारा चलना ठीक नहीं है। मैं उन्हे लेने जा रहा हू। अगर वे लौट आये तो अवध मे फिर आनन्द की लहरे उमडने लगेगी। आप यहीं रहकर मेरी सफलता की कामना करो। मैं अपनी ओर से प्रयत्न करने मे कसर नही रखूगा। मैं यह भी कहूगा कि मेरे साथ प्रजा आने का हठ करती थी मगर मैने समझा–बुझा कर और राम के लौटने का आश्वासन देकर उन्हे रोका है।

प्रजा रुक गई और मन्त्री रवाना हुए। प्रजा राम के लौट आने की कामना करने लगी। किसी ने इस निमित्त व्रत किया, किसी ने प्रत्याख्यान किया। कोई कहने लगा – राम लौट आएगे तो मैं अमुक काम करूगा।

मन्त्री पश्चिम की ओर रवाना हुए। चलते–चलते आखिर राम दृष्टिगोचर हुए। उन्हे देखकर मन्त्री को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वह राम के आदर के निमित्त रथ से नीचे उतर गया और आवाज देता हुआ राम की ओर लपका। राम ने आवाज सुनी। सोचा मुझे इस प्रकार पुकारने वाला यहा कौन है? उन्होने मुडकर देखा और मन्त्री को पहचान लिया। राम ने लक्ष्मण से कहा – देखो लक्ष्मण, अवध के मन्त्री आ रहे हैं। जरा रूको। इतना कहकर वे लौट पडे ओर मन्त्री की ओर आगे बढे। मन्त्री सोचने लगा – महाराज कितने दयालु हैं, जो मेरे सामने आ रहे हैं। राज्य न मिलने के कारण किसी प्रकार का आवेश या क्रोध होना सम्भव था परन्तु यहा तो कुछ भी नजर नही आता। यह महानुभाव तो सदा की तरह प्रसन्न ही दिखाई देते हे।

मन्त्री राम के पास आते ही उनके पेरो मे गिर पडा ओर बालक की भाति सिसकिया भर कर रोने लगा।

राम – मत्रीजी आप बुद्धिमान होकर क्या करत हे? कहिए। अवध मे सब कुशल तो हें? राजा प्रजा प्रसन्न तो ह ना?

मन्त्री – प्रभो। सब कुशलपूर्वक हे पर आपके विना किरी को शान्ति नही।

राम–ससार की अशान्ति का असली कारण मोह हे। जहा माह हे वहा शान्ति नही। अवध मे मोह फेल गया हे तो अशान्ति होनी ही चाहिए। अच्छा कहिए यहा तक आने का कष्ट क्यो किया?

सब पास ही के वृक्ष की छाया मे बैठ गये। वहा बैठने के बाद मन्त्री ने कहा – महाराज ने आपको वापिस बुलाया है। जब आप वन रवाना हुए तो उन्हे भरोसा था कि भरत राज्य स्वीकार कर लेगे। सब लोगो ने पूर्ण प्रयत्न करके उन्हे समझाया। महाराज ने भी आग्रह किया। कौशल्या भी समझाते–समझाते हार गई। फिर भी भरत टस–से–मस नही होते। वे किसी भी प्रकार राज्य स्वीकार नही करते।'

'हमारे सरीखे बहुतो का खयाल था कि महारानी कैकेयी की करतूत मे भरत का भी हाथ होना चाहिये, लेकिन हमारा सदेह गलत सिद्ध हुआ। आपके ऊपर भरत का असीम प्रेम है। अगर आप नही लौटेगे तो वह उसी प्रकार प्राण छोड देगे, जैसे पानी के अभाव मे मछली प्राण दे देती है।'

'कैकेयी का वर पूरा हो चुका है। महाराज ने भरत को अपनी ओर से राज्य दे दिया है। अब एक प्रकार से भरत राजा हैं – आपने ही उन्हे राजा बनाया है। अतएव उनकी भी यही आशा है कि आप अयोध्या लौट चले। उनकी आज्ञा अनुनय विनय प्रार्थना – या जो–कुछ भी कहा जाय, आप मानकर इसी रथ मे पधारिये। मैं जो–कुछ कह रहा हू, अक्षरश सत्य है। अगर आप मेरी बात पर विश्वास करते हैं तो विलम्ब न कीजिए।'

राम – आपकी बात पर विश्वास न होगा तो किसका विश्वास करेगे? आप हमारे लिए आप्त हैं। अवध के शुभचिन्तक हैं। मेरे भी हितैषी है।

मन्त्री – तो फिर विलम्ब करना उचित नही है।

इसी समय रथ के घोडे हिनहिनाने लगे मानो वे भी राम को अवध चलने की प्रेरणा कर रहे थे। राम ने स्नेहभरी दृष्टि से घोडो की ओर देखा।

मन्त्री को आशा बधने लगी कि राम मेरी बात मान लेगे ओर मेरे साथ ही अवध लौट चलेगे। लेकिन राम सागर के समान गम्भीर थे, सहसा अपने ध्येय से विचलित नही हो सकते थे।

राम ने स्निग्ध स्वर मे कहा – मत्रीजी। आप मेरे लिए पिता के समान आदरणीय है। आप क्या आये जैसे पिताजी ही आये है। मैं आपको क्या उत्तर दे सकता हू? लेकिन आप मोह के वश होकर भरत के कहने से और प्रजा की उत्कण्ठा देखकर अपना धर्म भूल रहे हे। आखिर भरत राज्य क्यो नही लेते? वे यही सोचते है कि राज्य न लेना उनका (भरत का) धर्म है। मे भी यही सोचता हू कि मेने जिस राज्य का त्याग कर दिया हे फिर उसी राज्य के लिए लौटकर कसे जाऊ? ससार मे जितने भी धर्म–कर्म है उन सब मे सत्य का

पालन प्रधान हे। सभी शास्त्र यही वात कहते हें। एक स्वर से सव शास्त्रो का यही कथन है कि सत्य के समान ओर कोई धर्म नहीं हे ओर झूठ के समान अधर्म नही हे। सत्य–धर्म की प्राप्ति को सवने कठिन माना हे। जिस धर्म का मिलना कठिन माना जाता हे, मुझे वह सरल रीति से मिल गया हे। ऐसी स्थिति मे उसे छोड देना केसे उचित हो सकता हे?

पिताजी ने मुझे राज्य देने की तेयारी की थी मगर सत्य का पालन करने के लिए उन्होने भरत को राज्य देना स्वीकार किया। उन्हे तो सत्य का पालन करने मे कठिनाई हुई हे किन्तु मेरे लिए यह धर्म सुलभ हुआ हे। कितनी अच्छी बात है कि पिता के वचन का पालन होता हे, माता की इच्छा पूरी होती हे। भाई को राज्य मिलता हे ओर मुझे धर्म की प्राप्ति होती हे। ऐसे सुलभ ओर श्रेयस्कर धर्म का परित्याग कर देने से ससार मे मेरा अपयश होगा लोग घृणा के साथ कहेगे कि राम ने ऐसे सुलभ धर्म का परित्याग कर दिया! क्या आप मुझे अपयश मे डालेगे? लोगो को यह कहने का अवसर क्यो दिया जाय कि राम धर्मपालन के लिए वन गये थे, लेकिन धर्म का पालन कठिन समझकर लोट आये! अपयश सहने की अपेक्षा प्राण दे देना अच्छा है। मृत्यु का कष्ट अगर हो तो एक बार ही होता हे, किन्तु अपकीर्ति का कष्ट तो पद–पद पर सताता रहता हे।

मन्त्रीजी! में आपसे क्या कहू? आप अपयश दिलाने के लिए रथ लेकर आये हें! में यही कहता हू कि आप मेरी ओर से पिता के चरण छूकर हाथ जोडकर उनसे यह निवेदन करना कि आप किस बात की चिन्ता करते हें? धर्म–पालन के कार्य मे आप ही चिन्तित होगे तो धर्म का पालन कोन करेगा?

'प्रधानजी! आपसे भी मेरी प्रार्थना हे कि पिताजी को जव मेरे लिए दु ख हो ओर जव वे मोह के वश होकर धर्म का विस्मरण करने लगे तो आप उन्हे समझाते रहना कि धर्म पालने का यह सुलभ अवसर हे। इस अवसर का उपयोग करते समय दु ख करने की आवश्यकता नही हे। आप राम की चिन्ता त्याग दे।'

राम की वात सुनकर मन्त्री विचार मे पड गया। सोचने लगा – वात सही हे। अगर राम लोट चलेगे तो इनकी अपकीर्ति हो सकती हे। जा लाग वास्तविकता को नही जानते वे भ्रम मे पड सकते हें। इसके अतिरिक्त धर्मपालन की वात का भी क्या उत्तर दिया जाय? मगर सीताजी के लिए ता कोई प्रश्न नही ह। अगर वह लोट चले तो क्या हानि हे?

मत्री राम से कहने लगे – आपका कथन युक्तियुक्त नही है यह मैं कैसे कहू? किन्तु महाराज ने एक बात और कही है। उन्होने कहा है कदाचित् राम न लौटे तो जैसे–तैसे सीता को लौटा ही लाना। जानकी को न किसी ने वन भेजा है, न कुछ कहा ही है। राज्य के साथ इनका क्या सम्बन्ध है? इनके लौटने मे अपकीर्ति की भी कोई सम्भावना नही है। अब इन्होने वन के कष्टो का भी अनुभव कर लिया है। वह इन कष्टो को सहन करने योग्य नहीं हैं। महाराज ने कहा है कि सीता से सब को सतोष हो जाएगा, फिर चाहे वे अयोध्या मे रहे या अपने पितृगृह मे रहे। महाराज ने कहा है – सीता शीतलता देने वाली है। शीतलता की उसी को आवश्यकता है, जो ताप से दुखी हो। शीतल की शीतलता देने से क्या लाभ है? राम तो स्वय शीतल हैं। जल तो अवध के लोग रहे हैं। इसलिये हे जानकी! आप चलकर सब का सताप दूर कीजिए। आपके पधारने से सब को शाति मिलेगी। राजा–प्रजा को सतोष होगा। भरत को भी आप समझा सकेगी और महाराज की दीक्षा के मार्ग की बाधा टल जाएगी।

अन्त मे मन्त्री ने राम से कहा – आप जानकी से कह दीजिए कि वह अवध को लौट चले।

मन्त्री की बात सुनकर राम ने प्रसन्न होते हुए सीता से कहा – मन्त्रीजी का कहना ठीक तो है। तुम्हारे जाने से प्रजा मे और राजपरिवार मे शक्ति आ जायेगी। इसके अतिरिक्त तुम्हारी और हमारी शक्ति एक ही ओर लगना भी ठीक नही है। इसलिए तुम अवध जाकर वहा का काम करो। मैं वन मे रहकर वन का काम करूगा। भरत भी तुम्हारा कहना मान लेगे। इस प्रकार अवध की अशाति समाप्त हो जायगी। रही मेरी सेवा की बात सो अनुज लक्ष्मण मेरे साथ है ही। इनके सरक्षण मे रहते मेरी चिन्ता करने की आवश्यकता ही नही है।

रामचन्द्र की बात सुनकर सीता कहने लगी – 'प्रभो! आपके ये वचन मेरी परीक्षा करने के लिए हे? आप मेरी कसौटी करना चाहते हैं? वास्तव मे स्वामी ऐसे ही कसौटी करने वाले होने चाहिये। पत्नी के नचाने पर बन्दर की तरह नाचने वाले स्वामी किस काम के? लेकिन मेरी भी एक विनय सुन लिजिए। उसके बाद आप जेसी आज्ञा देगे वही करूगी।

हे परमस्नेही प्राणपति! आप मुझ पर गाढ स्नेह रखते हैं। आप करुणाकर आर विवेकी हे। इसलिए आप जो कहेगे उचित ही होगा। आप अवध मे मरी परीक्षा कर चुके हे। अब यहा भी कर रहे हे। वास्तव मे परीक्षा

बार–बार ही की जाती हे। कचन को बार–बार अग्नि मे तपाया जाता हें। मगर उससे वह खराब नही होता वरन् अच्छा ही होता हे। आप जब जहा चाहे, परीक्षा करे। सीता खोटा सोना नही हे।

एक बात में आपसे पूछती हू। आप कहते हें – तू अवध का काम कर, मैं वन का काम करूगा। तो क्या में ओर आप दो हैं? क्या शरीर ओर उसकी परछाई अलग–अलग हें? क्या शरीर को छोड कर परछाईं अन्यत्र भेजी जा सकती हे? सूर्य को त्याग कर प्रभा कहा जा सकती हे? चन्द्रमा के बिना चादनी कहा रह सकती हें? अगर ये सब अलग नही हें तो में आपसे अलग कैसे रह सकती हू?

सीता की बात सुनकर राम टकटकी लगाकर उसकी ओर देखने लगे। फिर सीता से उन्होने कहा–क्या तुम मुझसे अलग नहीं हो सकती? फिर मन्त्रीजी जो कुछ कहते हैं, वह क्या ठीक नहीं है?

सीता–प्रभो! मन्त्री भूल करते हैं मगर आप तो नहीं भूल सकते। लोग माया को चाहते हें, माया के स्वामी को नहीं चाहते। इसी से ससार मे गडबड मच रही हे। यह आज की नही अनादि की रीति हे। ससार के लोग माया को पकड रहे हैं, और परमात्मा को भूल रहे हें अर्थात् सत्य ओर धर्म को नही चाहते धन–सम्पत्ति चाहते हें। यही अशाति का प्रधान कारण हे। मन्त्रीजी भी इस फेर मे पडे हुए हे। अवध के लोगो के लिये ये मुझे ले जाना चाहते हें। लेकिन जिस तरह परमात्मा को छोडकर प्राप्त की गई माया डुबाने वाली ही साबित होती हे उसी प्रकार में भी अवध की प्रजा को कष्ट ही सिद्ध होऊगी। आपके बिना मुझे ले जाना परमात्मा को छोड कर माया को ले जाना हे। उससे किसी का कल्याण नही हो सकता। मुझे ले जाना लोगो के सामने यह आदर्श रखना कि सब काम माया से ही होते – परमात्मा की आवश्यकता नही हे।

मन्त्रीजी मुझे शीतलता देने वाली कहते हे। लेकिन आपके साथ हान पर ही में शीतल हो सकती हू। आपसे अलग होते ही में उसी तरह ताप दने वाली सिद्ध होऊगी जेसे परमात्मा–विहीन माया तापदायिनी होती हे। शीतलता के स्त्रोता तो आप हें। जब आप ही साथ न होगे तो मुझ मे शीतलता कहॉ से आएगी?

राम–विहन माया को अपनाने का क्या परिणाम होता हे यह बात रावण के दृष्टान्त से समझ मे आ सकती हे। रावण केवल सीता का ले गया राम को नही ले गया। इसी से वह राक्षस कहलाया। विद्वान् होने पर भी वह

मूर्ख कहलाया। रामहीन सीता अन्त मे उसके और उसकी लका के विनाश का कारण बनी। अगर राम के साथ सीता उसके यहा गई होती तो उसका कल्याण होता। भीलनी के दृष्टान्त से यह बात सहज ही समझ मे आ सकती है। राम–सहित सीता के पदार्पण से भीलनी का उद्धार हो गया – उसका कलक दूर हो गया उसकी महत्ता बढी और वह ऋषियो के लिये आदरणीय हो गई। मगर रामहीन सीता को ले जाने वाले रावण का सर्वस्व ही स्वाह हो गया।

इसलिये सीता कहती है – मै आपके बिना अकेली जाकर अवध की पजा को शीतलता पहुचाने के बदले सताप लेने वाली सिद्ध होऊगी। इसके अतिरिक्त मत्रीजी ठीक ही कहते हैं कि राज्य के साथ सीता का तो कोई सबध नही है। मेरा सबध आपके साथ है। जहा आप नही, वहा मै कैसे रह सकती हू? अगर मेरे विचार मे कुछ प्रमाद हो तो आप समझाइये? आपका आदेश मुझे शिरोधार्य होगा।

लक्ष्मण ने कहा – सीताजी का कथन सर्वथा सत्य है। अवध मे महारानी कैकेयी राजमाता होगी तो इनकी वहा क्या आवश्यकता है? वह अकेली ही बहुत शीतल हैं। मन्त्रीजी! अधिक शीतलता भी किस काम की? उससे तो जडता उत्पन्न हो जाती है।

राम ने मुस्करा कर कहा – मन्त्रीजी! मुझे जो कहना चाहिए था, कह चुका हू। अब आप ही कहिये अधिक कहने की क्या गुजाइश है? चादनी चन्द्र के बिना नही रह सकती और बिना चादनी का चन्द्र भी किस काम का है? चन्द्रमा की शक्ति तो चादनी ही है। अब आप जो कहे, सो करे।'

राम और सीता की बातो का मन्त्री क्या उत्तर देता? वह कुछ न कह सका पर उसका हृदय दुख से भर गया।

मन्त्री सोचने लगा – मै – अब क्या करू? मैंने महराज और प्रजा को आश्वासन दिया था कि मै दोनो को लाने का प्रयत्न करूगा। कदाचित राम न लोटे तो सीताजी को ले आऊगा। लेकिन मैं अपना आश्वासन पूरा नही कर सकता। अब प्रजा को क्या मुख दिखाऊगा? उनके प्रश्नो का किस मुह से उत्तर दूगा? इस प्रकार अत्यन्त दुखित होकर मन्त्री ने कहा – महाराज मेरी बुद्धि काम नही दती। मै नही समझ पाता हू कि अवध लौटकर में महाराज को क्या उत्तर दूगा। प्रजा की प्रश्नावली का किस प्रकार समाधान करूगा? [illegible] अपना मुख नही दिखलाना चाहता। अतएव मे भी अवध नही लौटना

चाहता। मुझे अपने साथ रहने की आज्ञा प्रदान कीजिये। यह सेवक भी वन मे ही जीवन बिताना चाहता है।

राम ने अनेक युक्तियो से, तर्कों से यहा तक कि आग्रह करके मत्री को बहुत समझाया, फिर भी वह अवध को नहीं लौटा। उसने राम की सब ही युक्तियो का अकाट्य उत्तर दिया। वह कहने लगा – 'बालक को माता–पिता बहुत समझाते हैं पर वह केवल रोना समझता है। मैं और कुछ नहीं जानता, सिवाय इसके कि या तो आप स्वय अवध को लौट चले या मुझे अपने साथ चलने दे।

इस प्रकार कह कर मन्त्री राम के साथ–साथ आगे चल दिया। चलते–चलते एक गहन जगल आया और एक भयावनी नदी। राम ने वहा ठहर कर मन्त्री से कहा – मन्त्री, अब आप लौट जाइये। आगे बडा कष्ट है। रथ के लिए मार्ग भी नहीं है। इसके अतिरिक्त आपके न लौटने से अवध मे नाना प्रकार की दुश्चिंताए खडी होगी। ऐसी दशा मे घोर अनर्थ होने की सम्भावना है। अवध को इस अनर्थ से बचाना आपका कर्तव्य है। कर्तव्य का पालन करना ही मनुष्य–जीवन का सार है। आप मोह मे पडेगे तो कर्तव्य से च्युत हो जाएगे। महाराज आपकी प्रतीक्षा कर रहे होगे। अवध मे एक–एक घठी वर्ष की तरह बीत रही होगी। आप न लौटेगे तो स्वामी की आज्ञा का उल्लघन होगा। आप स्वय विवेकशील हैं। अब हठ न कीजिये। अवध लोट जाइये।

राम फिर कहने लगे – 'माताजी ओर पिताजी से कह देना कि राम लक्ष्मण और सीता आज तक सकुशल हैं। वे हमारे लिए लेश मात्र चिन्ता मत करे। पिताजी को समझा देना कि जेसा में हू, वैसा ही भरत हें। भरत मे ओर मुझ मे भेद करने से ही यह सब हुआ हे ओर जब तक यह भेदभाव रहेगा दु ख दूर न होगा। भरत ही राज्य का अधिकारी हे। मैंने भरत को अपनी ओर से राज्य दे दिया है अत भरत को मेरी ही तरह मानना उचित हे। हा ओर भरत से कह देना कि जिस प्रकार माता–पिता को सुख हो वही उन्हे करना चाहिये। मन्त्रीजी । अव आप लोट जाइये। आपने मेरे साथ वनवास कर लिया। आपकी इच्छा पूरी हो गई। अव मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये।

मत्री का निराश लौटना

इस वार राम के कथन मे कुछ ऐसा भाव था कि मन्त्री उसे अस्वीकार नही कर सकता था। लेकिन मत्री की दुविधा ओर उलझन भी कम

नही थी। वह सोचता था कि सफलता मिले या न मिले, स्वामी को उत्तर तो देना ही चाहिये। महाराज दशरथ बडी उत्कठा के साथ मेरी प्रतीक्षा कर रहे होगे। मेरे न जाने से घोर अनर्थ भी हो सकता है। परन्तु वहा जाकर उत्तर क्या दूगा? प्रजा की प्रश्नावली जब वाणावली की तरह मेरे कानो मे प्रवेश करेगी तो जीभ से क्या कहूगा? महाराज और महारानी जब मुझे अकेला आता देखेगे तो उनकी क्या स्थिति होगी? मैं उन्हे कैसा विकराल—सा प्रतीत होऊगा? फिर भी कर्तव्य तो कठोर होता ही है। कर्तव्य—पालन मे दुविधा नही होनी चाहिये।

इस प्रकार विचार कर मत्री अवध की ओर लौटने को तत्पर हुआ। मगर रथ के घोडे लौटना ही नहीं चाहते थे। वे अड गये। उन्हे अडा देख मन्त्री कहने लगा – प्रभो! हृदय कठोर करके मै आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए प्रस्तुत हू, लेकिन रथ के अश्व आगे नही बढते।

राम ने कहा – मन्त्रीजी! आपकी चतुराई के सामने बेचारे घोडो की क्या बिसात है? बडे—बडे नीतिज्ञो को वश मे कर लेने वाले नीतिज्ञ मन्त्री क्या घोडो को वश मे नही कर सकते? जो घोडो को नही चला सकता वह राज्य को कैसे चलाएगा? वहा पिताजी आपकी प्रतीक्षा कर रहे होगे और आप यहा वृथा समय नष्ट कर रहे हैं। क्या यह उचित है?

मन्त्री ने घोडो से कहा – बस यही एक मार्ग है कि जिस पर मुझे और तुम्हे चलना पडेगा। अब अडो मत। स्वामी का उपालम्भ सुनने का अवसर मत दो। पैर बढाओ।

रास खीचते ही घोडे समझ गये कि अब अडना बेकार है। वे धीरे—धीरे आगे बढे मगर हीसते हुए और अगल—बगल देखते हुए। जान पडता था, उनका निर्जीव शरीर चल रहा है आत्मा राम के पास रह गई है। मन्त्री रह—रह कर राम की ओर देखता था और आसू बहा रहा था। उसे अपनी विवशता और पराधीनता का आज जैसा कटु अनुभव पहले कभी नही हुआ था। वह सोचता था – मै विवश न होता तो आज राम को पाकर भी क्यो छोडना पडता? स्वाधीन होता तो राम के साथ ही वन मे विचरता और जीवन का लाभ लेता। मगर हाय री पराधीनता! तूने मेरा जीवन निष्फल कर दिया। इस प्रकार अत्यन्त विकल होकर मन्त्री रथ पर खडा—खडा राम की ओर ही निहार रहा था। राम ने मन्त्री की यह स्थिति देखी तो वे जरा जल्दी—जल्दी पग बढा कर चले। उन्होने सोचा – जब तक मे दिखाई देता रहूगा मन्त्री का दुःख शात न होगा।

धीरे–धीरे राम सीता ओर लक्ष्मण आखो से ओझल हो गए। ओझल होने पर अत्यन्त निराश मत्री ने अवध की ओर ध्यान दिया। मत्री उस समय अपने–आप को बडे कष्ट मे मान रहा था। घोडे भी अनमने–से चल रहे थे। कोई भला आदमी धोखे मे शराब पीले और फिर ज्ञात होने पर उसे जेसा पश्चात्ताप होता है वैसा ही पश्चात्ताप मत्री को हो रहा था। वह सोचने लगा – मै खाली रथ लेकर अवध मै कैसे प्रवेश करूगा? प्रजा से राम की माता से ओर महाराज से क्या कहूगा? भगवन्! मेरे ऊपर केसा सकट आ गया है। किस मुह से कहूगा कि न राम आये और न सीता आई। खाली रथ लेकर दिन के समय अयोध्या मे प्रवेश करना असभव हो जाएगा।

मत्री ज्यो–ज्यो अवध के समीप आता जा रहा था उसका हृदय क्षुब्ध होता जा रहा था। आखिर अवध आ गया। जब वह आया तो काफी दिन शेष था। उसने अयोध्या से कुछ दूर रथ रुकवाया और वही ठहर गया। रात्रि हुई ओर अधेरा फैल गया तो डरता–सा चोर की तरह मत्री अयोध्या मे घुसा ओर सीधा राजमहल मे जा पहुचा।

मत्री के अनेक उपाय करने पर भी उसका आगमन छिपा नही रहा। छिपता भी तो कब तक! कुछ लोगो ने खाली रथ आते देखा तो सब भाप गये – राम नही आये, सीता भी नही आई! बात–की–बात मे यह सवाद अयोध्या के एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गया। सर्वत्र फिर वही चर्चा होने लगी।

कुछ विशिष्ट लोग राजमहल मे पहुचे ओर मत्री से पूछने लगे – कहिये मत्रीजी क्या हुआ? मत्री ने नीची गर्दन करके उत्तर दिया अभी हम लोगो का भाग्य ऐसा नही हे कि राम लोट आये।

मन्त्री दुखित होता हुआ दशरथ के पास पहुचा। दशरथ ज्ञानी ओर नीति–निपुण थे। उन्होने पहले ही अनुमान कर लिया था कि महापुरुष राम लोटकर आने वाले नही हे। फिर भी जनता को मालूम हो जाय ओर भरत राज्य स्वीकार कर ले इसी उद्देश्य से उन्होने मत्री को भेजा था।

मत्री के पहुचते ही राजा ने पूछा – कहो किसे ले आये मत्रीजी? राम ओर सीता दोनो आये हे या अकेली सीता?

यह प्रश्न सुनकर मत्री की जो दशा हुई होगी उसे कोन जान सकता हे? मानो हजार विच्छुओ ने एक साथ डक मारा हो। थोडी देर मोन रहने क वाद मत्री बोला – महाराज कोई भी न लोटा।

दशरथ ने कहा – मत्री! इसमे दु ख की कोनसी बात हे? इतनी जल्दी लोटना हाता तो वे जात ही क्यो? दु ख मत करा उन्हाने न लाटकर

सूर्यवश की सतान के योग्य ही कार्य किया है। सीता का न आना भी उचित ही है। राम के बिना सीता वैसी ही है जैसी धर्म के बिना माया। इसलिये शोक त्यागकर भरत से कहो कि हम अपनी ओर से सब सभव प्रयत्न कर चुके है। राम लौटने वाले नही। इसलिये अब तुम्ही सिहासन पर बैठो। प्रजा का पालन करो और अपने पिता को धर्म–कार्य मे लगने दो।

हा मत्री! देखो एक बात और है। तुम अगर जरा भी दु खी होओगे तो भरत का दु ख अधिक उमड पडेगा। इसलिये तुम तनिक भी उद्विग्न मत होओ। ऐसा न करोगे तो राज्य–सचालन मे भरत की सहायता कैसे करोगे? राम खुद दु खी नही हैं। मैं उनका पिता भी दु खी नही हू। फिर तुम्ही क्यो दु खी होते हो? पसन्न रह कर अपना–अपना कर्तव्यपालन करे, यही अभीष्ट है।

कर्तव्य की कसौटी

राजा और प्रजा के द्वारा माग ही नही वरन् अत्यन्त आग्रह करने पर भी राम और सीता का वन से न लौटना जब कोई राज्य सभालने वाला ही न हो तब भी दशरथ का दीक्षा लेने के लिये तत्काल उतारू होना और सब के समझाने–बुझाने पर भी भरत का राज्य को स्वीकार न करना – विचित्र परिस्थिति है। इस परिस्थिति पर ऊपर–ऊपर से विचार करने वाला इस परिणाम पर पहुच सकता है कि यह एक प्रकार की जिद ही है। जब दशरथ ने इतने दिनो तक राज्य किया था तो थोडे दिन और करने मे क्या हर्ज था? थोडे दिनो अधिक राज्य करने से मुक्ति का द्वार बद हो जाने की तो कोई सभावना नही थी और फिर उस अवस्था मे जबकि वह अनासक्त भाव से राज्य करते। इसी प्रकार जब राम को सभी राजा बनाना चाहते थे, भरत की भी आन्तरिक इच्छा यही थी और वे सच्चे अन्त करण से राज्य स्वीकार नही कर रहे थे और सबकी ओर से उन्हे बुलावा आ गया था तो उनके आ जाने मे क्या हर्ज था? और जब भरत से सभी लोग आग्रह कर रहे थे तो वही राज्य स्वीकार कर लेते तो कौन–सी बुराई हो जाती? इस प्रकार के विचार उत्पन्न हो सकते है। मगर उन्होने ऐसा क्यो नही किया और अपने–अपने निश्चय पर सभी अटल क्यो रहे – इसका ठीक कारण तो वे ही बता सकते हैं। हा गहराई मे उतर कर विचार करने से ज्ञात होता है कि वास्तव मे उन सब ने जो–कुछ किया वही उचित था। इसमे खोटी जिद का प्रश्न उपस्थित नही होता।

राम का न आना सत्याग्रह हे। कभी–कभी सत्याग्रह के नाम पर दुराग्रह भी हो जाता है। जैसे राम ओर भरत अपने–अपने निश्चय पर अटल है उसी प्रकार केकेयी भी अपनी वात पर जमी हुई हे। मगर केकेयी का यह काम सत्याग्रह नही कहा जा सकता। कहने को तो कैकेयी भी कहती हे कि कुछ भी हो, मैंने जो वचन मागा हे वह पूरा होना चाहिये। फिर भी उसका कार्य सत्याग्रह नही कहला सकता। साधारण जनता सत्याग्रह ओर दुराग्रह का ठीक–ठीक अर्थ नही समझती। इसी कारण कभी सत्याग्रह को दुराग्रह और दुराग्रह को सत्याग्रह समझ लेती है। स्वार्थ, ईर्ष्या द्वेष और अमर्ष से दूसरे को हानि पहुचाने के विचार से जो आग्रह किया जाता हे वह सत्याग्रह की कोटि मे नहीं गिना जा सकता। सत्याग्रह वही है जो एकान्तत दूसरे के हित के उद्देश्य से, किसी को हानि पहुचाने की भावना न रखते हुए किया जाय। कैकेयी ने सत्याग्रह की ये आवश्यक शर्त पूरी नहीं कीं। तुलसीदास के कथनानुसार उसे कोशल्या के प्रति ईर्ष्या हो गई थी। राम के प्रति उसके मन मे दुर्भावना आ गई थी। वह राजमाता का गौरव स्वय प्राप्त करने की स्वार्थ–भावना से ग्रस्त हो गई थी। राम के प्रति उसके मन मे दुर्भावना आ गई थी। जेन रामायण मे केकेयी को यद्यपि इस रूप मे चित्रित नही किया गया हे तथापि उसके वर्णन से भी यह वात स्पष्ट हे कि भरत के प्रति ममता के कारण ही उसने राम के अधिकार का अपहरण किया। न्याय के अनुसार ओर परम्परा के लिहाज से भी राम ही राज्य के अधिकारी थे। किन्तु कैकेयी ने ममता से प्रेरित होकर न्याय का विचार नहीं किया। न्याय का विचार जहा भी नही रहता वहा सत्याग्रह नही दुराग्रह ही हो सकता हे।

दशरथ राम ओर भरत के चित्त मे स्वार्थत्याग की भावना ही वलवती दिखाई देती हे। उनमे किसी का अहित करने का भाव नही। न किसी का किसी के प्रति द्वेष हे, न कोई स्वार्थ हे। अतएव उनके आग्रह को दुराग्रह केसे कहा जा सकता हे? अस्तु।

तुलसी रामायण के अनुसार जव मन्त्री ने राम के न लोटने का समाचार दशरथ को सुनाया तो वे रोने लगे। मगर दशरथ जेसे महापुरुष राम के न लोटने मात्र से रोने लगे, यह आदर्श कुछ ठीक नही जचता। जो ससार से विरक्त होकर आध्यात्मिक साधना म जुट जाने की तेयारी किये वेठा रहा हो जिसने ससार की मोह–माया जीत ली हो वह रोने वेठ जाय यह केस सम्भव हे? दशरथ ससार को रोना सिखलाने के लिए नही हे। जेन रामायण मे दशरथ के रोने का कोई वर्णन नही ह। उन्हान कहा – 'म पहले ही जानता

था कि राम नही लौटेगे। उन्होने न लौटकर सूर्यवश के गौरव को बढाया है। इसलिये दु खी होने की आवश्यकता नही। अब तुम जाकर भरत को समझाओ और उसे राजा बनाओ।

भरत की पुन अस्वीकृति

मन्त्री अपने साथ कुछ विशिष्ट और प्रभावशाली व्यक्तियो को लेकर फिर भरत के पास पहुचा। मन्त्री ने अपने वन जाने का वृत्तात भरत को सुनाया। उसने कहा – राम को अयोध्या लौटने के लिए खूब समझाया, आग्रह किया किन्तु वे किसी भी प्रकार लौटने को तैयार नही हुए। उन्होने कहा है कि मैं और भरत दो नहीं हैं। दो मानने से ही यह गडबड उत्पन्न हुई है। उन्होने आपको यह भी कहा है कि आप राज्य स्वीकार कर ले और ऐसा कार्य करे, जिससे माता–पिता को कष्ट न पहुचे।

भरत ने उत्सुकता और शाति के साथ मत्री की बात सुनी। राज्य स्वीकार कर लेने का प्रस्ताव भी सुना। उसके बाद वह कहने लगे – 'राम को भेजने का अपराधी मैं ही हू। मैं ही पापी हू।

लोग अपराधी होते हुए भी अपने को निरपराध सिद्ध करने की भरसक चेष्टा करते हैं। मगर एक भरत हैं जो साक्षात् अपराधी न होते हुए भी कार्य–कारण भाव से अपने–आप को अपराधी मान रहे है। उनका कहना है कि मैंने माता के उदर से जन्म न लिया होता तो माता के मन मे ऐसा भाव क्यो आता? मुझ पापी के जन्मने से ही माता का मन मलीन हुआ है। मेरा जन्म ही राम के राज्य छिनने का कारण हुआ है। इस कारण मैं अपराधी हू और मुझे दण्ड मिलना चाहिये। मगर आप अपराध का पुरस्कार देना चाहते हैं और वह भी साधारण नही। अपराध के बदले अवध का राज्य मुझे दिया जाता है। यह अच्छा न्याय है। ऐसा ही न्याय करने के लिए मुझे राजा बनना होगा। मन्त्रीजी। मै अपना पाप बढाना नही चाहता।

कैकेयी को पता चला कि राम के न लौटने पर भी भरत राज्य स्वीकार नही करता तो उसके क्षोभ की सीमा न रही। भरत की मूर्खता पर उसे बेहद क्रोध चढ आया। वह कहने लगी – भरत के लिए ही मैं बदनाम हुई और वह भी पागलपन नही छोडता। मै जाकर देखती हू, वह कैसे इनकार करता है।

इस तरह विचार कर कैकेयी भरत के पास आई। कैकेयी का भरत [illegible] अर्थात दुराग्रह द्वारा सत्याग्रह का सामना करना था।

कैकेयी को सामने देखकर भरत की आखो मे आसू भर आये। उनका हृदय वेदना से आहत हो गया। माता की भाव–भगिमा देखकर भरत सब–कुछ समझ गये तथापि उन्होने पहले मोन रहना ही उचित समझा।

कैकेयी भरत के सामने खडी हो गई। भरत ने उसकी ओर देखा तक नही। तब कैकेयी कहने लगी – वत्स! आज तू मेरे सामने देखना भी नही चाहता! मैने तेरा क्या अनिष्ट किया है? जो–कुछ मैने भला–बुरा किया तेरे ही लिये किया है। अगर मेरे किये को तू पाप समझता है तो उस पाप का फल मै भोगूगी। मैं नरक मे जाऊगी। तू तो राज्य कर। मेरा अपराध हे तो राज्यासन पर बैठ कर मुझे दण्ड दे। यह तो सूर्यवश का नियम ही है कि माता–पिता अपराधी हो तो उन्हे भी दण्ड देना चाहिये। इसलिये तू मुझे दण्ड देने के लिए ही राज्य ले ले।

'वत्स तुम्हारे राज्य न लेने से सभी लोग दुखी हो रहे है। तुम मुझे बुरी समझते हो पर मैंने क्या बुराई की है? तुम्हारे पिताजी पर मेरा ऋण चढा था। मेंने उसे उतार लिया। मैंने राम लक्ष्मण या सीता को वन जाने के लिए नही कहा था। वे अपनी इच्छा से गये हैं। फिर भी इसमे हानि क्या हुई? प्रथम तो सभी उनके गुण गाते है दूसरे वे वहा प्राणियो का उद्धार करेगे। यह तो लाभ ही है। तुम उल्टा क्यो सोचते हो? उठो राज्य स्वीकार करो और पिताजी को प्रसन्नता के साथ दीक्षा लेने दो। उनके धर्म मे बाधक मत बनो।

केकेयी का यह कथन भरत के हृदय मे शूल की तरह चुभ गया। उसे अधिक वेदना होने लगी। भरत सोचने लगे – माता अब भी अपने ही विचार पर दृढ हे। वह मेरा अपराध नही समझती परतु वास्तव मे अपराधी मे ही हू। मुझे प्रायश्चित्त करना पडेगा।

भरत का यह निश्चल विचार सत्याग्रह हे। अपने–आप को दोपी मानकर सत्याग्रह के द्वारा दूसरे के दुराग्रह को मिटाना बडा काम हे।

भरत राज्यासन पर बेठने के लिये रास्ता निकालना चाहते ता सहज ही निकाल सकते थे। राज्य स्वीकार करने के लिये उनके पास पर्याप्त कारण थे। मगर मर्यादा रास्ता ढूढने के लिये नही कष्ट सहकर भी पालन करने के लिये हे। वे सोचते हें कि मने यह मर्यादा की ह कि राम राजा हें ओर म उनका सेवक हू। मे इस मर्यादा का कदापि उल्लघन नही कर सकता। इस प्रकार सोचकर भरत कुछ देर मोन ही रह।

केकेयी फिर कहन लगी – मने जा–कुछ किया हे उस तुम ऊपरी दृष्टि से ही देखत हो। शाक ओर चिन्ता क कारण तुम्ह मर कार्य का महत्त्व

नही मालूम होता। जब तुम्हारा चित्त शान्त और स्वस्थ होगा तो तुम्हे मेरे कार्य का महत्त्व मालूम हो जाएगा। अगर मै महाराज से वर न मागती तो वे ऋणी बने रहते। ऋण रहते दीक्षा लेना क्या उचित होता! राम के वन जाने मे उनकी कसौटी हुई कि राम किस श्रेणी के पुरुष है, यह बात उनके वन गये बिना ससार को कैसे ज्ञात होती? उनका तुम्हारे ऊपर हार्दिक प्रेम है या नही यह बात कैसे समझ मे आती? इसी पकार तुम मे राज्य करने की योग्यता है या नही, यह भी कैसे पता चलता? यह सब मेरे वर मागने से स्पष्ट हो गया। मुझे लोग युग–युग मे कोसते रहेगे तो भले कोसे, मगर राम का यश बढाने का श्रेय विद्वान मुझे ही देगे। मैंने राम का स्वरूप जगत् के सामने खोल कर रख दिया है। खैर कुछ भी हो। फिलहाल तुम मुझे अपराधिनी समझते हो तो समझो। यह अपनी–अपनी समझ की बात है। लेकिन महाराज तो अपराधी नही हैं। उनकी धर्मसाधना मे बाधा डालने से क्या होगा? इसलिये मैं फिर कहती हू कि तुम राज्य स्वीकार कर लो।

अब भरत से नही रहा गया। वे कहने लगे – माता! तुमने जो–कुछ किया है वह सब मेरा ही पाप है। लेकिन अब उस पाप को बढाने से क्या लाभ है? मै अपने पाप का प्रायश्चित करूगा। राजसिहासन पर बैठने से पायश्चित्त नही होगा। इसके लिये कोई और उपाय करना होगा।

तुम अपनी माग का महत्त्व बतलाती हो मगर मेरे हृदय के काटे के अतिरिक्त तुमने मागा ही क्या है? तुम्हे न्याय धर्म और स्नेह – कुछ भी नही चाहिये। तुम अपने बेटे को राजा बनाकर राजमाता बनना चाहती हो और इसके लिये सभी कुछ त्यागने को तैयार हो! तुमने न्याय की हत्या की और सूर्यवश की परम्परा को भग करने मे भी कसर न रक्खी! तुम राज्य के लोभ मे धर्म न्याय और स्नेह की हत्या कर रही हो किन्तु राज्य इन्ही की रक्षा करने के लिये है। तुम्हारे लिये राज्य को स्वीकार करने का अर्थ यह स्वीकार करना है कि राज्य अन्याय अधर्म ओर वेर–वैमनस्य के लिए है। क्या ससार को यही सब सिखाने के लिये मै राजा बनू? तुम्हारे वर के द्वारा राज्य लेने का फल यह होगा कि लोग कहेगे – हमे भी वही रीति करनी चाहिये जो भरत के यहा से निकली है। सब लोग बडे कहलाने वालो को ही आदर्श मानते हें और उन्ही के पीछे–पीछे चलते है। अगर में राज्य लूगा तो लोग यही कहेगे कि भरत बडे भाई को निकाल कर स्वय राजा बन बेठा है। जब भरत ने ऐसा किया तो हम क्यो चूके? हम भी भाई का अधिकार क्यो न छीन ले? ऐसी स्थिति [illegible] ही धर्म बन जायगा। क्या मै राज्य लेकर [illegible] को धर्म के रूप

मे स्थापित करू ओर न्याय तथा औचित्य का गला घोट दू? माता! क्या सचमुच तुम यही चाहती हो? क्या तुम यही चाहती हो कि ससार मुझे धिक्कारे?

वरदान अच्छे के लिए होता है। पर मुझ पापी के लिये तुम्हारा वर भी अभिशाप बन गया है। जो अमृत माना जाता हे वह मेरे लिए विष हो गया! यह दैव की विचित्र लीला है!

माता! अगर तुझे राजमाता बने बिना चैन नही पडता था तो मुझसे कहती तो सही। राजमाता बनने की लिये राम का राज्य छीनने की क्या आवश्यकता थी? मैं तो अनेक राज्य स्थापित करने की क्षमता रखता हू। भरत इतना असमर्थ नहीं था कि तुझे राम का राज्य छीनना पडता। मैं बिना युद्ध किए भी राज्य प्राप्त कर सकता था और भुजाओ मे युद्ध करने का बल भी था। मगर तुमने राज्य के लिए ऐसा कर्म किया है कि सारा ससार मुझे धिक्कार रहा है। माता! तू जरा सूर्य की ओर तो देख वह क्या कह रहा हे? वह चिल्ला कर कह रहा है कि तूने सूर्यवश का कलकित कर दिया! वह कहता हे – मुझे राहु द्वारा जो कलक लगता हे वह तो जल्दी ही मिट जाता हे परन्तु तूने सूर्यवश को ऐसा कलक लगाया है जो कभी नही मिटने का। तूने ऐसा अमिट कलक लगाया हे और फिर कहती है कि मेंने क्या बुरा किया हे! में ऐसा राज्य नही लूगा। धिक्कार हे ऐसे राज्य को ओर इस स्वार्थमय ससार को।

कैकेयी से इस प्रकार कहते–कहते भरत का हृदय भर गया ओर आखो से आसू बहने लगे। उस समय शत्रुघ्न भी वही खडे थे। वे केकेयी से कहने लगे – माता! आपने भ्राता की बात सुनी हे उस पर आप भली–भाति विचार कीजिए। सुबह का भूला साझ को घर आ जाय तो भूला नही कहलाता। अब भी समय हे। भूल हो जाना बडी बात नही हे मगर विवेकी जन हठ छोड कर उसे सुधार लेते हैं। इसी मे कल्याण हे। अपनी भूल को सुधार लेना ही बिगडी बात को बनाना हे। समय निकलने पर फिर कुछ न बनेगा।

माता! आप राज्य को भोग–सामग्री समझती हे। अगर हम भी ऐसा ही मान ले तो हमारे लिए ओर प्रजा के लिए यह रोग बन जायगा। फिर सभी लोग यह समझते कि हमारा जन्म भोग के लिए हुआ हे धर्म के लिये नही। वास्तव मे मनुष्य का जन्म भोगो को भागकर पुण्य क्षीण करन के लिए नही हे बल्कि पुण्य ओर धर्म मे वृद्धि के लिए ह। पिताजी म धर्मभाव न हाता ता

वे आपको वर क्यो देते? राम मे धार्मिकता न होती तो वे राज्य क्यो त्यागते? पिताजी धर्म के बिना दीक्षा क्यो लेते? लक्ष्मण धर्म का महत्त्व न समझते तो राम के साथ अकारण वन क्यो जाते? माता! इन सब धार्मिक कार्यो पर, भरत को राजा बना कर आप पानी फेरना चाहती हो! मेरा नाम शत्रुघ्न है। शत्रु को दण्ड देने के लिए आपने मेरा यह नाम रक्खा है लेकिन मैं आज स्वय अपने को अपराधी और सूर्यवश का कलक मानता हू। इसीलिये यह तलवार लो और मुझे तथा भरत भैया को यथेष्ट दण्ड दो।'

भरत और शत्रुघ्न की बाते सुनकर कैकेयी को कुछ–कुछ होश हुआ। वह हतप्रभ–सी होकर सोचने लगी – यह सब क्या है! मैने क्या सचमुच ही अनर्थ किया है? मैंने जिसके लिये इतना किया, उनकी मति न्यारी है। राम, लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न की मति एक है। चारो भाई अभिन्न–हृदय है। सब का हृदय एक हैं। मैं क्या इनके हृदय के टुकडे कर रही हू? मैं कैसी पापिनी हू कि आज अपने पति, पुत्र और प्रजा–सब की आखो से गिर गई हू। हाय! मै कही की नही रही! मेरे नाम पर अमिट कलक की कालिमा पुत गई।

शत्रुघ्न की बात समाप्त होने पर भरत कहने लगे – माता! तुमने राज्य माग लिया है तो तुम जानो। चाहे स्वय राज्य करो, चाहे किसी को भी दे दो। मुझे यह नही चाहिये। मैं उसी ओर जाऊगा, जिस ओर राम और लक्ष्मण गये हैं।

सत्याग्रह की विजय

इस प्रकार सत्याग्रह और दुराग्रह के बीच मे लम्बा सघर्ष चला। पहले दुराग्रह ने सत्याग्रह को खूब तपाया किन्तु सत्य के सामने दुराग्रह की एक न चली। वह चूर–चूर हो गया। भरत के सत्याग्रह ने कैकेयी के दुराग्रह को पराजित कर दिया। कैकेयी पश्चात्ताप की आग मे झुलसने लगी। उसकी बुद्धि पलट गई। वह सोचने लगी – अब मुझे क्या करना चाहिये? मुझे क्या पता था कि राम के बिना काम नही चल सकता। मैंने सोचा था कि मेरा एक पुत्र राजा और दूसरा प्रधान बन जाएगा। मगर मेरा यह भारी भ्रम था। इस भ्रम का निराकरण पहले हो गया होता तो यह नौबत न आती! अब में न इधर की रही न उधर की। सभी तरफ घोर मुसीबत हे! लेकिन अब भी समय है। अब भी बिगडी बात बन सकती है। महाराज के चरणो मे गिर कर क्षमा माग लू और राम को मना लाऊ तो सब सुधर जायगा। बस यही करना उचित है।

मे स्थापित करू और न्याय तथा औचित्य का गला घोट दू? माता! क्या सचमुच तुम यही चाहती हो? क्या तुम यही चाहती हो कि ससार मुझे धिक्कारे?

वरदान अच्छे के लिए होता है। पर मुझ पापी के लिये तुम्हारा वर भी अभिशाप बन गया है। जो अमृत माना जाता है वह मेरे लिए विष हो गया! यह दैव की विचित्र लीला है!

माता! अगर तुझे राजमाता बने बिना चैन नही पडता था तो मुझसे कहती तो सही। राजमाता बनने की लिये राम का राज्य छीनने की क्या आवश्यकता थी? मैं तो अनेक राज्य स्थापित करने की क्षमता रखता हू। भरत इतना असमर्थ नही था कि तुझे राम का राज्य छीनना पडता। मैं बिना युद्ध किए भी राज्य प्राप्त कर सकता था और भुजाओ मे युद्ध करने का बल भी था। मगर तुमने राज्य के लिए ऐसा कर्म किया है कि सारा ससार मुझे धिक्कार रहा है। माता! तू जरा सूर्य की ओर तो देख वह क्या कह रहा है? वह चिल्ला कर कह रहा है कि तूने सूर्यवश का कलकित कर दिया! वह कहता हे – मुझे राहु द्वारा जो कलक लगता है वह तो जल्दी ही मिट जाता हे परन्तु तूने सूर्यवश को ऐसा कलक लगाया है जो कभी नही मिटने का। तूने ऐसा अमिट कलक लगाया है और फिर कहती है कि मैंने क्या बुरा किया हे! मे ऐसा राज्य नही लूगा। धिक्कार है ऐसे राज्य को और इस स्वार्थमय ससार को।

केकेयी से इस प्रकार कहते–कहते भरत का हृदय भर गया ओर आखो से आसू बहने लगे। उस समय शत्रुघ्न भी वही खडे थे। वे केकेयी से कहने लगे – माता! आपने भ्राता की बात सुनी हे उस पर आप भली–भाति विचार कीजिए। सुबह का भूला साझ को घर आ जाय तो भूला नही कहलाता। अब भी समय हे। भूल हो जाना बडी बात नही हे मगर विवेकी जन हठ छोड कर उसे सुधार लेते ह। इसी मे कल्याण हे। अपनी भूल को सुधार लना ही विगडी वात को वनाना हे। समय निकलने पर फिर कुछ न वनेगा।

माता! आप राज्य को भोग–सामग्री समझती हे। अगर हम भी एसा ही मान ल ता हमारे लिए ओर प्रजा के लिए यह रोग बन जायगा। फिर सभी लाग यह समझते कि हमारा जन्म भोग के लिए हुआ हे धर्म क लिये नही। वास्तव म मनुष्य का जन्म भोगा को भागकर पुण्य क्षीण करन के लिए नही ह वल्कि पुण्य आर धर्म म वृद्धि क लिए ह। पिताजी म धर्मभाव न हाता ता

वे आपको वर क्यो देते? राम मे धार्मिकता न होती तो वे राज्य क्यो त्यागते? पिताजी धर्म के बिना दीक्षा क्यो लेते? लक्ष्मण धर्म का महत्त्व न समझते तो राम के साथ अकारण वन क्यो जाते? माता! इन सब धार्मिक कार्यो पर भरत को राजा बना कर आप पानी फेरना चाहती हो! मेरा नाम शत्रुघ्न है। शत्रु को दण्ड देने के लिए आपने मेरा यह नाम रक्खा है लेकिन मैं आज स्वय अपने को अपराधी और सूर्यवश का कलक मानता हू। इसीलिये यह तलवार लो और मुझे तथा भरत भैया को यथेष्ट दण्ड दो।

भरत और शत्रुघ्न की बाते सुनकर कैकेयी को कुछ-कुछ होश हुआ। वह हतप्रभ-सी होकर सोचने लगी – यह सब क्या है! मैने क्या सचमुच ही अनर्थ किया है? मैंने जिसके लिये इतना किया, उनकी मति न्यारी है। राम, लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न की मति एक है। चारो भाई अभिन्न-हृदय है। सब का हृदय एक हैं। मैं क्या इनके हृदय के टुकडे कर रही हू? मैं कैसी पापिनी हू कि आज अपने पति पुत्र और प्रजा-सब की आखो से गिर गई हू। हाय! मैं कही की नही रही! मेरे नाम पर अमिट कलक की कालिमा पुत गई।

शत्रुघ्न की बात समाप्त होने पर भरत कहने लगे – माता! तुमने राज्य माग लिया है तो तुम जानो। चाहे स्वय राज्य करो चाहे किसी को भी दे दो। मुझे यह नही चाहिये। मैं उसी ओर जाऊगा, जिस ओर राम और लक्ष्मण गये हैं।

सत्याग्रह की विजय

इस प्रकार सत्याग्रह और दुराग्रह के बीच मे लम्बा सघर्ष चला। पहले दुराग्रह ने सत्याग्रह को खूब तपाया किन्तु सत्य के सामने दुराग्रह की एक न चली। वह चूर-चूर हो गया। भरत के सत्याग्रह ने कैकेयी के दुराग्रह को पराजित कर दिया। कैकेयी पश्चात्ताप की आग मे झुलसने लगी। उसकी बुद्धि पलट गई। वह सोचने लगी – अब मुझे क्या करना चाहिये? मुझे क्या पता था कि राम के बिना काम नही चल सकता। मैंने सोचा था कि मेरा एक पुत्र राजा और दूसरा प्रधान बन जाएगा। मगर मेरा यह भारी भ्रम था। इस भ्रम का निराकरण पहले हो गया होता तो यह नोबत न आती! अब में न इधर की रही न उधर की। सभी तरफ घोर मुसीबत है! लेकिन अब भी समय है। अब भी बिगडी बात बन सकती हे। महाराज के चरणो मे गिर कर क्षमा माग लू और राम को मना लाऊ तो सब सुधर जायगा। बस यही करना उचित हैं।

कैकेयी की आत्मग्लानि

कैकेयी घबराई हुई राजा दशरथ के पास पहुची। उसने गिडगिडा कर कहा – महाराज! मेरा अपराध हुआ, मैं मोह मे पड गई थी। मोह के कारण ही यह भयानक भूल कर बैठी हू । मैंने कुबुद्धि के कारण राम और भरत मे भेद किया परन्तु अब मालूम हुआ कि उनमे भेद हो ही नही सकता। भेद करने की मेरी कुचेष्टा असफल हुई है। मुझे इस असफलता के लिये कोई खेद नही है। खेद इस बात का है कि दुर्बुद्धि आई क्यो और मैंने यह कुचेष्टा की क्यो? अपनी असफलता पर तो बल्कि सतोष है। मेरा भाग्य अच्छा था कि मेरी कुचेष्टा सफल नही हुई। सफल होती तो युग–युग की जनता जब आपका और राम का यश गाती तो मेरे नाम पर थूके बिना न रहती। इस प्रकार मेरा वर मागना मेरे लिए शाप हो गया और मेरी असफलता ही वर बन गई है। में अपने कृत्य के लिए अन्त करण से पश्चात्ताप करती हू। आपको मैंने बडी व्यथा पहुचाई है। आप उदार हैं। राज्य देने वाले क्षमा भी दे सकते हें। कृपा करके क्षमा दीजिये। आपका क्षमादान वरदान से भी अधिक आनन्दप्रद होगा। में राम से भी क्षमा याचना करूगी। मैं अब समझ गई हू कि राम के बिना ससार का उद्धार नहीं हो सकता। मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं भरत को साथ लेकर राम के पास जाऊ ओर उन्हे मना लाऊ। मे अनुनय–विनय करूगी ओर उन्हे लोटा लाऊगी। आपका दिया वर तो पूरा हो ही चुका हे! अतएव आज्ञा देने मे आप सकोच न करे।

कैकेयी की विनम्रतापूर्ण ओर पश्चात्तापयुक्त वाणी सुनकर दशरथ को कितना सन्तोष हुआ होगा यह कहना कठिन हे। उनका मुरझाया हुआ चेहरा एकदम प्रफुल्लित हो गया। हृदय भर आया। वे कहने लगे – प्रिये! मेरे लिए राम ओर भरत पहले भी सरीखे थे ओर अव भी वेसे ही हे। चाहे राम राजा हो या भरत मेरे लिये एक ही बात हे। मगर जिस ढग से यह व्यवस्था हुई थी उससे परिवार मे अशाति फेल गई हे! मुझे इसी बात का खेद हे। लेकिन अन्त मे तुम्हारी सद्‌बुद्धि जाग्रत हो गई हे। यह अत्यन्त प्रसन्नता का विषय ह। अव राम राजा हो तो भरत राजा हें ओर भरत राजा हो तो राम राजा हें। जव दोनो एक हें तो कान राजा हे ओर कोन नही यह प्रश्न ही खडा नही होता। राम लोट आय तो अच्छा हे न लोटे ता भी कोई हर्ज नही। फिर भी अगर तुम राम क पास जाना चाहती हो तो जाओ। मरी अनुमति हे। मेरे लिये एक–एक क्षण भारी हा रहा हे। जल्दी लोटना जिरास मे दीक्षा ले सकू।

सारी अयोध्या मे यह खबर फैल गई कि जिसकी करतूत के कारण राम को वन जाना पडा था वही कैकेयी उन्हे लौटा लाने के लिए जा रही है। कैकेयी के अनुकूल परिवर्तन से सर्वत्र हर्ष छा गया। लोग कहने लगे – भरत ने राज्य ले लिया होता तो गजब हो जाता। उन्होने राज्य न लेकर कैकेयी का पाप धो डाला। आखिर तो राम के भाई है इतनी सदबुद्धि क्यो न हो।

कैकेयी राम के पास जाने को तैयार हुई। राजा के पास उनके सामत उमराव आदि बैठे नवीन परिस्थिति पर विचार कर रहे थे। उस समय रानी भी वहा आ पहुची। उसने फिर पश्चात्ताप करके पाप धोया। जिसका हृदय पहले मलीन था वह कैकेयी जो–कुछ कह रही है उस पर विचार करने से मालूम होगा कि पाप अस्थिर है और इसलिये उसे नष्ट करने का पयत्न करना चाहिए। पाप से घबराने से लाभ नही है उसे नष्ट करना ही लाभदायक है।

कैकेयी कहती है – मैने बिना विचारे काम कर डाला, इसी कारण मै अपयश का पात्र बनी हू। ससार मे अपयश के काम तो अनेक हैं परन्तु जिस काम को करके मैंने अपयश पाया है वैसा करने वाला कोई विरला ही मिलेगा। मैने बडा ही भयकर कर्म किया है। राम क्या हैं, यह मैं नही समझ सकी थी। मैंने मूढता के वश राम से बैर किया। इस कुकृत्य के कारण मेरे लिए स्वर्गलोक मृत्युलोक और पाताललोक मे कही पर भी स्थान न रहा । जो राम आपको मुझको भरत को और सारी प्रजा को प्रेम करते हैं मैं उन्ही के अनिष्ट का कारण बन गई। सीता जैसी साधुशीला सती को जाते देखकर भी मेरा हृदय न पिघला। इतना भयानक पाप और कौन कर सकता है? जिस उद्देश्य से प्रेरित होकर मैंने यह सब किया था वह उद्देश्य पूरा नही हुआ। आज यह सोचकर मुझे खेद नही प्रसन्नता है। भरत ने राज्य स्वीकार कर लिया होता तो प्रायश्चित्त करने की प्रेरणा ही मेरे अन्त करण मे न जागी होती। मेरा पाप बढ जाता और मै अन्त तक गिरती ही चली जाती।

देवी कौशल्या और सुमित्रा को मै बुरी समझती थी। मुझे उन पर अनेक प्रकार के सदेह थे लेकिन वे कितनी सरल–हृदया है कितनी उदार हैं पर मुझे अब ज्ञान पडा है। मै समझती हू कि कोशल्या से उत्पन्न पुत्र ही इस प्रकार राज्य त्याग कर वन जा सकता है और सुमित्रा का सपूत ही अपना स्नेह दबाकर तथा अपनी प्रचण्ड वीरता को रोक कर चुपचाप अपने ज्येष्ठ बन्धु के साथ जा सकता है। मेरे हृदय का पाप धुल गया।

इस प्रकार कहकर कैकेयी कोशल्या ओर सुमित्रा से कहने लगी – मेरी बहिनो! मैं अपना मुह दिखाने के योग्य नही हू। मैंने आपको पुत्र–विछोह का दारुण दु ख पहुचाया हे। मैं तुमसे क्षमायाचना करती हू। मैंने पहले भी तुम्हारा सच्चा स्वरूप समझा था ओर आज फिर समझ रही हू। बीच मे मैं मूढ बन गई थी। आपकी सहिष्णुता उदारता ओर वत्सलता देखकर मेरा पाप भाग रहा है।

में अब वन के लिए प्रस्थान कर रहीं हू। आप सब अपनी शुभकामनाए मेरे साथ रखिए जिससे मे अपने प्रयत्न मे सफलता पा सकू। में राम से अनुनय–विनय करूगी। उनका हाथ पकडकर खीच लाऊगी! उन्हे लाकर ही छोड़ूगी।

केकेयी की आत्मग्लानि देखकर दशरथ सोचने लगे – मैं कहता था कि भरत राज्य स्वीकार न करके मेरी दीक्षा मे रुकावट डाल रहा है पर उसके कार्य का महत्त्व अब मेरी समझ मे आया। भरत ने राज्य ले लिया होता तो रानी का सुधार होना सभव नहीं था और रानी के न सुधरने से यह वश दूषित हो जाता।

कैकेयी का वन–गमन

राम आत्मा के सिवाय ओर पदार्थो को अस्थिर मानते थे। इसी कारण वे किसी भी वाह्य पदार्थ मे आसक्त नही थे। वन जाते समय की उनकी छवि का वर्णन करते हुए तुलसीदासजी ने कहा हे–

प्रसन्नता या न गताऽभिषेकत ।
तथा न मम्लौ वनवास दु खत ।।
मुखाम्वुजश्री रघुनन्दनस्य मे।
सदाऽस्तु तन्ममजुल मगलप्रदा।।

अर्थात जिनके मुख–कमल की शोभा राज्याभिषेक का समाचार पाकर प्रसन्न नही हुई ओर वनवास क कठोर दु खा से मलीन नही हुई वह राम की मुखश्री मर लिए मगलदायिनी हो।

राम राज्याभिषक के समाचार से प्रसन्न आर वनवास क समाचार से अप्रसन्न नही हुए। इसका कारण यही ह कि व सासारिक पदार्थो म आसक्त नही थ। उनकी दृष्टि म सभी पदार्थ अरिथर थे। रासार की वस्तुआ को रिथर

समझने वाला राज्य पाने की खुशी मे फूल कर कुप्पा हो जाता है वन मे भटकने की बात सुनकर सिकुड जाता है। वह राज्य को इष्ट और वनवास को अनिष्ट समझता है। मगर राम की अनासक्ति ऐसी बढी हुई थी कि राज्यभोग और वन–वास उनके लिए समान–से थे। जो पुरुष आत्मा से भिन्न किसी भी वस्तु मे ममत्व भाव धारण करता है, समझना चाहिए उसके अन्त करण मे आत्मा के पति दृढ आस्था ही उत्पन्न नही हुई। राम की आस्था आत्मा के विषय मे समीचीन थी और इसी कारण सुख–दु ख उन्हे प्रभावित नही कर सकते थे।

राम के विचार की निर्मलता का प्रभाव कैकेयी पर कैसे न पडता? इसी पभाव के कारण कैकेयी की बुद्धि निर्मल हो गई। वह राम को लाने के लिए रवाना हुई। पजा मे से बहुत–से लोग साथ जाने के लिए तैयार हुए, मगर उन्हे किसी प्रकार समझा दिया गया। कैकेयी भरत और मन्त्री को साथ लेकर रथ पर सवार होकर वन की ओर चल दी।

रास्ते मे रानी अनेक सकल्प–विकल्पो की उलझन मे उलझी रही। कभी सोचती – अगर राम ने आना स्वीकार न किया तो मैं अयोध्या मे कैसे मुख दिखलाऊगी? लोग मुझे अकेली लौटती देखकर क्या सोचेगे, क्या कहेगे? शायद लोग यह भी कह दे कि इसके हृदय मे कपट है।

कोई कहेगा – पहले तो राम को वन भेज दिया और अब मनाने चली। भला राम अब कैसे लौटते?

रानी कभी पश्चात्ताप करने लगती – मेरे समान अभागा और कौन होगा जिसे राम प्रिय न लगे हों? मैंने राम जैसे नर–रत्न को अवध से उसी प्रकार बाहर निकाल दिया जैसे पागल आदमी किसी अमूल्य रत्न को फेक देता ह। लेकिन अब गई–गुजरी पर विचार करने से क्या लाभ है?

कभी रानी विचार करने लगती – राम लक्ष्मण ओर सीता मुझे किस रूप म दिखाई देंगे? जब में पहुचूगी वे क्या कर रहे होंगे? मुझे देखकर क्या विचार करेंगे? लक्ष्मण मुझे खरी–खोटी सुना दे तो क्या आश्चर्य हे? में किस प्रकार उनसे अयोध्या लाटने के लिए कहूगी? सुकुमारी सीता इस भयावने वन [illegible] प्रकार दिन काटती होगी? अगर राम अयोध्या लोटने को तेयार हो [illegible] र दोष का प्रायश्चित्त हो जायगा आर अयोध्या मे नवीन जीवन [illegible] प्रजा अपने बीच से गये हुए राम जसे रत्न को पाकर निहाल हो

इस प्रकार मन–ही–मन विचार करती हुई अनमनी रानी केकेयी भरत ओर राज्यमन्त्री के साथ चली जा रही थी। भाति–भाति क वन्य दृश्य कही सुन्दर ओर कही भयावने थे। पर केकेयी भूत ओर भविष्य की चिन्ताओ मे ऐसी निमग्न थी कि वर्तमान उसके सामने कुछ था ही नही। वन का कोई दृश्य उसके चित्त को प्रफुल्लित या कपित नही कर पाता था।

चलते–चलते भरत ने वन के एक स्थान को शात ओर प्रसन्न देखकर अनुमान किया कि राम का वनवास यहीं–कही होना चाहिये। इस स्थान के वृक्ष फलो से ओर फूलो से समृद्ध हैं। परस्पर वेर रखने वाले जन्तु भी यहा भाई की तरह प्रेम से रहते हैं। यह सब राम का ही प्रभाव होना चाहिए।

भरत ने मत्री से कहा – अग्रज यही–कही होने चाहिए।

मत्री ने भरत का समर्थन किया। उसने कहा – आपका अनुमान सत्य हे। मैंने पहले भी राम का ऐसा ही प्रभाव देखा था। जान पडता हे राम कहीं समीप ही होगे। इस प्रकार विचार कर वे राम की खोज करने लगे।

इधर सीता ने भरत के तेज चलते हुए रथ से उडती हुई धूल देखकर सोचा – यह क्या हे? वह कुछ भयभीत हो गई। उस समय राम ओर लक्ष्मण सो रहे थे ओर सीता जाग रही थी। सीता ने सोचा – यद्यपि सोते को जगाना उचित नही हे लेकिन सकट की सभावना होने पर ऐसा करना अपराध नही हे। अतएव लक्ष्मण को जगाकर धूल दिखा देनी चाहिए जिससे वह सावधान हो जाए। सीता ने ऐसा ही किया। लक्ष्मण ने जागकर उडती हुई धूल दखी ओर साथ ही अवध की ध्वजा भी उन्हे दृष्टिगोचर हुई। यह देख लक्ष्मण न विचार किया – भरत हमे वन मे असहाय समझ कर परास्त करने आ रह हें। वह अपने राज्य को निष्कटक बनाना चाहते हें। पर भरत का इरादा पूरा नही हो सकता। एक भरत तो क्या सारा ससार सग्राम–भूमि मे मेरे सामने नही ठहर सकता। दखते–देखते ही म भरत का ओर उसकी सना का सहार कर डालूगा।

अव राम भी जाग चुक थे। लक्ष्मण को इस प्रकार वीरा क योग्य तज स भरा हुआ देखकर राम ने कहा – लक्ष्मण भरत पर तुम्हारा सदह करना यथार्थ नही। इस प्रकार का सदेह करन म भरत का दाप नही ह यह तुम्हार उग्र स्वभाव का ही दाप ह। भरत के हृदय म इस प्रकार का पाप हाना सभव नहीं ह। पृथ्वी स्थिरता का समुद्र मर्यादा का ओर चन्द्रमा शीतलता का छाड

दे फिर भी भरत अपनी मर्यादा नही छोड सकता। भरत अपना धर्म नही छोडेगा। भरत के चित्त मे पाप आने की सभावना ही नही की जा सकती। तुम्हारा सदेह वृथा है।

इस प्रकार राम के समझाने पर लक्ष्मण शान्त हुए। भरत, राम की ओर बढे और राम लक्ष्मण तथा सीता भरत की ओर चल पडे।

कथानकों की भिन्नता

राम के वनवास से पहले वर–याचना के विषय मे तुलसी रामायण और जैन रामायण के कथन मे जो भिन्नता है, उसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। वनवास के बाद की कुछ घटनाए भी दोनो जगह कुछ भिन्न–भिन्न हैं। पद्मचरित (जैन रामायण) के अनुसार भरत ने महाराज दशरथ, राम कौशल्या और प्रजाजनो के आग्रह को टालना उचित नही समझा। अतएव उन्होने अत्यन्त अनमने भाव से दु खितचित्त होकर राज्य करना स्वीकार कर लिया और दशरथ की दीक्षा का मार्ग साफ कर दिया। दशरथ दीक्षित हो गए। भरत राजा होकर भी सदैव खिन्न, उदास और विहल रहते। राम के वन–वास का काटा उनके हृदय मे चुभता ही रहता था। उन्हे कभी शाति नही मिलती थी। उधर महारानी अपराजिता (कौशल्या) और सुमित्रा भी पुत्रो के वियोग और पति के वियोग के कारण बेहद दुखी रहने लगी। उनकी आखो से आसुओ की अखण्ड धारा बहती ही रहती। यह देखकर भरत को राज्यलक्ष्मी विष के समान दारुण प्रतीत होती थी सर्वत्र शोक और चिन्ता का वायु–मण्डल बना रहता। यह दशा देखकर महारानी कैकेयी से नही रहा गया। बिना किसी की प्रेरण ही एक दिन उन्होने भरत से कहा–

पुत्र! राज्य त्वया लब्ध प्रणिताखिलराजकम्।
पद्मलक्ष्मणनिर्मुक्तमलमेतन्न शोभते।
विना ताभ्या विनीताभ्या कि राज्य का सुखासिका?
का वा जनपदे शोभा तव का वा सुवृत्तता?।।
राजपुत्र्या सम बालौ क्व तौ याता सुखेधितौ?
विमुक्तवाहनौ मार्गे पाषाणादिभिराकुले।।
मातरौ दु खिते एते तयोर्गुणसमुद्रयो ।
विरहे गाऽऽपता मृत्युमजस्रपरिदेवते।।

तस्मादानय तौ क्षिप्र सम ताभ्या महासुख ।
सुचिर पालय क्षोणीमेव सर्व विराजते ।।
व्रज तावत्त्वमारुह्य तुरग जातरहस ।
आव्रजाम्यहमप्येषा सुपुत्रानुपद तव ।।

पुत्र! तुम्हे राज्य प्राप्त हो चुका और तुमने सब राजाओ को अपने सामने नत–मस्तक भी कर लिया है लेकिन राम और लक्ष्मण के अभाव मे यह लेश मात्र भी शोभा नही देता। राम–लक्ष्मण सरीखे विनीत पुत्रो के अभाव मे यह राज्य तुच्छ और निस्सार है। उनके बिना किसी को चैन नही मिल सकता। सभी दुखी हैं। सारा देश शोभाहीन हो गया है जैसे अवध की सारी शोभा उन्ही के साथ चली गई है। उनके निर्वासित रहते तुम्हारे सदाचार मे भी वट्टा लगता है। लोग सोचते होगे – बडे भाई को देश से बाहर निकाल कर भरत आप राजा बन बैठा है।

कदाचित् इस बदनामी की उपेक्षा भी कर दी जाय, तो भी सुख मे पले–पोसे ओर बडे हुए दोनो बालक राम-और लक्ष्मण सुकुमारी राजकुमारी सीता के साथ कहॉ भटकते फिरेगे? उनके पास कोई सवारी नही हे। वन का मार्ग ककरो पत्थरो ओर काटो से व्याप्त है। ऐसे बीहड रास्ते पर वे पेदल कैसे चलते होगे?

इनके अतिरिक्त उनकी माताए भी अत्यन्त दुखी है। अपने पुत्र पर माता का स्नेह होता ही हे ओर जब पुत्र अत्यन्त गुणी हो – गुणो के सागर हो तो उन पर विशेष स्नेह होना स्वाभाविक ही हे। ऐसे पुत्रो का वियोग होना वास्तव मे बडे ही दु ख की वात हे। वहिन अपराजिता ओर सुमित्रा निरन्तर आसू वहाती रहती हें। अगर यही हालत रही तो वे प्राण त्याग देगी। यह बडा अनर्थ होगा।

इसलिए तुम उन्हे ले आओ। उनके साथ रहकर पृथ्वी का चिरकाल तक पालन करो। इसी मे कल्याण हे। यही करना चाहिए। ऐसा करने पर ही राज्य भी शोभा देगा।

हे सुपुत्र! तू तेज चलने वाले घोडे पर सवार होकर रवाना हो जा। म भी तेरे पीछे–पीछ आती हू।

माता का रुख वदला हुआ देखकर भरत की प्रसन्नता का पार न रहा। उन्ह आर चाहिए ही क्या था? भरत तत्काल तेयार हो गये। एक हजार घाड अपन साथ लकर वे उसी आर रवाना हुए जिस ओर राम गए थे। सीता क कारण धीम–धीम चलते हुए राम ओर लक्ष्मण वहुत दिना म जहा पहुच थे

भरत ऐसी तेजी से चले कि छह दिनो मे वहा पहुच गये। वहॉ पहुचकर और राम की खोज करके वे राम के पास पहुचे।

जब भरत पहुचे तब राम एक सरोवर के किनारे ठहरे हुए थे। ज्यो ही भरत की दृष्टि राम पर पडी वे घोडे से उतर पडे। पैदल चल कर राम के सामने गये। राम और लक्ष्मण ने भरत को आते देखा तो वे भी प्रेम से विह्वल होकर भरत की ओर बढे। बीच ही मे समागम हो गया। भरत राम के पैरो मे गिर पडे। स्नेह और भक्ति की अधिकता के कारण वे मूर्च्छित हो गये। राम ने बडे पेम से भरत को उठाया और सावचेत किया।

जैन रामायण के वर्णन मे पहली भिन्नता यह है कि कैकेयी को वैसे निष्ठुर रूप मे चित्रित नही किया गया है जैसा कि तुलसी–रामायण मे। इसके अतिरिक्त भरत को देखकर लक्ष्मण को जो आशका हुई बतलाई गई है, उसमे भाइयो का परस्पर अविश्वास होना प्रगट होता है। मगर हम देखते है कि भरत जैसे साधु–स्वभाव के भाई पर इस प्रकार की आशका करने का कोई कारण नही था। कैकेयी के मन मे भेदभाव अवश्य उत्पन्न हुआ था, मगर भरत के किसी भी व्यवहार से यह नही जाना गया था कि उनके चित्त मे राम के प्रति लेश–भर भी अप्रीति हे। ऐसी स्थिति मे लक्ष्मण की आशका अस्वाभाविक ही कही जा सकती है। इतना ही नही इससे चारो भाइयो के अविच्छेद्य स्नेह–सबध का आर्दश जो रामायण का एक महत्त्वपूर्ण भाग है खडित हो जाता है। लेकिन तुलसीदासजी ने लक्ष्मण की आशका का वर्णन सभवत उनकी उग्र प्रकृति का दिग्दर्शन कराने के लिए किया है। इसमे सन्देह नही कि राम अगर हिम की भाति शीतल थे तो लक्ष्मण आग की तरह गरम थे। इसी कारण तुलसी–रामायण के अनुसार हमने उक्त घटना का उल्लेख कर दिया हे।

मेरा उद्देश्य रामायण की कथा सुनाना नही हे किन्तु रामायण की कथा का आधार लेकर उससे मिलने वाली शिक्षा की ओर श्रोताओ का ध्यान आकृष्ट करना हे। इसीलिए मेने बहुत–सी घटनाओ का परित्याग भी कर दिया ह और जिस–किसी राम–कथा मे जो बात शिक्षाप्रद दिखाई दी वह ग्रहण कर ली है। आदि से अन्त तक की पूरी राम–कथा जानने की इच्छा रखने वालो को अन्य ग्रथ देखने चाहिए।

राम और भरत का मिलाप

राम बडे प्रेम के साथ भरत से मिले। भरत ने उन्हे प्रणाम किया। राम ने भरत को अपने गले से लगा लिया। भरत की आखे आसू बहा रही थी। राम जब वन के लिए रवाना हुए थे तो चिन्ता और विषाद के कारण भरत रोये थे लेकिन इस समय विशुद्ध भ्रातृ-प्रेम ही उनके रुदन का कारण था।

राम ने कहा – भरत! कठिन से कठिन स्थिति आ पडने पर भी पुरुषो को रोना शोभा नही देता। धैर्य के साथ सब परिस्थितियो का सामना करना चाहिए। रोने से कठिनाई कम नही होती वरन अधिक बढ जाती है, क्योकि उसका सामना करने का साहस जाता रहता है। हम लोग कई दिनो मे आपस मे मिले है। यह समय हर्ष का है। रोने का क्या कारण है?

भरत – 'हे भ्राता! आप मुझे आश्वासन देते हैं मगर मेरे जैसे पापी को धेर्य हो तो कैसे? आप मुझ अभागे को अयोध्या मे छोडकर चले आये हें। ऐसी दशा मे मे सन्तोष केसे पा सकता हू? आपके वन मे आने पर सिह सर्प आदि हिसक पशुओ मे प्रेम-भाव उत्पन्न हो गया है सूखे सरोवरो मे जल आ गया हे और जिन वृक्षो मे फल-फूल नही थे वे भी फलो-फूलो से मनोहर दिखाई देने लगे हें। आप सब को सुख-शाति पहुचाने वाले है। लेकिन मैं आपकी अशाति का कारण बन गया हू। मेने आपको बहुत कष्ट पहुचाया हे! मेरे समान पापी ओर कोन होगा? किन्तु आप महानुभाव है क्षमासागर हें विवेकशाली हे। मे आपसे क्षमा की याचना करता हू। कृपा कर मुझे क्षमा का दान दीजिए। मेरे हृदय मे रचमात्र भी कपट नही हें। आपने जिस साचे मे मुझे ढाला हे उसी मे मे ढला हू। मेरे अन्त करण मे पाप नही हे। इसके लिए आपको छोड ओर किसे साक्षी बनाऊ? मेरे लिए तो आप ईश्वर के तुल्य हे। फिर भी में अपने परोक्ष अपराध का दण्ड लेना चाहता हू। मुझे दण्ड दीजिए।

राम – निर्मल मे मल की अमृत म विष की ओर कुलीन मे अकुलीनता की आशका करने वाला ही तुम्हारे चित्त मे पाप की कल्पना कर सकता हे। तुम मरे भाई हा। म तुम्हारे निष्पाप को भली-भाति जानता हू। मुझे विश्वास ह कि तुम्हार अन्त करण म कपट का लेश भी नही ह। तुम सर्वथा निर्दोष हा आर निर्दोष को दण्ड लन की आवश्यकता नही होती।

महाराणा प्रताप क भाई शक्तिसिह किसी अनवन क कारण राणा क विरोधी वन कर शत्रु स मिल गय थे। लेकिन जब प्रताप सकट म पड गय आर शत्रुआ न उनका घात करना चाहा ता शक्तिसिह उनकी रक्षा करन का

दोड पडे। राणा ने समझा भाई शत्रुता का बदला लेने के लिए मुझे मारने आया है। मगर शक्तिसिह ने कहा – मैं आपको मारने नही आया हू, मगर रक्षा करने आया हू। मुझे ऐसा जघन्य पातकी न समझिये कि मैं सकट मे पडे भाई की सहायता न करके हत्या करने को उद्यत हो जाऊ। अन्तत शक्तिसिह और राणा प्रतापसिह का पेमपूर्ण मिलाप वैसा ही हुआ जैसे भरत और राम का हुआ था।

सच्चा भाई अपने भाई के प्रति सदेव स्नेह ही रखेगा। अगर कोई यह समझता है कि मेरे प्रेम करने पर भी मेरा भाई मुझ से प्रेम नही करता तो ऐसा समझने वाले को अपना हृदय टटोलना चाहिए। अगर उसके हृदय मे मैल नही है तो भाई के दिल मे भी मैल नही टिक सकता।

भरत कहते हैं – प्रभो! आपके वन–आगमन से सारी प्रजा दुखी है। वह आपके लौटने की प्रतीक्षा मे व्याकुल है। आपके चले आने से मेरे सिर पर बडा कलक लग गया है। वह कलक आपके लौटे बिना नही धुल सकता। अगर आप मुझ पर कृपा रखते हैं तो मेरी निष्कलकता सिद्ध करने के लिये अयोध्या पधारिये।

राम – अनुज भरत! तुम्हे देखकर मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ है। तुम्हारा प्रेम ओर विनय देखकर मुझे रोमाच हो आता है। तुमने जो–कुछ कहा हे वह तुम्हारे योग्य ही है। मैंने रूष्ट होकर अयोध्या का परित्याग नही किया है और न अब रुष्ट हू। पिताजी की प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए मैं स्वेच्छा से यहा आया हू। ऐसी दशा मे तुम्हारे सिर दोष मढने वाले लोग भूल करते हे। जो तुम्हे पहचानते हें वे कभी दोषी नही ठहरा सकते। तुम्हारा सद्व्यवहार ही तुम्हारी निर्दोषता का प्रमाण है।

अब रही मेरे लोटने की बात तो यह सत्य है कि मेरे लौटने से तुम्हे प्रसन्नता होगी माता ककेयी का भी अन्तर्दाह मिट जायगा और प्रजा को भी सतोष होगा। लेकिन बन्धु ऐसा करने से सूर्यवश पर अमिट कलक लग जायगा। जेसे त्यागे हुए राज्य को फिर ले लेने से पिताजी की निन्दा होगी उसी प्रकार मेरे अवध चलने से मेरी निन्दा होगी। लोग यही कहेगे कि पिता ने भरत को राज्य दिया था किन्तु पिता के दीक्षा लेते ही राम ने लौटकर भरत से राज्य ले लिया।

मोह से ग्रस्त होकर कर्तव्य–अकर्तव्य का सही निर्णय नही होता। मध्यस्थ भाव धारण करके यह निर्णय करना चाहिए। मेरा अवध को लोटना

हितकर न होगा बल्कि हानिप्रद होगा। इसलिए तुम आग्रह मत करो और प्रजा का पालन करो।

इसी समय केकेयी आ पहुची। उन्हे देखकर जानकी ओर लक्ष्मण के साथ राम सामने गये। सबने उन्हे प्रणाम किया। केकेयी ने आसू बहाते हुए सव को आशीष दी।

कैकेयी का पश्चात्ताप

कैकेयी को आते ही मालूम हो गया कि राम अयोध्या लौटने को तेयार नही हो रहे हैं। तब वह सोचने लगीं– अपराध सारा मेरा ही है। जब तक में उसका प्रायश्चित्त नही कर लूगी तब तक राम कैसे लौटेगे? यह सोच कर वह बोली – वत्स राम! मोह की शक्ति बडी प्रबल है। उसने मुझे मूढ बना दिया था। मोह के वश होकर ही मैंने यह अपराध कर डाला है। अब मेरी आखे खुल गई हैं। भरत के लिये राज्य माग कर मैं तुम्हारे वनवास का कारण वन गई, इसका मेरे अन्त करण मे बहुत पश्चात्ताप है। तुम्हारे बिना अयोध्या सूनी हे। अब दूसरा विचार मत करो ओर शीघ्र ही अयोध्या लौट चलो।

तुम्हारे वन मे आने से मैंने तुम्हे लक्ष्मण को ओर सीता को ही नही गवाया भरत को भी गवा दिया है। भरत का अब मेरे ऊपर वैसा स्नेह नही रहा। उसकी चेष्टाए जडवत् हो रही हैं। वह रात–दिन उदास ओर सतप्त रहता हे। प्रजा के पालन मे उसका चित्त नहीं लगता। अगर तुम भरत को मेरा वनाए रखना चाहो ओर उसमे पहले जेसी क्रियाशीलता देखना चाहो तो अवध को लोट चलो। तुम्हारे लोटने से ही भरत भरत बना रह सकता है। मेने भरत के लिये अपयश सहन किया धिक्कार का पात्र बनी स्वर्ग त्याग कर नरक जाना स्वीकार किया फिर भी भरत मेरा नही बना। तुम्हारी राज्य–प्राप्ति से कोई नाराज नही था। नाराज थी तो अकेली में ओर वह भी भरत की भलाई सोचकर। इतना करने पर भी आज देखती हू कि भरत मे मानो जान ही नही हे। जंसे जगल से पकड कर लाया हुआ हरिण नगर मे सशक ओर भयभीत–सा रहता हे भरत भी वेसा ही बना रहता हे। वह सारे ससार को भय ओर शका की दृष्टि से देखता हे। अतएव तुम अयोध्या लोटकर भरत को नि शक आर निर्भय वनाने के साथ उसे जीवित कर दा।

ककेयी वेसे तो शुद्ध हीरे के समान थी किन्तु मोह ने उसे घेर लिया था। माह का वेग जव कम हुआ तो वह फिर अपने असली रूप मे आ गई। इसी कारण वह राम के पास पहुच कर अपने कृत्य का पश्चात्ताप कर रही ह।

कैकेयी कहती है – 'चन्दन शीतलता देने वाली वस्तु हे लेकिन मेरे लिये वह भी सताप देने वाला सिद्ध हुआ। चन्दन मे ताप देने का गुण होता तो वह सभी को ताप पहुचाता। मगर वह सिर्फ मुझे ही सताप दे रहा है। अतएव स्पष्ट है कि वह मेरे ही शरीर की गरमी है, चन्दन की नही।

कोई सम्मानीय व्यक्ति अच्छे वस्त्र और आभूषण पहने हो लेकिन जिससे वह सम्मान पाने का अधिकारी है उससे सम्मान न पाकर अपमान पाये तो उस समय उसे अपने गहने–कपडे भी बुरे मालूम होते है। अपमान के कारण उसे अपनी सजावट दु खदायी प्रतीत होने लगती है।

कैकेयी कहती है – मैं आत्मग्लानि के दु ख के कारण इतनी सतप्त हू कि श्रीखड भी मेरे लिये दाह का ही कारण बन गया है। कोई कह सकता है कि पहले ही सोच–विचार कर काम क्यो नही किया! ऐसा किया होता तो आज क्यो आत्मग्लानि सहन करनी पडती? पर इसका उत्तर मै दे चुकी हू। मे अनुचित मोह मे फस गई थी उसी मोह के फल आज मेरे आगे आ रहे है और आग बनकर जला रहे है। मै उस आग मे झुलस रही हू।

शास्त्र मे कहा है कि उत्तम जाति वाला और उत्तम कुल वाला ही अपने पाप की आलोचना कर सकता है। नीच जाति और नीच कुल वाला उलटा अपने पापो को छिपाने का प्रयत्न करना है। कैकेयी जातिमान् थी, इस कारण वह अपना पाप स्पष्ट रूप से स्वीकार कर रही है।

वह कहती हे – मैं अपने अपराध का दण्ड अनिच्छा से भोग चुकी हू और इच्छा से अब भोगूगी। मैं अपराध से नही डरती तो उसके दण्ड से मुझे क्यो डरना चाहिये? अपराध का निस्तार उचित दड भोगने से ही होगा। अपराध का दण्ड न लेना अपने प्रति जगत की घृणा लेना होगा। लोग गगा ओर वरुण से अपना पाप मिटाना चाहते हे पर मे इस तरह नही मिटाना चाहती। मै प्रायश्चित्त लेकर ही निष्पाप बनना चाहती हू।

हे राम! मे तुमसे अधिक क्या कहू? कहते लज्जा होती है फिर भी कहती हू कि अगर मुझे चिर–नरक मिलता हो तो मे अपना पाप धोने के लिये उसे भी स्वीकार करने के लिये तैयार हू। मैं नरक मे जाने मे भी देर नही करूगी। मे ही देर करूगी तो फिर नरक मे कोन जायेगा? मुझे डरना था तो पाप से डरना था। जब पाप से ही नही डरी तो नरक मे जाने से डरने की क्या आवश्यकता?

आप नरक को अच्छा समझते हे या बुरा समझते हे? नरक का नाम [illegible] ही आपके रोगटे खडे हो जाते ह। पर यह नही जानते कि नरक

धाम है, जहा आत्मा अपने पापो का प्रक्षालन करता हे। नरक मे आत्मा अपने चिरकालीन पापो का प्रायश्चित्त करता है ओर पाप के भार से हल्का हो जाता हे। विवेकवान् पुरुष नरक जाने योग्य कार्यो से डरता है नरक से नहीं डरता। अशुचि से दूर रहना उचित है, फिर भी अशुचि का स्पर्श होने पर शुद्धि करनी पडती है। शुद्धि से डरने वाला अपवित्र बना रहता है। यही बात नरक के विषय मे समझनी चाहिये। अगर आप नरक से डरते हैं तो नरक मे जाने योग्य कार्यो से बचे। अगर ऐसे कार्यों से नही बचते हे तो नरक मे जाने से क्यो घबराते हैं! वहा उन पापो का प्रायश्चित्त होगा। इसके अतिरिक्त घबराने से होगा भी क्या? मनुष्य के कार्य उसे नरक मे ले ही जाएगे फिर कायरता दिखाने से लाभ क्या होगा?

केकेयी कहती हे – मै नरक मे जाऊगी तब भी मेरे पाप का प्रतिशोध होना कठिन हे क्योकि मैंने घोर पाप किया हे। कोई यह कह सकता हे कि अब में राम को लेने के लिए आई हू, इस कारण मुझे नरक नही वरन स्वर्ग मिलेगा। लेकिन स्वर्ग मेरे लिये महान दण्ड होगा। वह पाप को बढाने वाला हे ओर पुण्य को क्षीण करने वाला हे। इस दृष्टि से वह नरक से भी बुरा हे। में ऐसे स्वर्ग को लेकर क्या करूगी?

कवि का उद्देश्य ये सब बाते केकेयी के मुख से कहलाकर जनता को उपदेश देना हे। इसका तात्पर्य यह हे कि कैकेयी ओर भरत जेसे भी जब अपने दुष्कृत की निन्दा करते हें तो पापो मे डूबे रहने वालो को कितनी आत्मनिदा करनी चाहिये? आप भरत या केकेयी जेसे भी नही हे लेकिन उनके बराबर भी अपने पापो की निन्दा करते हे? उन्होने अपना पाप दबाया नही उसे खुल कर प्रकट किया हे। इसी कारण वे बडे हुए। ऐसी दशा मे पाप को भीतर छिपा कर रखने वाला महान् केसे बन सकता हे?

ककेयी कहती हे – वत्स! मेरा कलेजा कितना कठोर हो गया था कि मने तुम्हे राज्य स वचित किया ओर तुम्ह वन आना पडा। तुम्ह वन आते दख कर भी हृदय पिघला नही उस स्वर्ग पाने का अधिकार ही क्या हे? इतनी कठारता भी अगर नरक म न ले जाएगी ता नरक का दरवाजा ही बन्द हा जायगा। अगर तुम यह कहना चाहा कि मरा पाप समाप्त हा गया हे ता फिर तुम्ह वन म रहने की क्या आवश्यकता हे? तुम्हारे अयाध्या लोटने पर ही अपना पाप समाप्त हाना समझ सकती हू। तुम न लाटग ता कोन मानगा कि मरा पाप चला गया?

जब लोग किसी महात्मा का उपदेश सुनते है या चरित्र पढते है तो पाय सोचने लगते है कि मैने बडा पाप किया है। उनमे से कई अपने-आप को धिक्कारने लगते है। उनकी पश्चात्ताप की भावना स्थायी नही रहती। उनके जीवन पर उस पश्चात्ताप का कोई व्यावहारिक असर नही पडता। परिणाम यह होता है कि जिस कृत्य के लिए वे पश्चात्ताप करते हैं वही कृत्य थोडी देर बाद फिर करने लगते हैं। उनकी आत्मा उज्ज्वल नही हो पाती। इसके विपरीत जिनके हृदय पर गहरे पश्चात्ताप का स्थायी पभाव पडता है वे पाप के भार से हल्के हो जाते है। वे भविष्य मे पाप से बचने की भरसक चेष्टा तो करते ही है, साथ ही भूतकाल के पापो को भी धो डालते है। पश्चात्ताप वह अग्नि है, जिसमे पाप का मेल भस्म हो जाता है और आत्मा स्वर्ण की भाति निर्मल बन जाती है। भक्तजन कहते है-

प्रभुजी! मेरो मन हठ न तजे!
जिस दिन देऊ नाथ! सिख बहु-विध
करत स्वभाव निजै।
ज्यो युवती अनुभवति प्रसव अति
दारुण दु ख उपजै।
मै अनुकूल बिसारि शूल शठ
पुनि खल-पतिहि भजै।
लोलुप अति भ्रमत गृह-पशु ज्यो,
शिर पदत्राण बजै।
तदपि अधम विचरत तेहि मारग
कबहू न मूढ तजै।
हौं हाहस्यो करि जुगत बहुत विध
अतिशय प्रबल अजै।
तुलसीदास मन वश होई
जब प्रेरक बरसै।

भक्त कहते हैं - प्रभो मेरा मन ऐसा हठीला है कि रात-दिन समझाने पर भी वह नही समझता है। पशु और स्त्री जैसे भूल करते हैं मेरा मन भी वैसी ही गलती करता है। स्त्री जब सन्तान का प्रसव करती है और प्रसव की पीडा से बेचैन हो जाती है तो सोचती है कि अब कभी गर्भ धारण नही करूगी। मगर थोडे दिनो बाद ही वह अपने निश्चय को भूल जाती है और पति का भजन लाती है। जेसे कुत्ता घर-घर भटकता है और जहा जाता है

वहा मार खाता हे। फिर भी वह उसी घर मे जा पहुचता हे। वह घरो मे जाना नही छोडता। मेरा मन भी इन्ही के समान हे। वह वार–वार उसी ओर जाता हे जहा न जाने का उसने विचार किया था। कुत्ता तो रोटी का टुकडा पाने के लोभ से भटकता हे परन्तु मन कुत्ते से भी गया–वीता होता हे। वह रोटी की आवश्यकता न होने पर भी उस मार्ग मे जाता हे जहा जूते पडते हैं। मन को रोकने के लिये मेने अनेक उपाय किये हे फिर भी वह अपना हठ नहीं छोडता। उसका हठ तभी छूट सकता हे जव हे प्रभो! तू मन मे बस जाय। मन म तू वस जायगा तो मन वश मे हो जायगा।

अगर आपका मन भी ऐसा ही हठी हो तो आपको भी परमात्मा से यही प्रार्थना करनी चाहिये। आपको भी केकेयी की तरह अपने पाप का प्रायश्चित्त करना चाहिये।

कडा सोने का ही होता हे फिर भी कडा अशाश्वत ओर सोना शाश्वत कहलाता हे यद्यपि सोना भी पयार्य ही हे ओर इस कारण वह भी अशाश्वत ही हे तथापि वह कडे आदि पर्यायो का कारण हे ओर स्थूल पयार्य रूप हे। इस कारण उसे द्रव्य कहते हे। सुवर्ण का असली द्रव्य–रूप पुद्गल ह। सोना द्रव्य ओर कडा पर्याय हे लेकन लोग द्रव्य को भूल कर पर्याय को ही पकड रहे ह। पर्याय को ही पकडने ओर द्रव्य को भूल जाने के कारण ही आज मनुष्य–मनुष्य मे अनुचित भेद माना जाता हे। लेकिन किसी भी प्रकार के एकान्त से कल्याण नही हो सकता। पर्याय के साथ शाश्वत द्रव्य को समझने वाला सम्पत्ति ओर विपत्ति को समान समझता हे।

राम वन मे ह। एक प्रतिष्ठित ओर सुख मे पले हुए पुरुष के लिये वन–फल खाना भूमि पर सोना ओर छाल के वस्त्र पहनना कितना कष्टकर होता हागा? एसी स्थिति मे पडा हुआ पुरुष अगर पर्याय को ही पकड ल ओर द्रव्य को भूल जाय ता उसक दु ख की सीमा तक नही रहगी। लेकिन राम दु ख से बच रहे। इसका कारण यही ह कि व द्रव्य का भली–भाति जानते थ – उन्हान शाश्वत सत्य का पहचान लिया था। अपनी इसी जानकारी क कारण व इस स्थिति म भी आनन्द अनुभव करत थ।

ककयी कहती ह – तुम शीघ्र अयाघ्या लाट चला। सर करन क लिय या मुनि–पद धारण करक तुम वन म नही आय हा। भरत का दु ख मिटान क उद्दश्य म तुम्ह यहा आना पडा ह। मगर अव तुम्हारे यहा रहन स भरत का दु ख हा रहा ह अतएव फिर एक बार उसका दु ख मिटाआ आर अयाध्या चला! दखा म कसी निठुर हू कि मन तुम्ह एस कष्ट म डाल दिया।

मैं अब तक भरत को ही सबसे अधिक प्रिय मानती थी। मोह–वश मैं समझती थी कि भरत ही मेरा पुत्र है और वही मुझे अधिक प्रिय होना चाहिए। अपने पिय के लिए सब–कुछ त्याग किया जाता है। इसलिए मैने सोचा कि अगर मैंने भरत के लिए वरदान मे राज्य न मागा तो फिर वर मागना ही किस काम का? लेकिन भरत ने मेरी भूल मुझे सुझा दी है। भरत ने अपने व्यवहार से मुझे सिखा दिया है कि अगर मै तुम्हे पिय हू तो राम मुझे प्रिय हैं। तू मेरे पिय को मुझसे छुडाकर मुझे सुखी कैसे कर सकती है? यह राज्य तो राम के सामने नगण्य है। मुझ से राम को दूर करना तो मेरे साथ शत्रुता करना है। राज्य मुझे प्यारा नही राम प्यारे है। 'इस प्रकार भरत के समझाने से मैं समझ गई हू कि अपने प्रिय राम के बिछुडने से भरत निष्प्राण–सा हो रहा है। राम! तुम मेरे पिय के प्रिय हो तो मेरे लिए दुगुने प्रिय हो। अब मुझे छोडकर अलग नही रह सकते। यह निश्चय है कि तुम्हारे रहते ही भरत मेरा रह सकता है। तुम्हारे न रहने पर भरत भी मेरा नही रह सकता।

लोग तुच्छ चीजो के लिए भी परमात्मा को भूलते नही हिचकते। कैकेयी ने तो पहले से धरोहर रखे वर से ही अपने बेटे के लिए राज्य मागा था लेकिन ससार मे ऐसे भी लोग हैं जो धर्मात्मा कहलाते हुए भी पाप करते है। निज की स्त्री को कष्ट मे डालकर परस्त्री के गुलाम बनते हैं और अपनी जाति तथा अपने धर्म को लजाते हैं। पर की सम्पत्ति को हडप जाने वालो की क्या कमी है? ऐसे लोगो को उस कैकेयी के समान भी कैसे कहा जा सकता है जिसने भरत के लिए राज्य मागा था? कैकेयी ने अपनी बुराई की जिस प्रकार निन्दा की है उसी प्रकार निन्दा करके अपनी–अपनी बुराइयो को छोडने से ही कल्याण हो सकता है।

कैकेयी कहती हे –'राम! में नहीं जानती थी कि भरत मेरा नही राम का हे। अगर मे जानती कि में राम की रहू तभी भरत मेरा है नही तो भरत भी मेरा नही हे तो तुम्हारा राज्य छीनने का पयत्न ही न करती। मुझे क्या पता था कि भरत राम को छोडने वाली माता को छोड देगा।

अगर आपके माता–पिता परमात्मा का परित्याग कर दे ओर स्थिति ऐसी हो कि आपको माता–पिता या परमात्मा मे से किसी एक को ही चुनना पडे तो आप किसे चुनेगे? माता–पिता का परित्याग करेगे या परमात्मा का? परमात्मा को त्यागने वाला चाहे कोई भी क्यो न हो उसका त्याग किये बिना कल्याण नही हो सकता।

केकेयी फिर कहने लगी – मुझे पहले नही मालूम था कि तुम भरत को अपने से भी पहले मानते हो। काश! मैं पहले समझ गई होती कि तुम भरत का कष्ट मिटाने के लिए इतना महान् कष्ट उठा सकते हो! ऐसा न होता तो तुम्हारा राज्य छीनने की हिम्मत किसमे थी खास तौर पर जब लक्ष्मण भी तुम्हारे साथ थे। तुमने महाराज के सामने भरत को और अपने–आपको दाहिनी और बाई आख बतलाया था। यह सच्चाई मैं अब भली–भाति समझ सकी हू। मैं अब जान गई हू कि भरत को तुम प्राणो से अधिक प्रेम करते हो।

लोग एक बडी भूल यह कर बैठते हैं कि स्वार्थ के समय उन्हे ईश्वर याद नही रहता। उस समय ईश्वर पर उन्हे भरोसा नही रहता। कैकेयी यही भूल बतला रही है। उसके पश्चात्ताप से प्रगट होता हे कि स्वार्थसाधन के समय ईश्वर को भूलना नही चाहिए। जिस परमात्मा को त्रिभुवनाथ और देवाधिदेव की पदवी दी गई है उसके लिए प्रकट मे कुछ हानि सहनी पडती हो तो भी उसे हानि नही समझना चाहिए। जिनके मन मे परमात्मा के प्रति अपरिमित प्रीति हे वे सब प्रकार की हानि सहन करके भी परमात्मा को नही त्याग सकते। ऐसे भक्तो लिए घोर से घोर हानि भी बडे–से–बडा लाभ बनकर प्रगट होती है।

कैकेयी कहती है – वत्स! तुम्हारे राज्य–त्याग से सूर्यवश के एक नर–रत्न की परीक्षा हुई हे। तुम्हारे वन आने पर लक्ष्मण ने भी सुख त्याग करके वन मे आना पसद किया। भरत ने राजा होने पर भी क्षण भर के लिए भी शाति नही पाई ओर शत्रुघ्न भी बेहद दु खी हो रहा हे। चारो भाइयो मे से एक भी अपना स्वार्थ नही देखता हे। सभी एक दूसरे को सुखी करने के लिए अधिक–से–अधिक त्याग करने को तेयार हें सब का सब पर अपार स्नेह हे। तुम्हारा यह भ्रातृप्रेम मेरे कारण ही ससार पर प्रकट हुआ हे। इस दृष्टिकोण से मेरा पाप भी पुण्य–सा हो गया हे ओर मुझे सतोष दे रहा हे। भले ही मेने अपनी ओर से अप्रशस्त कार्य किया किन्तु फल उसका यह हुआ हे कि चिरकाल तक लोग भ्रातृप्रेम के लिए तुम लोगो को स्मरण करेंगे। कीचड कीचड ही हे किन्तु कमल उत्पन्न होने पर कीचड की शोभा बढ जाती हे। मेरा अनुचित कृत्य भी इस प्रकार अच्छा हो गया। मे अच्छी या बुरी जेरी भी हू, सो हू। मगर तुम्हारा अन्त करण सर्वथा शुद्ध हे। मेरी लाज आज तुम्हारे हाथ म हे। अयाध्या लाटन पर ही उसकी रक्षा होगी अन्यथा मरे नाम पर जो धिक्कार दिया जा रहा ह वह बन्द न होगा।

कैकेयी का पाप पकट हो चुका था पर आपका पाप क्या छिपा रहेगा? अगर ऐसा है तो फिर यह पार्थना करने की आवश्यकता ही क्या है कि – हे पभो! मुझ पापी का उद्धार कर। शास्त्र मे कहा है कि आस्रव अच्छे निमित्त मिलने पर सवर के रूप मे पलट सकता है। इसलिए कैकेयी कहती है कि मैंने की तो थी बुराई मगर उस मे से भलाई निकली।

कैकेयी फिर कहती है – मुझे नही मालूम था कि राम ऐसा त्यागी है कि राज्य को तुच्छ समझ कर जगल का रास्ता पकड सकता है। मै यह भी नही जानती थी कि भरत को राम इतने प्रिय है। लक्ष्मण ऐसा वीर है कि उससे सारा ससार काप सकता है, लेकिन वह इतना सीधा बन जायगा, यह तो कल्पना ही नही की जा सकती थी। शत्रुघ्न का भी क्या पता था कि उसमे भी तुम्ही लोगो के गुण भरे हैं। और यह सुकुमारी सीता, जो महाराज जनक के घर उत्पन्न हुई और अवधेश के घर विवाही गई, वनवास के योग्य वस्त्र पहनने मे अपना गौरव और आनन्द मानेगी यह भी कौन जानता था? आज सीता को देखकर हृदय भर आता है। और जब इसे देखती हू तो मैं बेचैन हो जाती हू कि इसे भी कष्ट मे डाल दिया!

मनुष्य से भूल हो जाना अचरज की बात नही है। भूल हो जाती है मगर भूल को सुधारने मे सकोच करना पतन का कारण है। भूल सुधारते समय की ऊची भावना मनुष्य को ऊचा उठा देती है।

कैकेयी मे अपनी भूल को सुधारने का साहस था। इसी कारण उसने बिगडती बात बना ली। वह कहती है – राम! मै तर्क नही जानती। मुझे वाद–विवाद करना नही आता। मैं राजनीति से अनभिज्ञ हू। मेरे पास सिर्फ अधीर हृदय है। अधीर हृदय लेकर तुम्हारे सामने आई हू मैं माता हू और तुम मेरे लडके हो फिर भी में प्रार्थना करती हू कि अब अयोध्या लौट चलो। 'गई सो गई अब राख रही को'। बीती बात को बार–बार याद करके वर्तमान की रक्षा न करना अच्छा नही है।

हे राम! इस परिवर्तनशील ससार मे एक–सा कौन रहता है। सूर्य भी पतिदिन तीन अवस्थाए धारण करता है। आसुरी वृत्ति मिटकर दैवी वृत्ति हो जाती ह आर दवी वृत्ति आसुरी वृत्ति के रूप मे बदल जाती हे। इस प्रकार सभी–कुछ बदलता रहता हे तो फिर तुम्हारी इस स्थिति मे क्यो परिवर्तन नही होगा? मेरे भाग्य ने मेरे साथ छल किया था इससे मुझे अपयश मिला। लेकिन मेरा भाग्य अब बदल गया है आर इसी कारण मुझे अपनी भूल सूझ पडी हे। अब मैं पहले वाली ककेयी नही।

कई लोग पहले तो जोश मे आकर घोर कुकृत्य कर डालते हें ओर जव जोश ठडा पडता हे तो अपने प्राण देने को उतारू हो जाते हैं। लेकिन प्राण देने से कोई लाभ नही हो सकता। पाप आत्मा करता हे ओर प्राण छोड देने पर भी आत्मा का त्याग नहीं हो सकता। हा, धेर्य रखकर उचित उपाय करने से अवश्य ही पाप का क्षय हो जाता हे। गाव जला देने वाले, गौ–हत्या वाल–हत्या और स्त्री–हत्या करने वाले भी उसी भव मे मुक्ति प्राप्त कर सके हे। जिस हृदय से पाप किया, उसी हृदय से मोक्ष पा सके सिर्फ उसकी अवस्था बदल गई। वाल्मीकि लुटेरे कहे जाते हें। यहा तक कहा गया हे कि वे नारद तक के कपडे छीनने को तेयार हो गए थे और कहते थे कि पहले मारूगा फिर कपडे लूगा। ऐसे वाल्मीकि भी सुधर गये तो औरो का सुधरना कोन वडी बात है?

कैकेयी कहती है – वत्स! जो होना था सो हो चुका। मुझे कलक लगना था, सो लग गया। अब इस स्थिति का अन्त लाना तुम्हारे हाथ मे हे। मेरा कलक कम करना हो तो मेरी बात मानकर अयोध्या लौट चलो। तुमने मुझे वहिन कोशल्या के समान ही समझा है तो मेरी बात अवश्य मान लो।

राम का उत्तर

महारानी केकेयी ने अत्यन्त सरल ओर स्वच्छ हृदय से अपने पाप के लिये पश्चात्ताप किया। राम ने सोचा – 'माता को हृदय का गुबार निकाल लेने दिया जाय तो उनका जी हल्का हो जायगा' अतएव वे चुपचाप उनका कहना सुनते रहे। केकेयी का कथन समाप्त हो गया।

राम ने मुस्कराते हुए कहा – माताजी! बचपन से ही आपका मातृसुलभ स्नेह मुझ पर रहा हे ओर अब भी वह वेसा ही हे। आप माता हें म आपका पुत्र हू। माता को पुत्र के आगे इतना अधीर नही होना चाहिए। आपने ऐसा किया ही क्या हे जिसके लिए इतना खेद ओर पश्चात्ताप करना पडे। राज्य कोई वडी चीज नही हे और वह भी मेरे भाई के लिए ही आपने मागा था किसी गर क लिए नही। जब मे ओर भरत दो नही हे तो यह प्रश्न ही नही उठता कि कान राजा हे ओर कोन नही? इतनी साधारण–सी वात का वहुत अधिक महत्त्व मिल गया हे। आप चिन्ता न करे। मेरे मन मे तनिक भी मल नहीं हे। भरत न एक जिम्मेदारी लकर मुझे दूसरा काम करने क लिय स्वतन्त्र कर दिया ह। मर लिए यह प्रसन्नता की वात हे। मेरा सोभाग्य ह कि मरा छोटा भाई भरत इस योग्य सावित हुआ कि वह मेर कार्य म सहायक हो सका।

'माताजी! जहा मा–बेटे का सबध हो वहा इतनी अधिक लम्बी बातचीत की आवश्यकता ही नही है। आपके सम्पूर्ण कथन का सार यही है कि मैं अवध को लौट चलू। लेकिन यह बात कहना माता के लिए उचित नही है। आप शात और स्थिरचित्त होकर विचार करे कि ऐसी आज्ञा देना क्या ठीक होगा? आपकी आज्ञा मुझे सदैव शिरोधार्य है। माता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का साधारण कर्तव्य है। लेकिन माता! तुम्ही ने मुझे पाल–पोस कर एक विशिष्ट साचे मे ढाला है मुझे इस योग्य बनाया है। इसलिए मै तो आपकी आज्ञा का पालन करूगा ही मगर निवेदन यह है कि आप उस साचे को न भूले जिसमे आपने मुझे ढाला है। मेरे लिए एक ओर आप और दूसरी ओर ससार है। सारे ससार की उपेक्षा करके भी मै आपकी आज्ञा मानना उचित समझूगा।

नैपोलियन भी कहा करता था कि ससार का प्यार और ससार की बडाई एक ओर है और माता का प्यार तथा माता की बडाई दूसरी ओर है। इन दोनो मे से माता का प्यार और माता की बडाई का ही पलडा भारी होगा।

राम कहते हैं – माताजी! आपका आदेश मेरे लिए सबसे बडा है और उसकी अवहेलना करना बहुत बडा पाप होगा। लेकिन यह बात आप स्वय सोच ले कि आपका आदेश कैसा होना चाहिए! आप मुझ से अवध चलने को कहती हे यह तो आप अपनी आज्ञा की अवहेलना कर रही हैं। मैंने आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए ही वनवास स्वीकार किया है। क्या अब आपकी ही आज्ञा की अवहेलना करना उचित होगा? इस साचे मे आपने मुझे ढाला ही नही हे। रघुवश की महारानियाँ एक बार आज्ञा देती हैं, फिर उसका उल्लघन कदापि नही करती।

आप कह सकती हें कि क्या मेरा ओर भरत का आना भी निष्फल ही हुआ? लेकिन यह बात नही। आपका आगमन सफल हुआ हे। यहा आने पर ही आपको मालूम हुआ होगा कि आपका आदेश मेरे सिर पर हे। पहले आप सोचती होगी कि वन मे राम आदि दु खी हें यहा आने पर आपको मालूम हो गया कि हम तीनो यहा सुखी है। क्या आपको हम तीनो के चेहरे पर कही दु ख की रेखा भी दिखाई देती है? हमने ससार को यह दिखा दिया हे सुख अपने मन मे हे – वह कही बाहर से नही आता।

धन–वैभव आदि सुख–सामग्री होने पर भी बहुत–से लोगो को रोना पडता है। इसका कारण क्या हे? कारण यही ह कि उनके मन मे सुख नहीं

है। जब भीतर सुख नही होता तो बाहर की सुख–सामग्री ओर अधिक दु खदायी हो जाती है। कोई आदमी हजारो के आभूषण पहने हो ओर उस समय उसे लुटेरे मिल जाए तो वही आभूषण दु खप्रद सिद्ध होते हैं। इसके विपरीत अगर किसी फकीर को लुटेरे मिले तो उसे क्या चिता होगी? असली आनन्द तो तब है, जब लुटने की अवस्था मे भी वैसी ही मनोभावना बनी रहे जैसी धनप्राप्ति के समय होती है। शास्त्र मे कहा है कि महात्माओ को घास के सथारे पर जैसा आनन्द अनुभव होता हे वैसा चक्रवर्ती को भी न होता होगा। एक वर्ष का दीक्षित साधु भी सर्वार्थसिद्ध विमान के सुख को लाघ जाता है। इसका कारण यही है कि उसका मन उसके अधीन हो जाता है।

वस्तुत सुख और दु ख मानसिक सवेदनाए हैं। मन ही सुख–दु ख का सर्जक है। सुख की बाह्य सामग्री चाहे जितनी प्राप्त की जाय, सुख पूरा नही होगा। कोई–न–कोई अभाव खटकता ही रहेगा। अगर मन को सतुष्ट ओर मस्त बना लिया जाय तो अवश्य ही सुख की पूर्णता हो सकती है क्योकि जो–कुछ भी प्राप्त होगा उसी मे मन मस्त होकर रहेगा। इसी तथ्य को समझकर विवेकशील पुरुष सुख–सामग्री का परित्याग करके भी मानसिक सतोष का अद्भुत आनन्द उठाते है।

राम कहते हें – माता! यहा आकर आपने देख लिया है कि राम लक्ष्मण ओर जानकी दुखी नहीं हैं, वरन् सतुष्ट ओर सुखी हैं। इसलिए आपका आना निरर्थक नही हुआ। अगर अब भी आपको हमारे बात पर विश्वास न होता हो तो हम फिर भी कभी विश्वास दिला देगे कि हम प्रत्येक परिस्थिति मे आनन्दमय ही रहते हें – कभी दुखी नही होते। सूर्यकुल मे जन्म लेने वालो की यह प्रतिज्ञा होती हे कि वे प्राण जाते समय भी आनन्द माने लेकिन वचन–भग होते समय प्राण जाने की अपेक्षा अधिक दु ख माने। पिताजी ने भी यही कहा था। ऐसी दशा मे आप अयोध्या मे ले चलकर मेरे प्रण को भग करेगी ओर मुझे दु ख मे डालेगी? अगर आप सूर्यकुल की परम्परा को कायम रहने देना चाहे आर मेरे प्रण को भग न होने देना चाहे तो अयोध्या लोटने का आग्रह न करे। साथ–ही–साथ आत्मग्लानि की भावना का भी परित्याग कर दे। मै स्वेच्छा से ही वनवास कर रहा हू। इसमे आपका कोई दोष नही हे विशेषत इस दशा मे जबकि आप स्वय आकर अयोध्या लोटने का आग्रह करती हे आर मै वन मे रहना पसन्द करता हू, आपका दोष केसे हो सकता हे?

माता ! मैने जो–कुछ कहा है, स्वच्छ अन्त करण से कहा है। आप उस पर विश्वास कीजिए। अगर आपको मेरे कथन पर विश्वास न आता हो तो भरत से निर्णय करा लीजिये। भरत बतलावे कि प्रण का त्याग करना उचित है या राज्य का त्याग करना उचित है? मेरा कथन ठीक है या आपका कथन? भरत का निर्णय हमे मान्य होना चाहिए।

न्यायकर्ता पर बहुत बोझ आ पडता है। राम ने भरत पर न्याय का भार डाल दिया। अगर भरत मोहवश होकर यह निर्णय दे कि आपको अयोध्या लौट चलना चाहिए तो क्या हो? लेकिन भरत ऐसे नही थे कि स्वार्थ के खातिर न्याय को भुला दे। सच्चा मनुष्य वही है जो कठिन से कठिन प्रसग पर भी न्याय को याद रखता है और सत्य पर स्थिर रहता है।

राम ने भरत से कहा – भाई भरत! मैं तुम्ही को निर्णायक नियत करता हू। मैं अपना पक्ष तुम्हे समझाए देता हू। ध्यानपूर्वक सुन लो और उचित निर्णय देना।

कवि कहता है – राम हाथ जोडकर राजाओ से प्रार्थना करते हैं कि मैं सामान्य धर्म की मर्यादा बाधने के लिए जन्मा हू। इसलिए जब अवसर आवे, तब इस मर्यादा की रक्षा करना।

राम कहते है – सभी लोग विशेष धर्म का पालन नही कर सकते किन्तु सामान्य धर्म का पालन करना सभी के लिए आवश्यक है। सामान्य धर्म का पालन करने से ससार का कोई काम नहीं रुकता और आत्मा का पतन भी नही होता। उदाहरणार्थ सथारा ग्रहण करना विशेष धर्म है जिसका पालन सब नही कर सकते। लेकिन मास न खाना सामान्य धर्म है, इसका पालन करने से किसी का कोई काम नही रुकता ओर दुर्गति भी नही होती।

राम भरत से कहते हे – भरत तुम इस बात का खयाल रखकर निर्णय दो कि मै ससार मे क्या करने के लिए जन्मा हू, अर्थात मेरे जीवन का ध्येय क्या है? मुझे लोग मर्यादा–पुरुषोत्तम कहते हें। मर्यादा की रक्षा करना मेरा कर्तव्य हे ओर होना चाहिए। मे सामान्य धर्म की मर्यादा को दृढ बनाना चाहता हू ओर जगत को बताना चाहता हू कि सामान्य धर्म की मर्यादा सदा रक्षणीय हे।

ससार मे एक विकट तूफान आया हुआ हे। वह ओर कुछ नही फैशन का तूफान हे। कहावत हे–

सादगी आजादी फैशन की फासी।

सादगी के लिए राम ने वल्कल वस्त्र धारण किये थे पेदल चले थे ओर वन मे भटके थे।

राम ने तो इतना किया था परन्तु आप क्या करते है? आपको हाथ के वस्त्र पसद है या मिलो के? राम पेड की छाल इसलिये पहनते थे कि वह स्वतन्त्रता से मिल जाती थी ओर अपने ही हाथ से उसे वस्त्र के योग्य बनाया जा सकता था। लेकिन आपको तो मोटे वस्त्र भी नही सुहाते! आपको बारीक–से–बारीक वस्त्र चाहिए! कौन परवाह करता है कि इससे स्वाधीनता का घात होता है पाप अधिक होता है और सस्कार बिगडते हैं साथ ही कला का भी नाश होता है। हाथ से बनने वाले वस्त्रो मे अगर आटा लगा होगा तो मिल के कपडो मे चर्बी लगती है। अब सहज ही जाना जा सकता है कि आटा बुरा है या चर्बी बुरी है।

राम कहते है – भरत! मैं यहा सादगीमय जीवन बिताने आया हू और स्वय दु ख सहन करके दूसरो को सुख उपजाना चाहता हू।

जरा विचार कीजिए, सुख लेने से सुख होता है या सुख देने से सुख होता है? सुख दाता को है या याचक को? सुख वही दे सकता है जिसके पास सुख हो। जिसके पास जो वस्तु है ही नही वह दूसरो को किस प्रकार देगा? कहा भी है–

जगति विदितमेतद् दीयते विद्यमानम्।
न हि शशकविषाण कोऽपि कस्मै ददाति।।

अर्थात् यह बात ससार मे प्रसिद्ध है कि जो चीज मोजूद होती हे वही दी जाती हे। कोई किसी को खरगोश के सीग नही दे सकता।

राम कहते हे – दूसरो का दिया हुआ दु ख भी मेरे पास आकर सुख ही वन जाता हे उसी प्रकार जैसे सागर मे गिरी हुई अग्नि शीतल हो जाती हे। इस प्रकार दूसरे के पास जो दु ख था वह चला जाता हे ओर उसे मे सुख दे देता हू। महापुरुष दूसरे का दु ख लेने ओर उसे सुख देने के लिये सभी–कुछ त्याग देते हे। शास्त्र मे कहा भी हे–

चइत्ता भारह मास।

अर्थात शातिनाथ भगवान् ने ससार को सुख देने के लिए भरतखड का एकछत्र साम्राज्य त्याग दिया था।

राम कहते हें – मनुष्य को क्या करना चाहिए ओर किस प्रकार रहना चाहिए यह नाटक दिखाने के लिए म वन म आया हू। मे मानव जीवन का वह नाटक खलना चाहता हू, जो दुखी जना के लिए अवलम्बन रूप होगा। म मनुष्य क साथ मनुष्य का ओर मनुष्यता का सम्बन्ध जोडने यहा आया हू, सम्बन्ध ताडन क लिए नही आया। मरा काम वह नही हे जो दर्जी की केंची

का होता है वरन् मैं दर्जी को सुई का काम करने आया हू अर्थात सम्बन्ध को तोडने नही किन्तु जोडने के लिए आया हू। ससार रूपी वन मे बिना काम के झखाड खडे हैं उन्हे इसलिए छाटने आया हू कि बढने योग्य वृक्षो की वृद्धि मे बाधक न बने। मेरा उद्देश्य राजसी वैभव को भोगना नही और न मै भोग को जीवन का आदर्श बतलाना चाहता हू। मै आत्मा रूपी हस को मुक्ति रूपी मोती चुगाने के लिए प्रयत्नशील हू। ससार को आनन्द का असली मार्ग बताना मेरा जीवन मत्र है। इन बातो का ध्यान रखकर अपना निर्णय देना भरत! मैने अपने जीवन की साध तुम्हारे सामने प्रकट कर दी है। मुझे क्या करना चाहिए, इसका निर्णय करना तुम्हारा काम है।

रानी कैकेयी और भरत ने राम का वक्तव्य सुना। उनके वक्तव्य मे महापुरुष के योग्य तत्त्व और उन्हे उपस्थित करने की पद्धति देख कर दोनो दग रह गए।

राम और भरत का वार्तालाप

राम की बात सुनकर भरत सोचने लगे – 'राम का पक्ष इतना सुन्दर, युक्तिसगत और कल्याणकारी है कि उसे ध्यान मे रखते हुए माता के पक्ष का समर्थन करना कठिन हो गया है। अब मैं राम से घर लौटने के लिये कैसे कह सकता हू? किन्तु यह भी कैसे कहू कि आप वन मे ही रहिये?' इस प्रकार भरत बडे असमजस मे पड गए। थोडी देर मे धैर्य धारण करके वे कहने लगे – प्रभो! आपकी बताई बाते ससार का कल्याण करने वाली हैं। आप इन बातो को इसीलिये छोड जाना चाहते हैं कि ससार के लोग इनका अनुसरण करके अपना कल्याण कर सके। महापुरुष सदा नहीं रहते मगर अपना आचरण पीछे वालो के लिये छोड जाते हैं। इसीलिए आपके कथन को मैं सर्वांश मे स्वीकार करता हू। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि आप जो–कुछ भी करना चाहते हैं वह सब अवध मे बैठ कर नही हो सकता? क्या आप अवध से रुष्ट हैं? आपका जन्म वन मे नही हुआ अवध मे हुआ। फिर अयोध्या का त्याग करके वन का ही कल्याण करना कहा तक उचित है?

भरत ने इस प्रकार एक बडा सवाल पैदा कर दिया लेकिन सामने राम हैं। वे कहते है – भाई भरत? तुम्हारा कहना ठीक है और अर्थ से भरा हुआ है। अगर कोई राज्य करता हुआ अपना और जगत् का कल्याण न कर सकता हो तो उसे वन मे चले जाना चाहिये लेकिन ऐसी बात नही है। राज्य करते हुए भी अपना और दूसरो का लौकिक कल्याण किया जा सकता है।

भरत – 'तो फिर आपको अयोध्या लोटने मे क्या बाधा हे? आप राज्य भी कीजिये और स्व–पर कल्याण भी।

राम – मै सब राजाओ के लिए यह नीति नही बतलाता कि उन्हे राज्य करने से पूर्व वन जाना ही चाहिये। तुम मूल बात भूल रहे हो। अयोध्या मे रह कर राज्य–सचालन की नीति सिखलाने से ही मेरा काम पूरा हो सकता तो पिताजी मेरा राज्य तुम्हे क्यो देते ओर मुझे वन आने का विचार क्यो करना पडता? मेरी तरह सब राजाओ को वन जाने की आवश्यकता नहीं है मगर किसी को तो वन का भी कार्य करना चाहिये। अगर तुम्हारी नीति के अनुसार कोई भी वन न जाए तो उसका अर्थ यह होगा कि वन जाना बुरा हे। अगर वास्तव मे वन जाना बुरा होता तो पहले के अनेक राजा राज्य त्याग कर वन मे क्यो जाते? में राज्य त्याग कर वन मे आया हू। अब यदि फिर अयोध्या लौट चलू तो लोग यह सीखेगे कि वन जाना बुरा हे और जो–कुछ लाभ हे, सो राज्य करने मे ही हे। लोग कहेगे अगर वन जाने मे अच्छाई होती तो राम वन को त्याग कर अयोध्या क्यो लौटते?

कई लोग कहा करते है – साधु बनने मे क्या रक्खा हे? घर पर रह कर भी कल्याण किया जा सकता हे। मगर घर पर रह कर अगर कल्याण किया जा सकता हे तो साधु होना बुरा हे? क्या साधु बनकर विशेष कल्याण नही किया जा सकता? अगर साधु होने पर विशेष कल्याण की सभावना हे ओर साधु वनना बुरा नही हे तो साधु बनने का विरोध क्यो किया जाता है? इसके अतिरिक्त जब चार आश्रम बतलाये गये तो चोथे आश्रम का विरोध करने की क्या आवश्यकता हे? चारो आश्रम ओर चारो वर्ण होने पर ही ससार की सुव्यवस्था हो सकती हे।

इसीलिये राम कहते हे – अगर में अयोध्या लोट चलू तो सब यह समझेगे कि वन जाना बुरा हे। क्या निर्जन वन मे जाने पर भजन–चिन्तन ही सभव हे ओर कोई काम नही हो सकता! लोग समझते हें कि जो ससार का ओर कोई कार्य नही कर सकते वे ही वन मे जाकर ध्यान मोन जप तप आदि करते ह अर्थात ससार के सबध मे जो कायर हें उन्ही को वन मे जाना चाहिये। लेकिन वास्तव म यह विचार भ्रमपूर्ण हे। ससार को यह नीति बतलाने की आवश्यकता ह कि कोई केसा भी क्यो न हो एकान्त म निवास किये बिना उस निज–धर्म का पता नही लग सकता ओर निज धर्म का जाने बिना काई भी काम उचित रूप से नही हा सकता। निज–धर्म का ज्ञान न होने पर प्रत्यक काय म निर्बलता का अनुभव हाता हे! वस्तुत एकान्त का सवन किय बिना किसी म बड काम करन याग्य बल ओर बुद्धि नही आत।

भरत! राजाओ पर अपनी प्रजा का ही भार होता है किन्तु मेरे सिर पर ससार का भार है। यह महान् उत्तरदायित्व एकान्त–सेवन किये बिना मै पूर्ण नही कर सकता। एकान्त–सेवन करके मै जगत् को अपूर्व बोध देना चाहता हू। जो बात मन मे होगी वही वचन से प्रकट होगी और उसी के अनुसार कार्य होगा। जो बात मन मे ही नही आएगी, वह वचन या कार्य मे कैसे आ सकती है? किसी बात को भलीभाति मन मे लाने के लिये एकान्त–सेवन की आवश्यकता रहती है। अतएव अपनी मानसिक तैयारी के लिये भी मुझे वन मे वास करने की आवश्यकता है।'

'वत्स भरत! तुम न जगल मे जन्मे हो और न जगल मे पले हो। इसी तरह मैं भी न जगल मे जन्मा हू और न पला हू। इतना होने पर भी तुम जगल का महत्त्व नही जानते और मैं जानता हू। जगल मे एकान्त–सेवन करके मैं सब बाते अपने मन मे ग्रहण करूगा। इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। बहुत–से मनुष्य जगल मे बदरो एव रीछो की तरह अपनी जिदगी पूरी करते हैं। मैं उन्हे मानवीय सस्कार देना चाहता हू और आर्य बनाना चाहता हू। उनके पास पहुचे बिना और उनके साथ घनिष्ठ सपर्क स्थापित किये बिना यह महान् कार्य पूरा नही होगा।

राम के उच्च और आदर्श विचार सुनकर भरत ने कहा – आप वर्तमान जगत् मे अनुपम पुरुष हैं। आपका अपनापन सारे ससार मे फैला हुआ है। ससार के प्राणी मात्र को आप अपना समझते है। आपका यह विशालतम अपनापन अयोध्या मे नही समा सकता। यह बात मै समझ रहा हू। मगर एक बात में निवेदन करना चाहता हू कि आप जिस कार्य को पूर्ण करने के लिये वन मे रहना आवश्यक मानते हैं वह कार्य मुझे सौंप दीजिये। मैं आपका कार्य करूगा और आप अयोध्या लौट जाइये। कदाचित् मुझे अकेले को इस कार्य के लिये असमर्थ समझते हो तो लक्ष्मण को मेरे साथ रहने दीजिये। अगर दोनो से भी वह कार्य होना सभव न हो शत्रुघ्न को भी साथ कर दीजिये। हम तीनो मिलकर वन का काम करेगे और आप अवध का राज्य कीजिये।

भरत का यह विचार ओजस्वी ओर उदार था। लेकिन राम ने कहा– भाई भरत! तुमने भातृप्रेम त्याग और भावुकता की हद कर डाली। तुम इन गुणो मे मुझ से भी आगे बढ गये हो। पर तुम्हारी बात मानकर अगर में लोट गया तो दुनिया क्या कहेगी? हम ओर तुम तो समझ जायेगे लेकिन ससार को कौन समझाने बैठेगा? मुझे यश–अपयश की चिन्ता नही है फिर भी लोग इस घटना से स्वार्थ की सिद्धि की शिक्षा लेगे। उन्हे किस प्रकार समझाया जायगा?

महापुरुष आपनी आन्तरिक शक्ति से समर्थ होते हुए भी बाल ओर भावुक जीवो की तरह कार्य करते हैं, जिससे ससार के साधारण लोग उस क्रिया को समझ सके। गीता मे कहा है कि मूर्ख की बुद्धि का भेद न करके विद्वान् को ऐसा चरित्र बनाना चाहिये, जिसे वह ग्रहण कर सके ओर उसकी बुद्धि पर बोझ न पडे।

आप जब छोटे बालक थे तो मा के बराबर नहीं चल सकते थे। अगर उस समय माता आपकी उगली पकड कर अपने बराबर आपको चलाती तो आपकी क्या दशा होती? मगर माता ने अपनी शक्ति का गोपन करके बालक के बराबर ही धीरे–धीरे चलना उचित समझा और फिर आप मे तीव्र गति करने की शक्ति आ गई।

राम कहते है – 'हे भरत! तुम्हारी और मेरी प्रकट क्रिया ऐसी होनी चाहिये जिसे सब सरलता से समझ सकते हो और सर्व–साधारण पर कोई बुरा असर न पडे। ऐसी स्थिति मे मेरा अयोध्या लौटना और तुम्हारा वनवास करना कहा तक उचित होगा?

सीता का समाधान–कौशल

राम का पक्ष सुनकर भरत को चुप होना पडा। वह कोई उत्तर नही दे सके। फिर भी हृदय मे असतोष व्याप गया और उनकी आखो से ऑसू बहने लगे। केकेयी भी दग रह गई। वह सोचने लगी – अब में क्या कहू ओर क्या न कहू? राजसत्ता ओर योगसत्ता मे किसका खडन किया जाय? दोनो के चेहरो पर विषाद घिर आया।

सीता ने यह स्थिति देखी तो उन्हे भरत ओर केकेयी के प्रति बडी सवेदना हुई। सीता सोचने लगी – मेरे देवर बहुत दु खी हो गये हें। वे अपने भाई की बात का उत्तर नही दे सकते। वे किसी प्रकार का निर्णय भी केसे कर सकते ह? वे किस मुह से कह सकते हे कि आप वन मे ही रहिये ओर म राज्य करता हू! एसे विकट प्रसग पर देवर का दु ख मिटाना चाहिये। यह सोच कर सीता एक कलश जल से भर लाई ओर हाथ मे ले कर राम के समक्ष दृष्टि लगाकर खडी हो गई।

सीता को जल–कलश लिय देखकर राम कहन लग – तुम मेर हृदय की बात जानने वाली हा। इस समय मुझे प्यास तो हे नही फिर जल किसलिये लाई हा?

सीता न कहा – म प्रयोजन क विना कोई कार्य नही करती यह आप भली भाति जानत ह।

राम – हा, जानता तो हू लेकिन इस समय कलश किसलिये लाई हो? तुम्हारे बताये बिना मै कैसे जान सकता हू?

सीता – आपने निर्णय करने का भार भरत पर डाल कर ऐसी दृढता के साथ अपना पक्ष रखा है कि आपसे वनवास करने की स्वीकृति के सिवाय और कुछ कहा ही नही जा सकता। लेकिन रघुकुल मे उत्पन्न देवर कैसे कह सकते हैं कि – अच्छी बात है, आप वनवास ही कीजिये! अपने छोटे भाई को इस प्रकार सकट मे डालना आपके लिए उचित नही है। मेरे देवर ऐसे नही हैं कि अपने मुह से आपको वन मे रहने की बात कह दे।

सीता की बात सुनकर भरत प्रसन्न हुए कि भौजाई ने मेरा पक्ष लिया है। उनके चेहरे पर किचित् प्रसन्नता नजर आने लगी।

सीता ने अपनी बात चालू रखते हुए कहा – साथ ही मेरे पति भी ऐसे नही हैं जो वन मे आकर नगर को लौट जाए।

भरत को पहली बात सुनकर जो आशा बधी थी वह लुप्त हो गई। सोचने लगे – भौजाई ने पहले तो मेरा पक्ष लिया था, पर अब यह क्या कहने लगी?

सीता की बात सुनकर राम ने कहा – तो तुम क्या करने को कहती हो?

सीता – देवरजी पिता का दिया हुआ राज्य नही ले सकते। पिता का दिया राज्य तो आप ही ले सकते हैं। इसलिये पहले आप राज्य ले लीजिये और फिर अपना राज्य भरत को दे दीजिये। ऐसा करने से भरत राज्य स्वीकार कर लेगे।

सीता की बात राम को बहुत पसन्द आई। लक्ष्मण ने भी सीता का समर्थन किया। राम ने कहा – तुमने अच्छा मार्ग निकाला है। जानकी, इस जटिल समस्या को सुलझा कर तुमने बहुत अच्छा किया। तुम्हारी बुद्धि धन्य है।

सीता – प्रभो! यह सब आपके चरणो का ही प्रताप है। मै किस योग्य हू? आप मेरी प्रशसा न करे। अपनी प्रशसा सुनकर मुझे लज्जा होती है। लेकिन ऐसी बातो मे अब विलम्ब न कीजिये। जल से भरा हुआ यह कलश तयार है। इससे पहले मन्त्री आपका राज्याभिषेक करे और फिर आप भरत का राज्याभिषेक करे।

वास्तव मे सती सीता का बुद्धिकौशल ही सराहनीय नही हे किन्तु उनकी उदारता कुटुम्बीजनो के प्रति उनका हार्दिक प्रेम उनकी सहिष्णुता

उनका शील ओर विनयशीलता सभी–कुछ सराहनीय हे। सीता की भावना कितनी पवित्र और ऊची श्रेणी की है। आज को कोई स्त्री होती तो सास ओर देवर को आते देख कर न जाने केसे कटु वाक्यो से उनका स्वागत करती। वह कहती – मेरे पति का राज्य छीनकर अव मायाचार करने आये हैं। हमे जगल मे भटकाने वाले यही मा बेटे हैं। अब कोन–सा मुह लेकर यहा आये हे? इसके अतिरिक्त राज्य लेने का प्रश्न उपस्थित होने पर कोन स्त्री ऐसी होगी जो पति को राज्य ले लेने की प्रेरणा न करे? मगर सीता सच्ची पतिव्रता थी। वह पति की प्रतिज्ञा को अपनी ही प्रतिज्ञा समझती थी। उसने अपने व्यक्तित्व को राम के साथ मिला दिया था। इसी कारण वह भरत के प्रति ऐसा प्रेम–भाव प्रकट कर सकी। सीता का गुण थोडे अशो मे भी जो स्त्री ग्रहण करेगी उसे किसी चीज के न मिलने के कारण या मिली हुई चीज चली जाने के कारण कभी दु ख न होगा। इसी प्रकार राम और भरत का आशिक अनुकरण करने से पुरुषो का भी ससार सुखमय सतोष–मय ओर स्नेह–मय वन सकता हे।

राम का राज्याभिषेक

सीता की सराहना करके राम ने कहा – 'हे वन के पक्षियो! तुम चह–चहा कर मगल–गान करो ओर हे पवन! तुम चल कर चवर का काम करो। हे सूर्य! ओर हे चन्द्र! तुम्हारी साक्षी से मे अवध का राज्य स्वीकार करता हू।

उसी समय कोयल कूकने लगी। पवन मन्द–मन्द गति से चलन लगी। मन्त्री ने प्रसन्न हाकर कलश अपने हाथ म लिया ओर राम का राज्याभिपक किया।

भरत का पुन राज्याभिषेक

राम का राज्याभिपक हा चुकने क पश्चात उन्हान भरत स कहा – आआ अनुज अव तुम्हारा राज्याभिपक कर। इस समय म अयाध्या का राजा हू। तुम्ह मेरी आज्ञा माननी हागी।

भरत साचन लग – म भाई की वाता का जसा – तसा उत्तर द रहा था। मगर भाजाइ की युक्ति क सामन ता इन्द्र का भी हार माननी पडगी।

इसी समय सीता ने भरत से कहा – अग

का गौरव रखना चाहते हे तो ओर अपने को भाइ का

उनकी बात मान लो। अब सकोच मत करो।

भरत ने मस्तक नीचे झुका लिया। उनमे बोलन की

गई। तत्पश्चात् राम ने भरत का राज्याभिषेक किया और

महाराज भरत की जय हो।

राम की इस जयध्वनि की चारो दिशाओ मे प्रतिध्वनि हु

सम्पूर्ण पकृति ने राम का साथ दिया। सब लोग आनन्दित हुए मगर

मनोव्यथा को कौन जान सकता था? भरत के हृदय मे वेदना का

भरत की आखो मे यह सोचकर आसू आ गये कि कहा से तो राम को

सौंपने आया था और कहा यह बला मेरे गले मे आ पडी।

भरत को आश्वासन

सीता ने सोचा–मेरी युक्ति से एक विकट समस्या तो हल हो गई।
परन्तु भरत का हृदय अब भी व्याकुल है। उसे सतोष नही हे। अब भरत को
कुछ और सान्त्वना देनी चाहिये। यह सोचकर वह भरत की ओर कुछ आगे
बढी। तब भरत ने कहा – माता! मैं आपकी शरण मे आया हू। आपका यह
वेश देखकर मेरा हृदय भीतर ही भीतर भुना जा रहा है। क्या आपका यह
शरीर वल्कल वस्त्र धारण करने योग्य है? यह देखकर मेरा हृदय कापने
लगता हे। इतना कह कर भरत फिर व्याकुल हो उठे।

जानकी ने भरत से कहा – 'आप इस प्रकार कातर क्यो हो रहे हे?
आप स्वय रोकर हमे क्यो रुलाना चाहते हैं? आप हमे प्रसन्नता देने आये हे
या रुलाने आये हें? आपके ऊपर ऐसा कौन–सा सकट आया हे कि आपको
रोना पडता है? स्त्रिया कातर स्वाभाव वाली कही जाती हैं। हमे पुरुषो की
ओर से धैर्य मिलना चाहिए लेकिन आप तो उल्टी गगा बहा रहे हें।'

आपके रोने से यह तात्पर्य निकलता हे कि आपने इस राज्य का
असली मूल्य समझ लिया है। आप जानते हे कि इस राज्य की बदौलत ही
हमे राना पड रहा है। आप राज्य को धूल के समान समझने लगे हें। फिर इस
धूल मे आप हमे क्यो सानना चाहते हे? आप कह सकते हैं कि मै क्यो धूल
मे सना रहू? मगर यह तो आपके भाई का दिया हुआ राज्य है। इस राज्य
को सेवक की तरह चलाने मे किसी प्रकार की बुराई नही है। ऐसी दशा मे
आप रोते क्यो ह। आपको चिन्ता और शोक का त्याग कर आनन्द मनाना
चाहिये।

आप मेरा वेश देख कर चिन्ता करते हैं मगर यह भी आपकी भूल है। मेरे वल्कल वस्त्रो को मत देखो मेरे ललाट पर शोभित होने वाली सुहाग–बिदी की ओर देखो। यह सुहाग–विदी मानो कहती हे – मेरे रहते अगर सभी रत्न–आभूषण चले जाए तो हर्ज की बात क्या है? ओर मेरे न रहने पर रत्न–आभूषण बने भी रहे तो वे किस काम के? मेरे कपाल पर सुहाग का चिह्न है फिर आप किस बात की चिन्ता करते है? सुहाग चिह्न के होते हुए भी अगर आप आभूषणो के लिए मेरी चिन्ता करते हैं तो आप अपने भाई की कद्र कम करते है। यह सुहाग–बिदी आपके भाई के होने से ही है। क्या आप अपने भाई की अपेक्षा भी रत्नो को बडा समझते हैं? आपका ऐसा समझना उचित होगा?

भरत! आप प्रकृति की ओर देखो। जब गहरी रात होती है तो ओस की वूदे पृथ्वी पर गिरकर मोती के गहने बन जाती हैं। लेकिन उषा के प्रकट होते ही प्रकृति उन गहनो को पृथ्वी पर गिरा देती है। जैसे प्रकृति यह सोचती हे कि इन गहनो का शृगार तभी तक ठीक था जब तक उपा प्रकट नही हुई थी। अव उषा की मोजूदगी मे इनकी क्या आवश्यकता हैं? यही बात मेरे लिये हे। जव तक वनवास रूपी उषा प्रकट नही हुई थी तब तक भले ही आभूषणो की आवश्यकता रही हो पर अब उनकी क्या आवश्यकता हें? अब तो सौभाग्य को सूचित करने वाली इस सुहाग–बिदी मे ही समस्त आभूषणो का समावेश हो जाता हे। यह मेरे लिये सब शृगारो का शृगार हे। इससे अधिक की मुझे आवश्यकता ही नही हे। ऐसी स्थिति मे आप क्यो व्याकुल होते हे? आपको मेरा सुहाग देखकर ही प्रसन्न होना चाहिये।

सीता की बात के उत्तर मे अनमने भाव से भरत बोले – माता! आप जा आज्ञा देती हें मे उसी का पालन करूगा। मेरी वडाई इसी मे हे कि प्रजा को यह कहने का अवसर न मिले कि राम नही हे।

भरत को उपदेश

इसके पश्चात भरत ने राम से कहा – प्रभो! विधि की विडवना ने मुझ राजा वनाया ह। अव कृपा कर मुझ ऐसा उपदेश दीजिये जिसस मे आपका समुचित रूप स प्रतिनिधि वन सकू। वास्तव म अयोध्या का राज्य आपका ही ह। म आपका सेवक हाकर ही राज्य की व्यवरथा करूगा। अतएव आप मुझ जैसा आदश आर उपदश दगे उसी के अनुसार में राज्य का सचालन करूगा।

भरत स्वय विवेकशाली नीति–निपुण और मर्यादा के मर्म को जानने वाले थे। कदाचित उन्हे उपदेश की आवश्यकता नही थी फिर भी भाई का मान रखने के लिये उन्होने उपदेश की माग की। राम ने भी भरत को उपदेश देने के बहाने ससार को उपदेश दिया है।

राम कहते हैं – वत्स भरत! मेरी कही हुई थोडी–सी बातो को स्मरण रक्खोगे और उनके अनुसार आचरण करोगे तो समझ लो कि सारे ससार पर तुमने आधिपत्य स्थापित कर लिया। मै इन बातो की ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना चाहता हू–

(1) सबसे पहली बात है कि परस्त्री को माता के समान समझना। तुम राजा हो। तुम्हे सभी प्रकार का ऐश्वर्य सहज ही प्राप्त होगा। मगर परस्त्री को माता मानने से ही वह ऐश्वर्य सफल और स्थायी रहेगा। माता के पुत्र भाई कहलाते हैं। जब तुम सब परस्त्रियो को माता मानोगे तो उसके पुत्र तुम्हारे भाई होगे। इस प्रकार सारी प्रजा के साथ तुम्हारा आत्मीयता से युक्त सम्बन्ध स्थापित हो जायगा। समस्त प्रजा तुम्हे मेरे ही समान मालूम होगी। फिर तुम मे और मुझ मे कोई भेद नही रहेगा।

कहा जा सकता है कि सदाचारिणी स्त्रियो को तो माता के समान समझना उचित है किन्तु दुराचारिणी स्त्री को कैसे माता माना जाय? इसका उत्तर यह है कि नागिन दूसरो को भले ही काटती हो मगर उसका मन्त्र जानने वाले के लिये तो वह खिलौना बन जाती है। उपाय जानने वाला उसे खिलौना बना सकता है। इसी तरह दुराचारिणी या वेश्या दूसरे के लिये भले ही बुरी हो लेकिन जो पुरुष उसे माता के समान समझेगा उसका वह क्या कर सकती है? सदाचारिणी स्त्री को माता मानना या न मानना सरीखा है किन्तु दुराचारिणी को माता के समान समझने की आवश्यकता हे। इसी तरह परस्त्री को माता मानने वाला स्वय सदाचारी बना रहेगा और उसकी सन्तान को भाई–बहिन समझेगा। ऐसा होने पर उसके स्वभाव मे शुद्धि होगी ओर कम–से–कम किसी को दण्ड देते समय अन्याय नही होगा।

(2) और हे भरत! जेसे स्वस्त्री ही तुम्हारी स्त्री हे परस्त्री नही उसी प्रकार स्व–धन ही तुम्हारा धन हे पर–धन को कभी अपना मत समझना। अन्यायपूर्वक किसी का धन अपहरण मत करना।

वैसे तो जो अपना नही हे वह सब पर (पराया) है लेकिन जैसे लडकी पराये घर जन्मी होती है फिर भी नीति के अनुसार प्राप्त होने पर पराई नही रहती उसी तरह 'पर' होने पर भी जो धन न्याय–नीति के अनुसार अपने परिश्रम से प्राप्त किया जाता ह वह परकीय नही रहता अपना

हो जाता है। चोरी करना डाका डालना या ऐसा ही कोई ओर अनीति का काम करना बुरा मार्ग है और ऐसे मार्ग से प्राप्त होने वाला धन अपना नही पराया हे। नीति के विरुद्ध किसी भी उपाय से दूसरे का धन हरण करने की तृष्णा नही रखनी चाहिये। इस प्रकार की तृष्णा से बडे–बडे राजा शासक और व्यापारी भी अपना जीवन हार जाते हैं। इसलिये तुम अन्याय से मिलने वाले धन को धूल के समान समझना।

(3) हे भरत! राज्य को भोग की सामग्री मत समझना वरन् सेवा की सामग्री मानना। जैसे गृह–पति अपने गृह की रक्षा करने मे ही अपने कर्तव्य की सार्थकता समझता है, उसी प्रकार तुम अपनी समस्त प्रजा की रक्षा करना ही अपना कर्तव्य समझना। राज्य प्रजा के प्रति राजा का पवित्र उत्तरदायित्व है। प्रजा का सुख तुम्हारा सुख और प्रजा का दु ख तुम्हारा दु ख होगा। राजा की मानो कोई स्वतन्त्र सत्ता ही नही रहती। प्रजा मे ही राजा का सम्पूर्ण व्यक्तित्व विलीन हो जाता है। सूर्यवश मे यही होता आया है और यही होना चाहिये।

(4) हे भरत! तुम्हे अधिक उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है। अतएव अन्त मे यही कह देना पर्याप्त है कि इक्ष्वाकुवश मे हुए अनेक महान राजाओ ने जो मर्यादा कायम की है उसका सावधान होकर पालन करना। में उसी मर्यादा का पालन करने के लिये वन मे आया हू। तुम अब मेरे बनाये हुए राजा हो इसलिये मैंने जिस मर्यादा की रक्षा की है, तुम भी उसी की रक्षा करना। उस मर्यादा की रक्षा मे ही राजा के सम्पूर्ण कर्तव्यो का समावेश हो जाता हे।

हे भ्राता! मे तुम्हे आशीर्वाद देता हू कि तुम्हे अपना उत्तरदायित्व पूर्ण करने का सामर्थ्य प्राप्त हो ओर तुम चिरकाल तक सुखपूर्वक प्रजा का पालन करो।

इसके पश्चात् राम ने केकेयी को आश्वासन देते हुए कहा – माता मुझे क्षमा करना। राम ओर भरत को आपने एक ही समझा हे इसलिये भरत के समीप रहते राम भी आपके ही समीप हे। आप प्रसन्नता के साथ अयोध्या पधारे मेरी तनिक भी चिन्ता न कर ओर दूसरी माताओ को भी आश्वासन दे। मोह ससार मे सव बुराइयो की जड हे। जितना–जितना वह कम होता जायगा आत्मिक आनन्द उतना ही बढता जायेगा। इसलिये आप मोह को शिथिल करने का प्रयास कर। राजपरिवार को ओर प्रजा को मेरी कुशल ओर प्रसन्नता का समाचार सुना दे। भाग्य जब चाहेगा हम आपके पुन दर्शन करग। म समस्त विश्व क साथ अवध के कल्याण की कामना करता हू।